मानव अधिकार :

नई दिशाएँ

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

वार्षिक अंक-7
2010

ISSN 0973-7388

मानव अधिकार : नई दिशाएँ

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

वार्षिक अंक - 7

2010

प्रकाशक : राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
फरीदकोट हाऊस, कॉपरनिकस मार्ग,
नई दिल्ली, भारत

© 2010 **राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत**

प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के निजी विचार हैं। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, सलाहकार मण्डल या संपादक मण्डल का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

प्राप्ति स्थान : राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
फरीदकोट हाऊस, कॉपरनिकस मार्ग,
नई दिल्ली - 110001, भारत
वेबसाईट : www.nhrc.nic.in
ई-मेल : covdnhrc@nic.in

मुद्रण एवं डिजाईनिंग : डॉल्फिन प्रिंटो ग्राफिक्स
4ई/7, पाबला बिल्डिंग, झंडेवालान एक्सटेंशन,
नई दिल्ली-110055
मो. 9810130832
ई-मेल : dolphin_printo@rediffmail.com

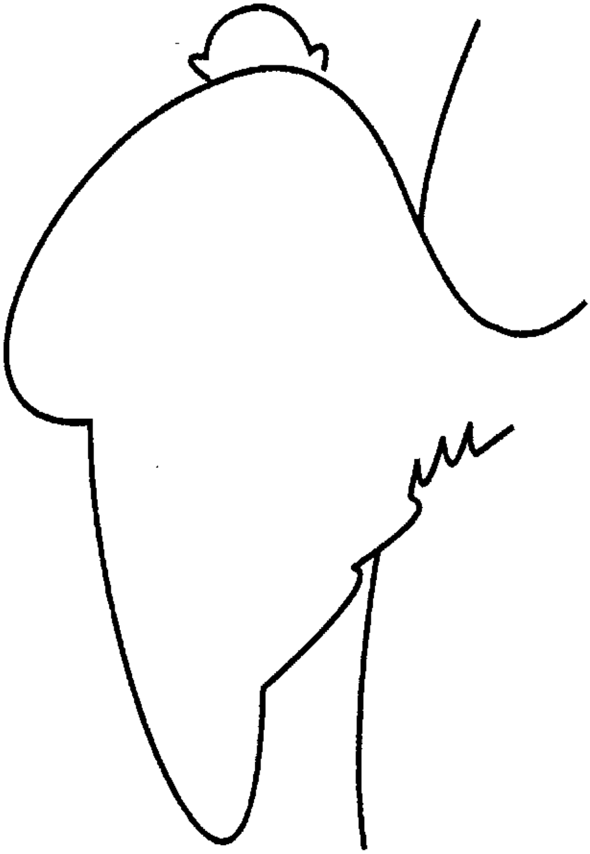

न्याय में जितनी उदारता की जरूरत है इतनी ही न्याय की उदारता में है
मो. क. गांधी

न्याय में जितनी उदारता की जरूरत है, इतनी ही न्याय की उदारता में है।

–महात्मा गाँधी
23.10.1945

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

अध्यक्ष

न्यायमूर्ति श्री के. जी. बालाकृष्णनन

सदस्य

न्यायमूर्ति श्री जी. पी. माथुर

न्यायमूर्ति श्री बी. सी. पटेल

श्री सत्यब्रत पाल

श्री पी. सी. शर्मा

महासचिव
श्री के. एस. मणि

महानिदेशक
श्री सुनील कृष्ण

रजिस्ट्रार
श्री अनिल कुमार गर्ग

संयुक्त सचिव
श्री जगदीश प्रसाद मीणा

संयुक्त सचिव (प्रशिक्षण)
श्री जयदीप सिंह कोचर

अनुक्रम

अनुक्रम

- **दो शब्द** : xi
- **आमुख** : xiii
- **पुरोवाक्** : xv
- **संपादकीय** : xvii

लेख

	विषय	लेखक का नाम	पृष्ठ सं0
1.	मानव अधिकारों के संरक्षण में आयोग की प्रतिबद्धता	पी. सी. शर्मा	1-4
2.	विकास हेतु साक्षरता का प्रयोजन और पंचायती राज व्यवस्था	प्रो0 गिरीश्वर मिश्र	5-13
3.	स्त्रियों और बच्चों के मानवाधिकार : संस्थागत दृष्टिकोण	डॉ0 बिन्देश्वर पाठक	14-20
4.	भारत में महिला सशक्तीकरण : दशा एवं दिशा	डॉ0 सुभाष शर्मा	21-30
5.	महिलाओं एवं बच्चों के अधिकारों का संरक्षण : एक राष्ट्रीय दायित्व	लक्ष्मी सिंह	31-39
6.	भारतीय समाज में सरोगेसी : चुनौतियों और अधिकारों के निकष पर	डॉ0 प्रतिभा	40-53
7.	स्त्रियों और बच्चों का हित संरक्षण और मानवाधिकार	राजेश प्रताप सिंह	54-62
8.	मानव अधिकार हनन तथा पुलिस की भूमिका	अशोक कुमार	63-67
9.	भारत में सम्मान के लिए स्त्रियों की हत्या *(स्त्रियों के मानवाधिकारों का क्रूरतापूर्ण उल्लंघन)*	डॉ0 प्रीती सक्सेना डॉ0 सुदर्शन वर्मा	68-78
10.	महिला अधिकार संरक्षण : *(अमृतसर पुलिस के विशेष प्रयोग के संदर्भ में)*	कुँवर विजय प्रताप सिंह	79-83
11.	भारतीय शिक्षा का वर्तमान संदर्भ : दशा और दिशा	प्रो0 विद्याशंकर शुक्ल	84-87
12.	मानव अधिकार और उपभोक्ता अधिकार	डॉ0 शीतल कपूर	88-93
13.	मानवाधिकार एवं वंचित वर्गों का संघर्ष *(राजस्थान में सूचना के अधिकार के प्रयोग एवं सामाजिक अंकेक्षण में सामुदायिक प्रयासों का एक अध्ययन)*	डॉ0 रूपा मंगलानी	94-106

14.	आतंकवाद तथा मानव अधिकार	डॉ0 अजय भूपेन्द्र जायसवाल	107–111
15.	सांप्रदायिक सद्भाव तथा मानव अधिकार	डॉ0 रेखा द्विवेदी	112–115
16.	मानवाधिकार एवं खाद्य सुरक्षा : एक अध्ययन	डॉ0 जितेन्द्र कुमार गौतम	116–125
17.	सामाजिक न्याय की धुरी स्त्री अधिकारिता	अंजली सिन्हा	126–132
18.	मानव अधिकार और एच0 आई0 वी0/एड्स	डॉ0 अशोक कुमार	133–141

साक्षात्कार

महिला सशक्तिकरण : 'एक नई सुबह का आग़ाज', डॉ0 गिरिजा व्यास 145–149
प्रस्तुति : अंशु गुप्ता

आयोग के महत्वपूर्ण निर्णयों पर आधारित कुछ कहानियाँ

प्रस्तुति : राकेश रेणु 153–166

आयोग की महत्वपूर्ण गतिविधियों की एक झलक

प्रस्तुति : जैमिनी कुमार श्रीवास्तव 169–173

पुस्तक समीक्षा

मानवाधिकार: सामाजिक न्याय और भारत का संविधान 177–181
समीक्षक : ब्रजेन्द्र त्रिपाठी

मानवाधिकार: विविध आयाम एवं चुनौतियाँ 182–185
समीक्षक : डॉ0 कुमुद शर्मा

सर्वे भवन्तु सुखिनः

दो शब्द

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का वार्षिक जर्नल "**मानवाधिकार : नई दिशाएँ**" का सातवां अंक पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है।

मेरा ऐसा मानना है कि मानव अधिकारों के वैचारिक दर्शन की भावभूमि सार्वभौमिक धरातल पर टिकी हुई है। साथ ही वह मानवमात्र अर्थात् संसार के प्रत्येक जीव से जुड़ी हुई है। मानव अस्तित्व के समग्र उन्नयन के साथ-साथ इसमें निहित क्षमताओं के उत्थान का भाव हमेशा से इसकी परिधि में रहा है। इसी पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए भारत में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की स्थापना की गई ताकि आज की पीढ़ी में मानव अधिकारों के आदर्श के बीज को अंकुरित, पुष्पित व पल्लवित किया जा सके।

आयोग द्वारा प्रकाशित यह 'जर्नल' पिछले कुछ वर्षों से अकादमिक क्षेत्र से जुड़े बुद्धिजीवियों के बीच एक सशक्त, प्रभावी एवं लोकप्रिय माध्यम बनकर उभरा है। साथ ही इसने अल्पावधि में ही आमजन की भाषा में मानव अधिकारों की ज़मीनी हकीकत को समझने, जाँचने व परखने का उपयुक्त मंच भी प्रदान किया है।

इस अंक में जिन सुधी विद्वानों, लेखकों, वरिष्ठ अधिकारियों, गैर-सरकारी संगठनों के विशिष्ट प्रतिनिधियों तथा अकादमिक क्षेत्र से जुड़े विशेषज्ञों का सहयोग प्राप्त हुआ है। उन सभी को आयोग की ओर से मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। मुझे पूरा भरोसा है कि भविष्य में भी उनका इसी प्रकार सहयोग मिलता रहेगा। मैं इस आशा के साथ यह अंक पाठकों को समर्पित करता हूँ।

(न्यायमूर्ति के. जी. बालाकृष्णनन)

आमुख

मानव अधिकारों का संपूर्ण वैचारिक दर्शन मानवीय सभ्यता और संस्कृति से गहरे रूप से जुड़ा हुआ है। सभ्यता के निरंतर विकास के साथ-साथ मनुष्य को भी अपने अधिकारों का बोध होने लगा था। व्यक्ति से परिवार और परिवार से समाज तक की यात्रा में मनुष्य के जन्मजात एवं प्राकृतिक अधिकारों के विचार के जन्म लेने के साथ-साथ मनुष्य की अस्मिता तथा मानवीय प्रतिष्ठा की अपरिहार्यता का समग्र भाव भी प्रकट हुआ। यह एक ऐसी विश्वव्यापी और सार्वभौमिक अवधारणा थी जिसमें वृहत्तर परिप्रेक्ष्य में मानव अधिकारों के वैश्विक संदर्भ को एक नई ऊंचाई मिली।

किसी भी राष्ट्र में केवल स्वतंत्रता ही मायने नहीं रखती अपितु उसमें निरंतर लोकतांत्रिक जड़ों का कायम रहना अत्यंत महत्वपूर्ण है। हमारे पूर्वजों ने ऐसे राष्ट्र की कल्पना की थी जिसमें न भय होगा, न कोई भूख से मरेगा और न ही किसी का शोषण होगा। पर हमारी यह कल्पना अभी यथार्थ के धरातल से कोसों दूर है।

आयोग की औपचारिक स्थापना भारत में बहुत पुरानी नहीं कही जा सकती है। अपितु संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य होने के नाते भारत की जो जिम्मेदारियाँ बनती हैं उनके अनुपालन की दिशा में इसे एक महत्वूपर्ण कदम माना जा सकता है। भारतीय लोकतंत्र की सक्रिय संस्थाओं में से एक प्रभावी संस्था के रूप में इसने अपनी अलग पहचान स्थापना के समय से ही निरंतर कायम रखी है। इसके सतर्क हस्तक्षेप के अनेक उदाहरण समकालीन इतिहास में देखे जा सकते हैं। इस कारण इसे एक ऐसे सजग प्रहरी की भूमिका में देखा जाता है जिसकी उपेक्षा भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था का कोई भी अंग नहीं कर सकता।

''मानव अधिकार : नई दिशाएं'' जर्नल का प्रकाशन आम जन को मानव अधिकारों के विषय में जनभाषा में अद्यतन जानकारी देने के लिए शुरू किया गया था। पिछले छह अंकों में

हमारी यह कोशिश रही है कि मानव अधिकार से जुड़े हुए विभिन्न समसामयिक प्रश्नों को उठाया जाए और उन पर सोचने के लिए एक सार्थक संवाद की पहल की जाए। कुछ हद तक हमें इस प्रयास में सफलता भी मिली है पर अभी भी बहुत कुछ किए जाने की जरूरत है।

मेरी हार्दिक इच्छा है कि भविष्य में यह क्रम निर्बाध रूप से चलता रहे और इसके माध्यम से समाज को मानव अधिकारों से संबंधित उपयोगी, सूचनाप्रद एवं महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती रहे।

पी. सी. शर्मा

(पी. सी. शर्मा)

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

पुरोवाक्

भारतीय संस्कृति और सभ्यता संपूर्ण विश्व में न केवल सबसे प्राचीन है बल्कि इसमें विभिन्न विचार धाराओं, मतों और पंथों का अनोखा समन्वय भी है। अनेकता में एकता हमारे राष्ट्र की अमूल्य धरोहर है जिसका आधार सत्य, अहिंसा और परस्पर साझेदारी है। हमारी संस्कृति में केवल मानव मात्र से ही नहीं अपितु संपूर्ण जीव के साथ-साथ प्रकृति से भी संवाद स्थापित करने की बात बार-बार दोहरायी गई है। हमारी हर सुबह का आगाज ''सर्वे भवन्तु सुखिन:'' के आदर्श वाक्य के साथ शुरू होता है। आदर्श समाज की परिकल्पना सदियों से हमारी सांस्कृतिक विरासत रही है तथा वह हमारी स्मृतियों में संजोयी हुई है।

आज 21वीं सदी में भी भारत में सामाजिक भेदभाव, छुआछूत, धार्मिक अंध-विश्वास, सामाजिक कुरीतियाँ तथा प्रतिष्ठा के लिए हत्या, महिला सशक्तिकरण आदि कुछ ऐसे ज्वलंत मुद्दे हैं जो मानव अधिकारों के लिए चुनौती बने हुए हैं। जब तक हम इन मुद्दों पर विजय नहीं प्राप्त कर सकेंगे तब तक सही अर्थों में हमारे राष्ट्र का संपूर्ण विकास असंभव है।

किसी भी राष्ट्र की लोकतांत्रिक एवं नैतिक व्यवस्था के मापने के मुख्य आधार गरिमामय जीवन, स्वतंत्रता तथा समानता होते हैं। इनसे वंचित रहकर मानव अधिकारों की पूर्ण प्राप्ति असंभव है। आजादी के 63 वर्षों बाद भी हम सामाजिक अंधविश्वासों, विषमताओं तथा अज्ञानताओं के चलते लोकतांत्रिक व्यवस्था में सबकी समुचित भागीदारी सुनिश्चित नहीं कर पा रहे हैं। जिसके फलस्वरूप मानव अधिकारों के हनन से संबंधित घटनाएं बदस्तूर जारी हैं जो मानवता को कलंकित करने के साथ-साथ लोकतंत्र को भी शर्मसार करती हैं।

आयोग अपनी स्थापना काल से ही मानव अधिकारों के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए न केवल प्रतिबद्ध है अपितु अनेक नीतिगत एवं संवेदनशील मामलों में सतर्क हस्तक्षेप कर सरकार का ध्यान भी आकर्षित करता रहा है। आयोग की संकल्पबद्धता का एक प्रमाण यह

'जर्नल' है जिसमें जहाँ एक ओर भारतीय परम्परागत चिन्तन के आयामों को एक साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है वहीं दूसरी ओर, मानव अधिकारों से संबंधित समसामयिक एवं ज्वलंत समस्याओं पर विचार सरणि को आगे बढ़ाने की चेष्टा भी की गई है। ऐसे महत्वपूर्ण, उपयोगी एवं सूचनाप्रद प्रकाशन से विशाल भारतीय समाज में मानव अधिकारों की दुन्दुभि बजाने में हमें निश्चित रूप से सहायता मिलेगी।

पिछले अंकों में परोसी गई सामग्री को विस्तृत फलक पर ले जाते हुए वर्तमान अंक के लेखकों ने अनेक नये आयामों को स्पर्श करने का प्रयास किया है जो न केवल वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिक हैं, अपितु वे भविष्य के लिए भी धरोहर है। मुझे विश्वास है कि इससे न केवल स्वस्थ वैचारिक परम्परा का प्रादुर्भाव होगा अपितु मानव अधिकार केन्द्रित एक नए समाज की परिकल्पना की नींव भी रखी जा सकेगी। इस अवसर पर मैं सुधी लेखकों को अपनी ओर से हार्दिक बधाई देता हूँ।

(के. एस. मणि)

सर्वे भवन्तु सुखिनः

सम्पादकीय

सामाजिक परिवर्तन, तकनीकी क्रांति और आर्थिक दृष्टि से भारत की सुदृढ़ता हमारे लिए नई चुनौतियाँ और जिम्मेदारियाँ पेश कर रही हैं। ऐसे में हमारे लिए अतिरिक्त सतर्कता और सावधानी की आवश्यकता है ताकि आर्थिक विकास का लक्ष्य हासिल करने में समता, समानता, न्याय और जनकल्याण की भावना प्रभावित न हो। पर इस लक्ष्य को पाना सरल नहीं है। अभी भी भारत में जनसंख्या का बड़ा भाग निरक्षर एवं निर्धन है। विकास का लाभ देश के सभी क्षेत्रों एवं समाज के सभी वर्गों को समान रूप से उपलब्ध नहीं हो पाया है। साथ ही देश में अभी भी कई परंपरागत कुरीतियाँ बनी हुई हैं जो भेदभाव, अन्याय और दमन की प्रवृत्ति को बढ़ावा देती हैं। इस पृष्ठभूमि में सभी के मानव अधिकारों की रक्षा एक चुनौती है।

आज मनुष्य के विकास का पैमाना प्रश्नों के घेरे में आ रहा है। आर्थिक प्रगति महत्वपूर्ण है पर विकास के लिए केवल इसे पर्याप्त नहीं माना जा सकता। भारत जैसे सामाजिक, भौगोलिक, धार्मिक बहुलता वाले राष्ट्र में विकास का लाभ सर्वत्र और सबको पहुंचाना देश का लक्ष्य और हम सबका कर्तव्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न नैतिकता का है जो भारतीय संस्कृति का केन्द्र बिन्दु रहा है। चौतरफा प्रगति हो और वह प्रगति बनी रहे इसके लिए यह परमावश्यक है कि प्रजातंत्र के सभी स्तंभ न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका नैतिकता के मानदंडों पर खरे उतरें। विगत वर्षों में ऐसे अनेक अवसर आए हैं जब इन सबकी नैतिकता पर प्रश्न चिन्ह खड़े हुए हैं। इन्हीं सबको ध्यान में रख कर विगत वर्षों में सूचना के अधिकार को वैधानिक दर्जा दिया गया है और इसे प्रभावी बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। इसके अच्छे परिणाम भी सामने आ रहे हैं। तथापि भारतीय समाज अभी भी अपने अधिकारों के प्रति पूरी तरह जागरूक नहीं है।

उक्त पृष्ठभूमि में न केवल मानवाधिकारों की रक्षा के लिए बल्कि मानवाधिकारों के प्रचार एवं प्रसार के लिए भी राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग से महत्वपूर्ण दायित्व निभाने की अपेक्षा की जाती है। 'मानव अधिकार : नई दिशाएं' वार्षिक जर्नल का प्रकाशन आयोग द्वारा इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल है। जर्नल के प्रकाशन की कड़ी में यह सातवां अंक है। जर्नल में पाठकों की सतत् रुचि बनाये रखने तथा इसे अधिकाधिक जन उपयोगी बनाए रखने के

प्रयासों की कड़ी में इस अंक से इसे विषयपरक (Theme oriented) बनाने की सार्थक चेष्टा की गयी है। यह अंक 'महिलाओं और बच्चों के अधिकार' विषय पर केन्द्रित है। साथ ही जर्नल में कुछ ऐसे लेख भी प्रकाशित किए गए हैं जो विषयपरक न होते हुए भी मानव अधिकारों के बहुआयामी दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करने में मील का पत्थर साबित हो सकते हैं। उपभोक्ता अधिकार, एच आई वी/एड्स, भारतीय समाज में सरोगेसी, भारत में सम्मान के लिए स्त्रियों की हत्या, आतंकवाद, वंचित वर्गों का संघर्ष तथा पंचायती राज इत्यादि व्यापक महत्व के विषयों पर अनेक विचारोत्तेजक आलेख सुधी लेखकों द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं। पाठक यह अनुभव करेंगे कि जहां एक ओर इन आलेखों में वैचारिक परिधि के दायरे को विस्तृत करने का प्रयास किया है वहीं दूसरी ओर इनमें अपनी परंपरा के साथ आधुनिक परिस्थितियों से उपजी समस्याओं पर विचारोत्तेजक एवं बेबाक टिप्पणी भी की गयी है।

जर्नल के पूर्व अंक से आयोग ने 'साक्षात्कार' कॉलम से एक नई श्रृंखला की शुरूआत की थी, जिसे जारी रखते हुए हम इस अंक में राष्ट्रीय महिला आयोग की अध्यक्ष डॉ0 गिरिजा व्यास का 'साक्षात्कार' प्रकाशित कर रहे हैं। साथ ही आयोग के कुछ महत्वपूर्ण निर्णयों को कहानी का रूप देते हुए उसे रोचक बनाकर पुनः प्रकाशित करने का क्रम भी जारी है। यह जर्नल जनजागरण का माध्यम बने और सतर्क, सजग, जिम्मेदार नागरिक की भूमिका को प्रशस्त करने में सफल हो, यही हमारी कामना है।

आशा है यह अंक पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। इसमें सुधार की अनेक संभावनाएं हैं और उसके लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

(जगदीश प्रसाद मीणा)

मानव अधिकारों के संरक्षण में आयोग की प्रतिबद्धता

• *पी. सी. शर्मा*

न मानुषात् परतरं किंचिदस्ति
''मनुष्य से परे या ऊँचे कोई और दूसरा धर्म नहीं है।''

• *महाभारत*

राष्ट्र कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने '**मानुषेर धर्म**' की श्रेष्ठता कही है। इस तरह मनुष्यता या इंसानियत को आचरण की सबसे बड़ी कसौटी की तरह स्वीकार करने पर प्राचीन काल से ही बल दिया जाता रहा है। पर बदलते समय के साथ समाज में भी बदलाव आया। परिस्थितियाँ बदलीं और अच्छे आदर्शों के बावजूद समाज में विकार भी आते गए। इस बदलाव के ऐतिहासिक, सामाजिक और आर्थिक कारण हैं जिनके विस्तार में जाने का समय और अवसर नहीं है। परंतु इतना स्पष्ट है कि 'कर्म' के स्थान पर जाति, राजा-प्रजा में अंतर, संकीर्णता और धर्मान्धता के कारण समाज में भेदभाव और शोषण को बढ़ावा मिला। इन सबका नकारात्मक परिणाम घृणा, विद्वेष और हिंसा के रूप में हमारे सामने है। व्यापकता और परस्पर निर्भरता के आदर्श खोते गये और आज समाज के ताने-बाने को लगातार चुनौती मिल रही है, वह भी कई कोनों से। वस्तुत: मनुष्यता या इंसानियत के अभाव में मनुष्य का जीवन केवल नाममात्र का ही रहता है। मानव अधिकार आयोग इस मनुष्यता की पुन:स्थापना और रक्षा के लिए कटिबद्ध और सतत कार्यरत है।

मानव अधिकार का विचार आते ही हमारे मन में नाना प्रकार के भाव और संदर्भ कौंध जाते हैं, विशेषकर शिक्षा, स्वास्थ्य, समानता, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन से जुड़े अनेक पक्ष। वस्तुत: मानव अधिकारों को समझने, इन्हें आत्मसात करने तथा आम जनता तक पहुंचाने की आज बहुत आवश्यकता है। इस प्रक्रिया में मानव अधिकार आयोग के साथ-साथ हम सभी की जिम्मेदारी बनती है कि हम एक सजग व सतर्क नागरिक की हैसियत से मानव अधिकारों के संरक्षण और संवर्धन में योगदान दें।

• *सदस्य, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, दिल्ली*

मानव अधिकारों को सामान्यत: उन अधिकारों के रूप में लिया जाता है जो प्रत्येक मनुष्य के लिए प्रासंगिक हैं जिसे वह जाति, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनैतिक या अन्य शर्त, राष्ट्रीय या सामाजिक कारण, संपत्ति, जन्म या अन्य स्तरों के भेदभाव के बिना स्वतंत्र रूप से उपयोग में लाता है। सरल शब्दों में कहें तो मानव अधिकार के चार स्तंभ है - जीवन, स्वतंत्रता, समानता और गरिमा। इन्हें उपलब्ध करने और सुनिश्चित करने की गारंटी का प्राविधान संविधान में किया गया है। अंतर्राष्ट्रीय संधियों तथा प्रचलित विधि सिद्धांतों ने इन्हें महत्व दिया है और देश के कानून एवं न्याय व्यवस्था में इन्हें लागू किया जाता है। 'मानवाधिकार' का मतलब है कि सम्पूर्ण मानव जाति एक परिवार है। मानव अधिकार सारी दुनिया में स्वीकार्य हैं जो हम सभी के पूर्ण शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए अत्यावश्यक हैं। इन अधिकारों का उद्‌भव मानव की अंतर्निहित गरिमा से हुआ है। सन् 1948 में पूरी दुनिया ने 'मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा' को उद्घोषित और अंगीकार किया था।

हम सभी इस तथ्य से परिचित हैं कि भारतीय समाज में कमोबेश सभी समुदायों और वर्गों में मानव अधिकारों के उल्लंघन की घटनाएं निरंतर हो रही हैं। हमारे लिए यह चिंता का विषय भी है और चुनौती भी। यद्यपि हमारे संविधान में हर प्रकार के भेदभाव की समाप्ति के लिए पर्याप्त प्रावधान हैं और अनेक कानून भी अपनी जगह मौजूद हैं, फिर भी स्थिति संतोषजनक नहीं कही जा सकती।

बाल मजदूर, बंधुआ मजदूरी, मानव व्यापार, हिरासतीय मृत्यु, सांप्रदायिक हिंसा, पुलिस हिरासत और जेल में घटित उत्पीड़न तथा मौत, मुठभेड़ का प्रपंच, महिलाओं और बच्चों के उत्पीड़न, गरीब, आदिवासी और दलितों के साथ अत्याचार एवं भेदभावपूर्ण रवैया, शोषण, बलात्कार, हत्या एवं अपहरण की तमाम घटनाएं हमारे मन को विचलित कर देती हैं। इतना ही नहीं आतंकवाद, साम्प्रदायिक हिंसा, नस्ल के नाम पर निरीह प्राणियों की हत्या और उत्पीड़न मानव अधिकारों का सीधा और क्रूर अतिक्रमण है।

सन् 1993 से भारत का राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग मानव अधिकारों के संरक्षण और संवर्धन में प्रभावी एवं सतर्क हस्तक्षेप के साथ कार्य कर रहा है। दूसरी ओर विगत कई वर्षों में 18 राज्यों में, राज्य मानव अधिकार आयोग अस्तित्व में आए हैं, दो राज्य - झारखण्ड और सिक्किम में आयोग के गठन की प्रक्रिया भी चल रही है।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का दायरा व्यापक है। देश का कोई भी व्यक्ति, किसी भी हिस्से से अपनी शिकायत दर्ज कर सकता है। आयोग एक स्वशासी संस्थान है जो संवैधानिक व्यवस्था के अंतर्गत देश के किसी भी भूभाग में किसी भी संस्था में जा सकता है। जांच-पड़ताल करना, तहकीकात करना, राज्य सरकारों एवं संस्थाओं को किसी क्षेत्र विशेष में कार्य करने हेतु दिशा-निर्देश देना आयोग की परिधि कार्य प्रणाली में शामिल है। आयोग ने विशेषकर जेल, चिकित्सा, स्वास्थ्य, शिक्षा, समाज कल्याण, महिलाओं और बच्चों के अधिकारों के विषय में

कई ऐतिहासिक कदम उठाए हैं। संवेदनशील और गंभीर मामलों में आयोग ने ऐसी व्यवस्था की है कि यथाशीघ्र तथ्यों को एकत्र किया जा सके जिससे पीड़ित को न्याय और राहत पहुंचाई जा सके।

संप्रति, आयोग ने मानव अधिकारों के संरक्षण और संवर्धन तथा ज़मीनी स्तर पर स्थिति में सुधार लाने के लिए देशभर के लगभग प्रत्येक राज्य से एक जिले को शामिल कर कुल 28 जिलों को जो सामाजिक, आर्थिक दृष्टि से विकास नहीं कर पाये हैं अपने अध्ययन में शामिल किया है। आयोग इन जिलों का सघन दौरा कर रहा है, उन तमाम बातों का पता लगाया जा रहा है जो मानव अधिकार की दृष्टि से महत्व रखती हैं, इनमें सार्वजनिक वितरण प्रणाली, शिक्षा, स्वास्थ्य योजना और अनेक सामाजिक-सांस्कृतिक एवं राजनीतिक अधिकारों का लेखा-जोखा लिया जाता है तथा यह भी देखा जाता है कि पुलिस प्रशासन, जेल और नीतियों का क्रियान्वयन करने वाली संस्थाएं कहीं मानव अधिकारों की अनदेखी तो नहीं कर रही हैं।

हमारे सामने दो तरह की चुनौतियां हैं – एक परम्परागत समाज में मौजूद परिस्थितियों से संबंधित मानव अधिकारों का अतिक्रमण और दूसरी आधुनिक विकास के फलस्वरूप उत्पन्न समस्याएं जिनसे मानव अधिकारों की उपेक्षा होती है। इन दोनों श्रेणियों में सामाजिक-सांस्कृतिक और शैक्षणिक मानव अधिकार और पर्यावरण तथा औद्योगिक अर्थात् आधुनिकीकरण के कारण पैदा हो रही परिस्थितियां हैं जिनके साथ हम सामंजस्य नहीं बैठा पा रहे हैं।

आप चारों और दृष्टिपात करें, तो आपको आभास होगा कि विज्ञान के चमत्कार ने हमारी दुनिया ही बदल डाली है। एक छोटा सा उदाहरण लें अल्ट्रासाउण्ड – इसके द्वारा गर्भ में पल रहे भ्रूण की पहचान कर बालिका भ्रूण हत्या ने देश के कई हिस्सों में जनसंख्या में स्त्री-पुरुषों के अनुपात को डगमगा दिया है। पुत्र प्राप्ति की कामना ने तो लोगों को अमानवीय बना दिया है। लिंग अनुपात का आलम यह है कि कई राज्यों में विवाह एक समस्या का रूप ले रहा है। सन् 2001 की जनगणना के आंकड़े बताते हैं कि एक हजार पुरुषों की तुलना में पंजाब में 874, हरियाणा में 861 और दिल्ली में 821 महिलाएं थीं। बिगड़ता अनुपात एक सामाजिक समस्या तो है ही यह मानव अधिकार से भी जुड़ा है, हमारी चिंता यह है कि आगे आने वाले समय में क्या होगा, शादी के लिए लड़कियों की कमी होने लगी है – मैं कहता हूँ कि बेटियों को मारोगे तो बहू कहां से लाओगे? जब हम जीवन की रक्षा और समता के साथ गरिमा की बात करते हैं तो फिर हमारी कथनी और करनी में अन्तर क्यों होता है। इसमें संदेह नहीं कि लैंगिक अनुपात, सामाजिक व्यवस्था में दखल पैदा करेगा।

इसी तरह एक ज्वलंत समस्या है खाप पंचायतों के द्वारा जारी होने वाले फरमान की। परम्परा और आधुनिकता के बीच एक संघर्ष दृष्टिगोचर हो रहा है, क्योंकि सामाजिक मूल्य, संस्कार और रीति-रिवाज उतनी तेजी से नहीं बदलते जितनी तेजी से भौतिक जीवन में परिवर्तन होते हैं। परिवर्तन के इस दौर में हमारा पहला कर्तव्य है परंपरा और आधुनिकता के बीच

सामंजस्य स्थापित करना और प्रत्येक व्यक्ति के मानव अधिकारों का संरक्षण और संवर्धन करना चाहे वह किसी भी धर्म, जाति, परिवार, पंचायत, अमीर-गरीब से सरोकार रखता हो। समाज के सर्वांगीण विकास के लिए संकीर्णता और दकियानूसी ख्यालों को भूलना होगा।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था *"शिक्षा वह प्रशिक्षण है जिसके द्वारा इच्छाशक्ति के प्रवाह एवं अभिव्यक्ति को इंद्रियों के अधीन कर लिया जाए तथा उसे यथार्थ बना दिया जाए।" वास्तविक शिक्षा शब्दों के समूह से क्षमता का विकास करना नहीं है वरन् व्यक्ति को वैसा प्रशिक्षण देना है जिससे वह सही एवं प्रभावी ढंग से निर्णय ले सके।*

शिक्षा के संबंध में स्वामी विवेकानंद का उपर्युक्त उद्धरण मुझे इक्कीसवीं शताब्दी में भी बहुत ही प्रासंगिक एवं समीचीन प्रतीत होता है क्योंकि मानव अधिकार और शिक्षा एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। शिक्षा के अभाव में मानव अधिकारों की संकल्पना मुश्किल है। मानव अधिकारों को समाज के सभी वर्गों में स्थापित करने के लिए आवश्यक है कि मानवीय गरिमा और प्रतिष्ठा के बारे में जागरूकता लाई जाए, ऐसा केवल शिक्षा के माध्यम से ही हो सकता है।

शिक्षा से मेरा तात्पर्य व्यक्ति के सर्वांगीण विकास की प्रक्रिया से है न कि डिग्री या उपाधि प्राप्त करने से। बौद्धिक, मानसिक, नैतिक और शारीरिक विकास हमें ऐसे स्थान पर ला खड़ा करता है जहां हम अपने और समाज के विकास में योगदान देने के काबिल होते हैं। वस्तुतः यहीं से संवेदना, सहिष्णुता और शांति का मार्ग प्रशस्त होता है। निःसन्देह शिक्षा हमारी सोच और व्यावहारिक जीवन को परिष्कृत करती है। शिक्षा के सिद्धांतों को जमीन पर लाने की जरूरत है तभी हम जीवन की उन कठोर सच्चाइयों से परिचित हो सकेंगे जिनकी जड़ गरीबी, शोषण और भेदभाव की मानसिकता में है। हमारा कर्तव्य है कि हम नौजवन पीढ़ी को अच्छे संस्कारों और गुणों से पोषित करें।

अंत में, एक और महत्वपूर्ण बात। आज हम मानव अधिकारों के युग में जी रहे हैं जिसमें वक्त का यह तकाजा है कि हम मानव को उसकी जन्मजात गरिमा दें तथा सदियों से व्याप्त सामाजिक कुरीतियों, छुआछूत, धार्मिक अंधविश्वास, असमानता, लैंगिक भेदभाव तथा कट्टरता जैसे विकास में बाधक तत्वों को जड़ से उखाड़ कर इस नये मानवीय युग को संभव बनायें।

* * *

सामाजिक विकास हेतु साक्षरता का प्रयोजन और पंचायती राज

• प्रो. गिरीश्वर मिश्र

यह प्राय: सर्वस्वीकृत हो चला है कि अविकसित और विकासशील एशियाई और लातिन अमेरिकी देशों में सामाजिक-आर्थिक प्रगति की संभावना इस बात पर निर्भर करती है कि वहां की पीढ़ियों से उपेक्षित, वंचित और शोषित जनता उन देशों की मुख्यधारा में कहाँ तक शामिल हो पाती हैं। इन देशों में भारत की स्थिति भिन्न है। यहां की साहित्यिक-सांस्कृतिक परम्परा जहां एक ओर गौरव-बोध कराती है, वहीं दूसरी ओर जातियों-उपजातियों में बंटा हुआ सामाजिक ढांचा ऊंच-नीच, छूआछूत और अन्य पूर्वाग्रहों से अभी भी इस तरह ग्रस्त है कि समाज का एक बड़ा हिस्सा अभी तक अभिशप्त जीवन जी रहा है। अनुसूचित जातियों, जनजातियों, अल्पसंख्यक वर्गो, पिछड़ी जातियों और कमजोर तबके के लोग अपनी रोटी, कपड़ा और मकान जैसी मूल आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पा रहे हैं। औसत राष्ट्रीय आय (प्रति व्यक्ति) में बढ़ोतरी के आंकड़े, गरीबी और अमीरी के बीच बढ़ती खाई को अभी कम नहीं कर पा रहे हैं। गरीबी की रेखा के नीचे रहने वालों की बड़ी संख्या अभी भी चिन्ताजनक है। बढ़ती जनसंख्या, घटते संसाधन और प्रशासन तंत्र के जाल और भ्रष्टाचार में फंस कर हमारा गणराज्य, लोकतंत्र की आकांक्षाओं को, जिसमें सबको उन्नति के समान अवसर मिल सकें और समाज के सबसे गरीब और दुखी लोगों में परिवर्तन लाने में पिछड़ रहा है। आर्थिक विषमता, मुद्रास्फीति, प्राकृतिक विपदा, तथा निजी और सीमित स्वार्थ के कारण व्यापक पैमाने पर जनहित के लक्ष्य पाने में सरकार असहाय हो रही है। ऐसी दशा में पंचायती राज व्यवस्था द्वारा जनता का सशक्तीकरण विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाता है।

आज देश में लोकतंत्र परीक्षा की घड़ी से गुजर रहा है। देश में सामुदायिक जीवन की परम्परा, जिसमें सभी वर्गों के लोगों की भागीदारी हो और जनता सक्रिय रूप से निर्णय ले और उनका कार्यान्वयन करे, स्थापित नहीं हो सकी है। पिछले छह दशकों में विकास, प्रगति और उन्नति का लाभ थोड़े से लोगों तक पहुँच सका। इसके फलस्वरूप असंतुलन, द्वेष और असंतोष

• *मनोविज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली*

के कारण सामाजिक संघर्ष अनेक क्षेत्रों में दिखने लगा है। ऐसे परिप्रेक्ष्य में पंचायती राज एक महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करता है। इसमें ग्रामीण समाज के कायाकल्प की संभावना निहित है। पंचायती राज अपने आदर्श रूप में जनता की सत्ता का जनता को अर्पण है। इसमें जनशक्ति का सार्थक विनियोग जनता को आत्म निर्णय, योजना और कार्यान्वयन, संसाधनों के उपयोग और मूल्यांकन हेतु समर्थ बनाने के लिए निहित है। अब तक देश में नियोजन की प्रक्रिया ऊपर से नीचे की दिशा में होती रही है और स्थानीय प्रश्नों और समस्याओं के प्रति संवेदनशील न होने के कारण पर्याप्त सफल नहीं रही। साथ ही केन्द्रीय सत्ता के गांव तक पहुँचने में निर्णयों और संसाधनों को अनावश्यक रूप से अधिक समय लगता रहा। फलत: उनके लाभ जनता को समय पर नहीं मिल सके।

यही नहीं, सहायता की धनराशि भी ऊपर से नीचे तक पहुँचते-पहुँचते लूट खसोट के कारण घट जाती है। कभी स्वर्गीय राजीव गांधी ने प्रधानमंत्री के रूप में माना था कि रुपये में केवल पंद्रह पैसे ही वास्तविक हितग्राहियों तक पहुंच पाते हैं। शेष पचासी पैसे प्रबंध-व्यवस्था की भेंट चढ़ जाते हैं। ऐसी स्थिति में विकेंद्रीकृत व्यवस्था का विकल्प महत्वपूर्ण है। पंचायती राज निश्चय ही ग्रामीण समाज को समर्थ बनाने की दिशा में एक महत्वाकांक्षी प्रयास है, जो न केवल साधनों के स्थानीय स्तर पर उपलब्धता को सुनिश्चित करता है, वरन् योजना के निर्माण, कार्यान्वयन और उसकी देख-रेख का अवसर दे कर एक समर्थ, भयमुक्त और जिम्मेदार समाज की दिशा में आगे ले जाता है।

पंचायती राज आम आदमी को स्वयं अपना और अपने समुदाय का भाग्य विधाता बनाता है। सामुदायिक कार्यकलाप में गांव के हर वर्ग, हर जाति के लोगों की भागीदारी अपने आप में एक अभूतपूर्व घटना है। अपने साधनों और जनशक्ति के बावजूद गांव उपेक्षित होते गए। समृद्धि का कारवां सजाने में उनका हाथ भी रहा, पर वे खुद तमाशा बन गए। अधिकांश गांव उपेक्षा के शिकार हुए और गांव के लोग मुख्यधारा से अलग-थलग, ठगे से खड़े रहे। उन्हें ''जाहिल'', ''गंवार'' और ''बेवकूफ'' कह कर उनकी परिस्थिति के लिए स्वयं उन्हें ही जिम्मेदार ठहराया जाता रहा। पीड़ित व्यक्ति को ही दोषी ठहराना अपने दायित्वों से मुकरने का एक अच्छा बहाना है। इस संदर्भ में पंचायती राज एक सार्थक और सृजनात्मक हस्तक्षेप है। इससे यह विश्वास बंधता है कि लोकतंत्र की शक्ति दृढ़ हो सकेगी। इस दृष्टि से पंचायती राज के प्रयोग को प्रभावी बनाना आवश्यक है। इसमें कोई संदेह नहीं कि भारतीय लोकतंत्र का भविष्य कैसा होगा, यह बहुत कुछ पंचायती राज के प्रयोग की सफलता पर निर्भर करेगा।

सामुदायिकता की परंपरा, पंचायती राज और शिक्षा

स्मरणीय है कि ग्रामीण समाज के लिए पंचायती राज का विचार नया नहीं है। भारतीय समाज की संरचना व्यक्तिवादी न होकर समष्टिवादी है और सहयोग, भागीदारी तथा पारस्परिकता औसत भारतीयों के लिए एक सहज अनुभव है। अभी भी ''व्यक्ति'' मूल इकाई नहीं बना है परंतु

आर्थिक असुरक्षा, भविष्य की चिंता, और उपभोक्तावाद ने आत्मकेंद्रिकता और स्वार्थपरता की ओर हमें जरूर धकेला है। इसी का प्रतिफल है सामाजिक भागीदारी से निरंतर पलायन। पर सामाजिक दायित्व से भाग कर निजी हित का साधन ठीक नहीं है क्योंकि व्यक्ति कभी-भी स्वयं में पर्याप्त नहीं होता। उसे अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भी समुदाय और समाज की सहायता लेनी पड़ती है। व्यक्ति और समाज के बीच द्वन्द्व और समाज को अपने लिए मात्र साधन मानना अल्पकालिक दृष्टि से लाभदायक हो सकता है पर दीर्घकालिक दृष्टि से व्यक्ति या समाज किसी के भी हित में नहीं है। पंचायती राज की परिकल्पना भारतीय मानव में अन्तर्निहित सामुदायिकता के बीज को एक सार्थक आकार देने की दिशा में एक ठोस प्रयास है।

इस समय सारे देश में पंचायती राज की व्यवस्था कायम करने और उसे प्रभावी ढंग से संचालित करने का उपक्रम चल रहा है। आशा की जाती है कि अपने मूर्त रूप में यह संस्था विकेन्द्रित नियोजन का विस्तार करेगी और गांवों के स्तर पर संसाधनों की उपलब्धता और अपनी जरूरतों के मुताबिक उनके उपयोग का अवसर देगी। इसके पीछे यह मान्यता है कि ग्रामीण अपनी आवश्यकताओं को जानते हैं और ये आवश्यकताएं उनके सामने वरीयता क्रम में स्पष्ट हैं। साथ ही यह भी स्वीकृत है कि ग्रामीण जन अपने विचारों को व्यक्त करने, उन्हें दूसरों तक पहुंचाने, सामूहिक निर्णय लेने और आवश्यक (न्यूनतम) हिसाब-किताब रखने में सक्षम हैं। स्पष्ट है कि पंचायती राज का प्रभावी संचालन ग्रामीण जनों में कुछ बौद्धिक और तार्किक योग्यताओं और कौशलों की अपेक्षा करता है। पंचायती राज ग्रामीण नियोजन और विकास के लक्ष्यों की ओर अग्रसर हो सके, इसके लिए जरूरी है कि इसके सहभागियों में अपेक्षित तत्परता और कौशल भी विकसित हों। यदि ऐसा नहीं होता है तो न केवल ग्रामीण समाज को इसका लाभ नहीं मिलेगा बल्कि इसके दुरुपयोग के लिए स्वार्थी तत्वों को छूट भी मिल जाएगी। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि ग्रामीण जनता अकर्मण्य या बुद्धिहीन है। वे अपना भरण-पोषण कर रहे हैं और किसी न किसी तरह जीवन निर्वाह हो ही रहा है, परन्तु संचार और तकनीकी क्रांति के आज के युग में प्रगति के लिए और अपने को देश की मुख्यधारा से जोड़ने के लिए साक्षरता, विशेषत: कार्यात्मक साक्षरता परमावश्यक है।

भारतीय समाज अपनी कई श्रेष्ठ परंपराओं के लिए जहां प्रसिद्ध है, वहीं वर्ण, जाति और वर्ग के भेद-उपभेद न केवल विवाह, खान-पान तथा सामाजिक-धार्मिक कार्यकलापों को नियमित करते हैं, बल्कि शिक्षा के संस्कार को भी जाति और वर्ग की सदस्यता से जोड़ देते हैं। इसी के चलते जहां ब्राह्मण को ज्ञान पाने और ज्ञान देने का दायित्व मिला, वहीं शूद्र का कार्य समाज की सेवा-चाकरी करना था। बाद में जाति प्रथा ने इस परंपरा को और भी दृढ़ किया। बहुत सारी जातियों का पेशा हो गया उच्च जाति के लोगों की सेवा करना। वे ऊंची जातियों पर आश्रित हो गये और साक्षरता तथा शिक्षा उनके लिए वर्जित हो गई। शिक्षा के संस्कार पर उच्च जातिवालों का वर्चस्व होता गया। शिक्षा की प्रक्रिया से अलग-थलग पड़े निम्न जाति के लोग मेहनत-मजदूरी कर अपना पेट पालते रहे और ऊंची जाति के लोग शिक्षित हो कर आगे बढ़ते

रहे। यह भेद पीढ़ी–दर–पीढ़ी कायम रहा और निम्न जाति के लोगों की शक्ति और समझ को भोथरा बनाता रहा। जमींदारी के जमाने तक जमींदारों पर आश्रित निम्न जाति के लोगों को कुछ आर्थिक प्रश्रय मिल गया था, पर बाद में वे कहीं के न रहे। आज भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता की स्थिति बड़ी दयनीय है। विश्व में निरक्षरता की दृष्टि से भारत अन्य देशों से ऊपर है। आजकल आर्थिक महाशक्ति के रूप में उभरते भारत की प्राय: चर्चा की जाती है। यह सब तब है जब निरक्षरता मिटाने के लिए देश कृत–संकल्प है। जनसंख्या विस्फोट के कारण निरक्षरों की संख्या निरंतर बढ़ती ही जा रही है। इसलिए जहां निरक्षरता का प्रतिशत घट रहा है वहीं निरक्षरों की संख्या बढ़ रही है। यह सही है कि जहाँ 1951 में साक्षरता दर 18.33 प्रतिशत थी वह 2001 में 65.38 प्रतिशत हो गयी और इसमें कुछ और इजाफा हुआ है परन्तु पूर्णत: साक्षर भारत के लिए अभी भी हम आश्वस्त नहीं हैं। ग्यारहवीं योजना में 85 प्रतिशत साक्षरता पाने का लक्ष्य 2012 तक के लिए निर्धारित किया गया है। इससे जूझने के लिए मई 1988 में जन साक्षरता का एक वृहद् आंदोलन शुरू हुआ। राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के तहत व्यापक कार्यक्रम हाथ में लिया गया और साक्षरता को शैक्षिक कार्य और आर्थिक विकास कार्यक्रम का अवयव माना गया है। महात्मा गांधी ने निरक्षरता को देश के लिए शर्मनाक कहा था और पिछले छह दशकों में इस कलंक को मिटाने में हम सफल नहीं हो सके हैं। आज अब साक्षरता को सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विकास का आवश्यक उपकरण माना जा रहा है, इसके लिए व्यापक स्तर पर चर्चा और कार्य अपेक्षित हैं।

साक्षरता के लिए हुए प्रयास विशेषत: 1979 के पहले केवल काम चलाऊ थे। अंग्रेजी राज में कुछ रात्रिकालीन पाठशालाएं चलती थीं। बाद में जनता की सरकार बनने पर साक्षरता–कक्षाओं के विस्तार की दिशा में प्रयास हुए। आजादी मिलने के बाद सामाजिक शिक्षा का कार्यक्रम हाथ में लिया गया, जिसमें प्रौढ़ साक्षरता और नागरिकता की भावना पर ध्यान दिया गया। पर पांचवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि तक प्रौढ़ साक्षरता के प्रयास बड़े कमजोर थे और सीमित संसाधनों के कारण यह कार्य व्यापक पैमाने पर नहीं हो सका। महाराष्ट्र में ग्राम शिक्षण मुहिम ने इस अवधि में उल्लेखनीय कार्य किया, पर अन्य राज्यों में विशेष प्रगति नहीं हुई। वर्ष 1979 में "राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम" शुरू हुआ, जिसमें प्रौढ़ साक्षरता का संबंध अन्य विकास कार्यक्रमों से जोड़ा गया तथा प्रशिक्षण, पाठ्य सामग्री का निर्माण, जनसंचार माध्यमों का उपयोग और मूल्यांकन को शामिल किया गया। राजनैतिक कारणों से 1980 में ही इस कार्यक्रम को रोक दिया गया। वर्ष 1982 में "प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम" के रूप में इसे पुन: हाथ में लिया गया। यह कार्यक्रम थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ "राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम" जैसा ही था। वर्ष 1985 में "जन साक्षरता कार्यक्रम" तथा "राष्ट्रीय साक्षरता मिशन" को आरंभ किया गया।

राष्ट्रीय साक्षरता मिशन कार्यात्मक साक्षरता पर बल देता है। इसके अन्तर्गत प्रमुख रूप से साक्षरता तथा गणित में आत्म निर्भरता, वंचित रहने के कारणों से अवगत होना और संगठन

तथा सहभागिता द्वारा वंचन को दूर करने के उपाय की दिशा में आगे बढ़ना, आर्थिक स्थिति तथा जीवन की गुणवत्ता में सुधार हेतु जरूरी कौशलों का विकास, पर्यावरण का संरक्षण, स्त्रियों को समानता देना तथा छोटे परिवार के आदर्श का पालन आदि सम्मिलित हैं। इन लक्ष्यों को पाने के लिए बहु-आयामी उपाय अपनाए जा रहे हैं। संचार माध्यमों, गैर सरकारी संस्थाओं आदि की सहायता से साक्षरता विस्तार का प्रयास किया जा रहा है। जन आन्दोलन, सतत शिक्षा, जन शिक्षण, जत्था, निरंतर शिक्षा तथा व्यावसायिक शिक्षा के कार्यक्रमों का सहयोग लिया जा रहा है। इसे प्रभावी बनाने के लिये रेडियो, दूरदर्शन, समाचार-पत्र, नाटक, तथा जन संचार माध्यमों का उपयोग भी किया जा रहा है। गैर-सरकारी संगठनों ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य आरंभ किया है।

इस तरह हम पाते हैं कि प्रौढ़ शिक्षा को राष्ट्रीय स्तर पर भिन्न-भिन्न मात्रा में समर्थन मिलता रहा है और इसके फलस्वरूप और आयोजन को लेकर कोई स्पष्ट चित्र नहीं बन सका था। संप्रति व्यापक स्तर पर और इच्छा शक्ति के साथ एक आन्दोलन के रूप में साक्षरता के प्रयास राष्ट्रीय स्तर पर चल रहे हैं। यह निरक्षरता से मुक्त भारत बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण हस्तक्षेप है।

साक्षरता और प्रौढ़ शिक्षार्थी

साक्षरता और शिक्षा के बीच एक विचित्र रिश्ता है। अनपढ़ प्रौढ़ पढ़-लिख तो नहीं सकते, अत: निरक्षर हैं, पर उन्हें अशिक्षित नहीं कहा जा सकता। अक्षर-विश्व की खिड़की उनके लिए नहीं खुली है और इस तरह उनका एक सिकुड़ा, सिमटा ज्ञान जगत होता है, पर उन्हें व्यावहारिक ज्ञान अवश्य होता है। वे मौखिक परंपरा में जीते हैं और उनकी देशी संस्कृति में इससे निभ जाती थी। एक निरक्षर व्यक्ति भी वाचिक रूप में भाषा के उपयोग में परिपक्व हो जाता है। परिवार, गांव के अपने सीमित दायरे में एक निरक्षर प्रौढ़ पुस्तकीय ज्ञान के बिना भी सुनकर, कहानी और काव्य का आनन्द उठा सकता है। वह तर्क देता है, अनुभवों का वर्णन करता है और अपना मंतव्य दूसरों तक संप्रेषित करता है। वह शब्दों से खेलता भी है और उनका सृजन भी करता है। हां! छापेखाने की सौगात उसे प्राप्त नहीं है। वह पत्र नहीं लिख सकता और अक्षरों और उस जैसे प्रतीकों का उपयोग साक्षरों की तरह नहीं कर सकता पर निरक्षर प्रौढ़ या युवक जब अक्षर ज्ञान प्राप्त करने चलता है, तो उसकी तुलना किसी भी तरह अक्षरारंभ करने वाले चार-पांच साल के बच्चे से ठीक नहीं होगी। वाचिक कौशलों की दृष्टि से वह अधिक परिपक्व होता है तथा उसका शब्द भंडार भी विस्तृत होता है ऐसे में यंत्रवत् ककहरा रटाना-पढ़ाना हास्यास्पद हो जाता है। उसे भाषा का लिखित रूप ग्रहण कराने के लिए आवश्यक होगा कि लिखित भाषा उसके लिए अर्थवान हो ताकि भाषा शिक्षण की बचकानी यांत्रिकताएं बाधा न बनें।

प्रौढ़ के लिए साक्षरता की प्रक्रिया में सीखने वाले के भाषिक अनुभव और उसकी विश्व दृष्टि के बीच सामजंस्य होना चाहिए। वाचिक भाषा के अर्जन और लिखने-पढ़ने के अर्जन के

बीच समानता और अन्तर जानकर भाषा के लिखित रूप का शिक्षण आयोजित करना उपयुक्त होगा। ऐसे पाठों का उपयोग जो सीखने वाले को उसके अपने परिवेश के बारे में सचेत कर सकें और उसकी रूचि और कल्पना शक्ति को उत्साहित करे, उचित होगा। चेतना और कार्यात्मकता के बिना कोरी साक्षरता व्यर्थ होगी। अंगूठे का छाप छोड़कर यदि कोई हस्ताक्षर करने लगे और साक्षरता की इस उपलब्धि पर हम प्रसन्न हो लें तो इससे कोई उद्देश्य पूरा नहीं होता। साक्षरता जब व्यक्ति के विचार और दृष्टिकोण में बदलाव लाए तभी उसकी सार्थकता सिद्ध होगी। साक्षरता के प्रयास दुर्भाग्यवश अत्यन्त सीमित रहे हैं, साक्षरों की सृजनात्मकता और उत्साह का भरपूर उपयोग नहीं होता। इसी से जुड़ा हुआ प्रश्न है साक्षरों के लिए रोचक सामग्री उपलब्ध कराने का जो उनकी रूचि को बनाने में सहायक होगी। साक्षरता के लाभ चिरस्थायी हों, इसके लिए यह आवश्यक है कि नव साक्षरों के लिए उपयुक्त पाठ्य सामग्री उपलब्ध करायी जाए। मौखिक रूप से भाषा-प्रयोग की आदत के कारण लिखित पाठ पढ़ना एक नया और अपरिचित कार्य हो जाता है। ऐसे में यह आवश्यक है कि नव साक्षरों की सामग्री उनके जीवन, संसार और संस्कृति के निकट और उनकी क्षमता के अनुकूल हो।

साक्षरता, सीखने के अधिकार को स्थापित करती है। शिक्षा की प्रक्रिया के रूप में साक्षरता परिवर्तन लाने का एक गंभीर प्रयास है। वह मनुष्य को अपने जीवन पर नियंत्रण का अवसर देती है और स्वाधीन बनाती है। अक्षर का पढ़ना महज अक्षर को पढ़ना न रह कर अपनी-अपनी दुनिया को भी पढ़ना संभव बनाता है। अक्षर विश्व में प्रवेश प्राय: पिछड़े और शोषित जनों के लिए अनुभव जगत का विस्तार और आत्म विश्वास लाने का सशक्त माध्यम बन जाता है। वह उन्हें आत्मनिर्भर होने और अपने दमन और शोषण को समझने लायक बना सकता है। एक मनुष्य के रूप में वह अपने और दूसरे के अनुभवों को पकड़ने, अंकित करने और स्थायी बनाने में सक्षम हो सकता है। इससे उसकी सामाजिक सहभागिता में भी वृद्धि होगी और वह जीवन का नया अर्थ तलाश सकेगा।

पंचायती राज की संभावनाएँ

पंचायती राज का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय स्वायत्त शासन की स्थापना और गांवों में प्रशासन तथा विकास को गति देने के लिए किया गया। इस तरह लोकतांत्रिक व्यवस्था को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से यह संस्था महत्वपूर्ण है। यह एक लोकतांत्रिक राजनैतिक उपकरण है जो ग्रामीण जनता को राजनैतिक सहभागिता का अवसर देता है, जिससे राजनैतिक नियंत्रण नीचे से ऊपर की ओर संचालित हो सके। परन्तु इस प्रकार की व्यवस्था भारतीय परिवेश के लिए अनजानी नहीं है। पंच परमेश्वर की परम्परा प्राचीन है। आधुनिक भारत में 1957 तक अधिकांश गांवों में पंचायतों का गठन पंचायती राज अधिनियम (एक्ट) के अन्तर्गत किया गया। आरंभिक वर्षों में पंचायतों को सफाई, सड़क तथा जलापूर्ति जैसे विषयों में कानूनों को लागू करने का दायित्व सौंपा गया था। इसका उद्देश्य राष्ट्र निर्माण हेतु सहयोग और सहभागिता को बढ़ाना था, जिससे आर्थिक विकास तीव्र गति से हो सके। इसके संचालन में यह ध्यान रखा गया कि ये राज्य

शासन के अंग मात्र न रहें, खंड (ब्लॉक) और जिला स्तर की त्रिस्तरीय व्यवस्था के अन्तर्गत पंचायती राज का कार्यक्रम संचालित किया गया। तीसरी पंचवर्षीय योजना में पंचायती राज के स्वीकृत लक्ष्यों में मुख्य थे: कृषि उत्पादन को बढ़ाना, ग्रामोद्योग का विकास, सहकारी संस्थाओं को प्रोत्साहन, स्थानीय जनशक्ति का उपयोग, कमजोर वर्ग की सहायता, स्वैच्छिक संगठनों पर बल और जनता में अपना कार्य स्वयं करने की भावना का विकास।

पंचायती राज के परिणाम देश के विभिन्न राज्यों में एक से नहीं थे। साथ ही ग्राम्य जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इसकी उपलब्धि सदैव सकारात्मक भी नहीं रही। जाति और गुटबाजी के कारण द्वेष बढ़े, एक नए ढंग की नौकरशाही पनपी, प्रशासन तथा जनता के बीच तनाव भी बढ़े और भोले-भाले गांव के लोग राजनीति के दाव-पेंच से परिचित हुए। इसके सकारात्मक परिणामों के रूप में सामाजिक-राजनैतिक चेतना का विकास, गांव के स्तर पर योजना के निर्माण में सहभागिता तथा गांव के लिए विकास कार्यक्रमों के संचालन की गणना की जा सकती है। परन्तु यह भी मानना पड़ेगा कि पंचायती राज की व्यवस्था में कमियां हैं। इससे कमजोर वर्ग के लोगों को पूरा लाभ नहीं पहुंच सका। आर्थिक विषमता को कम करने की दृष्टि से भी पर्याप्त उपलब्धि नहीं हो सकी। अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के लोगों की भूमिका गौण ही रही। पर्याप्त संसाधनों की कमी और लालफीताशाही के कारण कृषि उत्पादन और गांव के स्तर पर योजना का निर्माण और संचालन का लक्ष्य स्वप्न ही बना रहा। फिर भी पंचायत की संस्था ने एक महत्वपूर्ण हस्तक्षेप किया और इसकी सफलता और असफलता दोनों ने ही ग्राम्य जीवन में हलचल पैदा की। आज भारत के लगभग छह लाख गांवों में से लगभग 96 प्रतिशत गांवों में पंचायतों की स्थापना हो चुकी है।

पंचायती राज की व्यवस्था को प्रभावी बनाने के उद्देश्य से भारतीय संविधान के (तिहत्तरवां संशोधन) अधिनियम 1992 द्वारा संविधान में नए प्रावधान करते हुए भाग 9 बढ़ाया गया है, जिसमें अनुच्छेद 243 में संशोधन कर संविधान में ग्यारहवीं अनुसूची सम्मिलित की गई है। इसके अनुसार अब गांव पंचायत ही ग्राम्य स्तर पर स्वायत्तशासी संस्था रहेगी। इसके सभी स्थान पंचायत क्षेत्र के प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने गए व्यक्तियों द्वारा भरे जाएंगे। इसमें प्रावधान हुआ कि पंचायत का स्वतंत्र अध्यक्ष होगा, न कि गांव सभा का प्रधान। पंचायतों के अध्यक्षों के कुछ पद अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित रहेंगे। स्त्रियों के लिए अध्यक्षों के पदों की कुल संख्या का कम से कम एक-तिहाई आरक्षित होगा। इन आरक्षित पदों को भिन्न-भिन्न पंचायतों में चक्रानुक्रम में आबंटित किया जाएगा। पिछड़े वर्ग के नागरिकों के लिए भी राज्य का विधान मंडल आरक्षण की व्यवस्था करा सकता है। अधिनियम 1992 के प्रारंभ से एक वर्ष के भीतर और उसके पश्चात् प्रत्येक पांचवें वर्ष के समाप्त होने पर पंचायतों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा हेतु राज्यपाल एक वित्त आयोग गठित करेगा। यह आयोग राज्य द्वारा लिए जाने वाले करों, शुल्कों, फीसों आदि के शुद्ध आगमों का राज्य और पंचायतों के बीच वितरण तथा राज्य की संचित निधि से सहायता अनुदान आदि

के विषय में अनुशंसा करेगा। ग्राम पंचायत का बजट गाँव पंचायत तैयार करेगी और पास करेगी।

संविधान की नई व्यवस्था गाँव पंचायत के कार्यों, दायित्वों तथा प्रशासन का एक व्यापक ढाँचा प्रस्तावित करती है। यह एक समग्र व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत कृषि, भूमि विकास, लघु सिंचाई, पशुपालन, सामाजिक तथा कृषि वानिकी, लघु वनरोपण, लघु उद्योग, कुटीर उद्योग, आवास, पेयजल, ईंधन तथा चारा, भूमि, सड़कें, पुल तथा अन्य संचार साधन, विद्युतीकरण, गैर-पारंपरिक ऊर्जा, गरीबी निवारण, शिक्षा, तकनीकी प्रशिक्षण, प्रौढ़ और अनौपचारिक शिक्षा, पुस्तकालय, खेलकूद तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम, बाजार-मेला, चिकित्सा तथा स्वच्छता, परिवार कल्याण, आर्थिक विकास की योजना, प्रसूति तथा बाल विकास, समाज कल्याण, कमजोर वर्गों का कल्याण, सार्वजनिक वितरण प्रणाली तथा सामुदायिक सम्पत्तियों की रक्षा का समावेश किया गया है। पंचायत प्रतिवर्ष अपने क्षेत्र हेतु एक विकास योजना तैयार करेगी और क्षेत्र पंचायत को यथासमय भेजेगी।

पंचायती राज और साक्षरता के पारस्परिक सम्बन्ध

पंचायती राज की नवीन व्यवस्था अपने विस्तृत क्षेत्र, दायित्व और स्वायत्तता की दृष्टि से निश्चित रूप से एक युगान्तरकारी लोकतांत्रिक प्रयोग है, परन्तु इसकी संभावनाओं को यथार्थ में रूपांतरित करना एक कठिन चुनौती है। यदि पंचायती राज के वर्तमान स्वरूप का विश्लेषण करें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि इस संस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए ग्रामीण जनों की सक्षम सहभागिता अपरिहार्य है। अधिकारों के उपयोग के लिए अतिरिक्त अपेक्षित कौशलों का होना भी अनिवार्य है। फलतः पंचायती राज की व्यवस्था के सफल होने के लिए ग्रामीण जनसमुदाय का शिक्षित होना भी अपरिहार्य है। ग्रामीण जनता का एक बड़ा हिस्सा अभी भी निरक्षर है। फलतः पंचायती राज की सफलता के लिए एक सहयोगी और समर्थन प्रदान करने वाली व्यवस्था अपेक्षित होगी जो व्यापक पैमाने पर ग्रामीणों को अपेक्षित ज्ञान और कौशल से समृद्ध कर सके। इस दृष्टि से साक्षरता के आन्दोलन का सार्थक उपयोग प्रासंगिक है। पंचायती राज का संचालन साक्षरता के लक्ष्यों और पद्धतियों की कसौटी कही जा सकती है। ये दोनों कार्यक्रम एक-दूसरे से लाभ उठा सकते हैं। पंचायती राज के सफल संचालन के लिए साक्षरता का परम्परागत स्वरूप अपर्याप्त है। लिखना, पढ़ना और सरल गणित का परिचय करा देने भर से यह परिवर्तन लाना संभव नहीं होगा, जो पंचायती राज के सफल संचालन के लिए अपेक्षित है। इसके लिए जीवन और कार्य क्षेत्र के लिए उपयुक्त प्रौढ़ साक्षरता के प्रभावी तथा गत्यात्मक कार्यक्रम की आवश्यकता है।

परिवार के भरण पोषण में लगे प्रौढ़ ग्रामीणों के लिए साक्षरता उनके समग्र जीवन से जुड़कर ही सार्थक होती है। साक्षरता प्रौढ़ के कार्य क्षेत्र और जीवनानुभव के केन्द्र में अवस्थित होकर ही सफल हो सकती है, न कि सामान्य शिक्षा की तरह कक्षा-केन्द्रित होकर। तमाम योजनाओं और कार्यक्रमों का लाभ आम जनता तक पहुंचे, इसके लिए जरूरी है कि साक्षरता के साथ उन योजनाओं और कार्यक्रमों का अंतरसंबंध पहचाना जा सके।

प्रौढ़ साक्षरता का यह अपेक्षाकृत परिष्कृत या समृद्ध रूप राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के मूल उद्देश्यों के निकट होगा, जो कौशलों के विकास तथा शोषण के विरूद्ध युद्ध का आह्वान करता है। इसकी सफलता के लिए यह जरूरी है कि इस कार्यक्रम का उद्भव ग्रामीण क्षेत्रों और पंचायतों के सन्दर्भ में हो और ये इकाइयाँ इनके संचालन में सक्रिय भाग लें। इस क्रम में ब्लाक और जिला स्तरों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए। राज्य तथा केन्द्रीय शासन इस कार्य हेतु आवश्यक वित्तीय तथा अन्य संसाधन उपलब्ध कराए। यह सब प्रभावी हो और ढंग से चले, इसके लिए इस कार्यक्रम को राजनैतिक संगठन से न जोड़ा जाए और किसी स्वायत्तशासी व्यवस्था के अधीन संचालित किया जाए जिससे राजनैतिक परिवर्तन से स्वतंत्र यह कार्य नियमित रूप से निरंतर चलता रहे।

जब तक कोई कार्यक्रम ग्रामीणों की आवश्यकता को ध्यान में नहीं रखेगा, गरीबों के लिए व्यर्थ ही रहेगा। साक्षरता को ऊपर से लाद देना उचित नहीं है। साक्षरता उस बड़ी चुनौती का एक हिस्सा है, जो व्यापक गरीबी के फलस्वरूप देश के सम्मुख उपस्थित है। साक्षरता के बारे में उत्साहित होकर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि निरक्षरता रोग नहीं है, बल्कि रोग का लक्षण है। विषमता, शोषण, अस्वस्थता और गरीबी के खिलाफ लड़ाई में साक्षरता एक हथियार है। तटस्थ रहकर कुछ सूचनाओं के संप्रेषण की भूमिका से आगे बढ़कर साक्षरता का आयोजन लोगों की मनोवृत्ति, मूल्य और दृष्टिकोण में बदलाव के लिए भी होना चाहिए। जब निरक्षर ग्रामीण जन भयमुक्त होकर बेझिझक सीखने के लिए तत्पर हो सकेंगे, तभी उनकी सक्षम भागीदारी हो सकेगी। सामाजिक, नागरिक और अंकों की जानकारी तक ही सीमित न होकर उन्हें ऐसा ज्ञान भी मिलना चाहिए जो जीवनोपयोगी हो। यह तभी संभव होगा जब हम प्रौढ़ों के जीवन, उनकी मानसिकता को समझ कर कार्यक्रम बनाएं।

समाज में व्याप्त विविधता को ध्यान में रखकर यह आवश्यक है कि प्रौढ़ों की आवश्यकताओं का सही मूल्यांकन हो और साक्षरता का ऐसा कार्यक्रम चलाया जाए जो अनुभव, जीवन और कर्मक्षेत्र की चुनौतियों के लिए उपयोगी हो। लोकतंत्र की दृढ़ता के लिए समाज के हर वर्ग और विशेषत: वंचित वर्ग और महिलाओं को समर्थ बनाना अपरिहार्य है। इस बिन्दु पर पंचायती राज व्यवस्था और साक्षरता दोनों कार्यक्रम मिलते हैं। समता, समानता और सामर्थ्य के लक्ष्य को पाने के लिए सामाजिक-आर्थिक विषमता दूर करने में संलग्न पंचायती राज को सशक्त बनाने के लिए साक्षरता का समर्थन आवश्यक है और साक्षरता का औचित्य पंचायती राज द्वारा लाये जा रहे सामाजिक परिवर्तन में निहित है।

* * *

स्त्रियों और बच्चों के मानवाधिकार – संस्थागत दृष्टिकोण

• डॉ. बिन्देश्वर पाठक

मानवाधिकार 'वे अधिकार और स्वतंत्रता हैं, जिन पर सभी मनुष्यों का हक है।' इस विचारधारा के समर्थक इस तथ्य पर बल देते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति मनुष्यमात्र होने से ही कुछ अधिकारों का हकदार हो जाता है। इस प्रकार मानवाधिकारों की परिकल्पना सार्वभौमिक एवं उदारवादी दृष्टि से की जाती है। ऐसे अधिकारों का अस्तित्व वास्तविक मानवीय नैतिकता के रूप में अन्य मूल्यों के साथ बना रह सकता है, जो तर्कसंगत और वैधानिक अधिकारों की दृष्टि से राष्ट्रीय या अंतरराष्ट्रीय कानून के स्तर पर मान्य हों। फिर भी इस बात पर सहमति नहीं बन सकी है कि इन उल्लिखित अर्थों में से कौन-सा अर्थ विशेष रूप से स्वीकार्य हो। मानवाधिकारों की अमूर्त अवधारणा विचारोत्तेजक दार्शनिक विचार-विमर्श एवं आलोचना का विषय बन गई है।

मानवाधिकारों की आधुनिक अवधारणा दूसरे विश्व युद्ध के विनाशकारी परिणाम-स्वरूप जन्म ले सकी। संयुक्त-राष्ट्र-महासभा ने सन् 1948 में मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की। यद्यपि 'मानवाधिकार' अपेक्षाकृत नई शब्दावली है, किंतु इस आधुनिक अवधारणा के मूल में ग्रीस के नगर-राज्य और रोम के कानून हैं। मानवाधिकारों की चर्चा के अग्रदूत रहे हैं जान लॉक और इमैन्युअल कान्ट के प्राकृतिक अधिकारों के प्रबुद्ध विचार और संयुक्त राज्य के मानवाधिकार विधेयक तथा फ्रांस में मनुष्य और नागरिकों के अधिकारों की घोषणा। मानवाधिकार बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक मनुष्य के जन्मजात अधिकार हैं–वह चाहे जिस देश, निवास-स्थान का हो और चाहे स्त्री हो या पुरुष। ये सभी अधिकार एक-दूसरे से संबद्ध हैं, एक-दूसरे पर निर्भर और अविभाज्य हैं।

मानवाधिकारों की सार्वभौमिकता का सिद्धांत अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार कानूनों की आधारशिला है। इस सिद्धांत को अनेक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों, घोषणाओं और प्रस्तावों में दोहराया गया है। उदाहरणार्थ, सन् 1993 में आयोजित मानवाधिकारों से संबद्ध वियना के

• संस्थापकअध्यक्ष, सुलभ-ग्राम, दिल्ली

विश्व-सम्मेलन में इस बात पर बल दिया गया कि सभी मानवाधिकारों और आधारभूत स्वतंत्रता को प्रोत्साहित और सुरक्षा प्रदान करने का दायित्व राज्यों का है, चाहे वे किसी भी राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रणाली से संबद्ध हों।

महिलाओं ने सन् 1973 में मैक्सिको शहर में अपने ब्रा जला दिए और अपने राजनीतिक अधिकारों के लिए कोपेनहेगेन में उत्कट संघर्ष किया। नैरोबी में सन् 1985 में महिलाओं ने अंततः यह निर्णय किया कि पुरुषों द्वारा शासित समाज से वे अपनी मांगों का विस्तार करेंगी। तीसरी दुनिया के अधिकतर देशों में सामाजिक भेदभाव और लिंग-भेद को लेकर उनके साथ जो पक्षपात होता रहा है, उसके कारण वे दूसरी श्रेणी की नागरिक बन गई हैं। जैविक दृष्टि से पुरुषों से अधिक शक्तिशाली होने के बावजूद लड़कों की तुलना में 3 लाख अधिक लड़कियाँ हर वर्ष भारत में मर जाती हैं। प्रत्येक 6 महिलाओं में एक की मृत्यु लिंग-भेद पर आधारित भेदभाव के कारण होती है। एन्.सी.ई.आर.टी. के एक अध्ययन के अनुसार, भारत में जन्मी 12 मीलियन लड़कियों में से प्रतिवर्ष 25 प्रतिशत अपना 15वाँ जन्मदिन नहीं मना पाती हैं।

ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के अनुसंधानकर्ताओं ने दावा किया है कि भारत के आठ राज्यों में 26 सर्वाधिक निर्धन अफ्रीकी देशों से अधिक गरीब लोग रहते हैं। भारत में प्रत्येक चौथा व्यक्ति भूखा है और वह स्त्री होती है। हरियाणा, बिहार, गुजरात, जम्मू और कश्मीर, राजस्थान, पंजाब और उत्तर-प्रदेश में लड़कों की तुलना में लड़कियों की मृत्यु अधिक होती है। महिलाओं की मृत्यु-दर अधिक होने के मूल में शिशु, बच्चे और किशोर और माँ के रूप में उनकी उपेक्षा है। प्रत्येक घर में भोजन, स्वास्थ्य-देखरेख, शिक्षा और आराम के समय का वितरण भी पुरुषों के पक्ष में अधिक है। कन्या-भ्रूण-हत्या से जनसंख्या में असंतुलन उत्पन्न हो सकता है, यह चेतावनी इस अध्ययन में दी गई है और बताया गया है कि 1994 में 40,000 कन्या-भ्रूण-हत्या मुंबई में की गई थी। इनमें से 16,000 गर्भ एक ही अस्पताल में गिराए गए थे। एक अस्पताल विशेष में 8,000 गर्भ गिराने वाले मामलों में केवल एक पुरुष शिशु-गर्भ था।

स्त्री-पुरुष का अनुपात स्त्रियों की वास्तविकता का एक शक्तिशाली सूचक है। भारत उन कुछ देशों में से है, जहाँ स्त्री-पुरुष का अनुपात महिलाओं के विरुद्ध है। महिलाएँ पुरुषों की अपेक्षा अधिकतर देशों में अधिक संख्या में हैं। जैविक रूप से अधिक शक्तिशाली होने के कारण जैविक रूप से 100 लड़कियाँ जन्म लेती हैं तो लड़के 102 से 107 तक। पुरुषों की मृत्यु-दर अधिक होने के कारण यह संख्या बाद में कुछ कम हो जाती है। अध्ययन में बताया गया है कि भारत में वर्तमान शताब्दी के आरंभ से ही स्त्री-पुरुष का अनुपात केवल कम ही नहीं हुआ है, बल्कि काफी गिर गया है। सन् 1991 की जनगणना में 929:1000 लिंग-अनुपात दर्ज हुआ, जो सन् 1901 के बाद न्यूनतम अनुपात है।

विश्व में 960 मिलियन से अधिक निरक्षर वयस्क हैं। इनमें से लगभग 640 मिलियन स्त्रियाँ हैं। भारत में सन् 1901 में शिक्षित स्त्रियों की संख्या केवल 0.7 प्रतिशत थी, जबकि

पुरुषों की 9.8 प्रतिशत। सन् 1991 में भी स्त्रियाँ पुरुषों से कहीं पीछे थीं। आज केवल 39.42 प्रतिशत स्त्रियाँ साक्षर हैं। ग्रामीण क्षेत्रों और अनौपचारिक क्षेत्र में अधिकतर महिलाएँ दयनीय स्थितियों में कार्य कर रही हैं। इससे उनकी निर्धनता और अधिक बढ़ जाती है। यू.एन्.डी.पी. के अनुसार, विश्व की जनसंख्या का लगभग 1/5 भाग, जिसमें महिलाओं की संख्या अधिक है, निर्धन है और कुपोषण से पीड़ित है। 1980 के दशक के अंत तक अमेरिका की कुल निर्धनता का लगभग 75 प्रतिशत भाग महिलाओं का था, विशेष रूप से अकेली माँ और अपेक्षाकृत वृद्ध । अफ्रीकी अमेरिकी महिलाओं का।

विश्व के बहुत-से भागों में महिला-अधिकारों का उल्लंघन होता है, लेकिन कुछ भागों में यह बहुत अधिक है। जन्म के पहले से ही उनके अधिकारों का हनन होने लगता है। तथाकथित गर्भावस्था-परीक्षण (जिसमें यह पता लगाया जाता है कि लड़का होगा या लड़की) के कारण भी कन्या-भ्रूणों को नष्ट कर दिया जाता है। दक्षिण एशियायी क्षेत्र में अभी भी लड़के को लड़की की अपेक्षा अधिक पसंद दिया जाता है। इस प्रकार जन्म लेने से पहले ही बहुत-सी लड़कियों का जीवन समाप्त कर दिया जता है।

दक्षिण एशिया की 74 मिलियन स्त्रियाँ खो गई हैं

विश्व में दक्षिण एशिया एकमात्र ऐसा क्षेत्र है, जहाँ की कुल जनसंख्या में पुरुष महिलाओं की अपेक्षा अधिक हैं। वैश्विक जनसंख्या में स्त्रियाँ 106 हैं तो पुरुष 100। दक्षिण एशिया में यह केवल 94 और 100 है, पूरे विश्व की जैविक प्रवृत्तियों के बिलकुल विपरीत, क्योंकि स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक दिनों तक जीवित रहती हैं, यदि दोनों को एक समान पौष्टिक आहार एवं स्वास्थ्य की देखभाल उपलब्ध हो।

दक्षिण एशिया वैश्विक तुलना में ही नहीं, बल्कि सभी, विकासशील क्षेत्रों की तुलना में भी, जिनमें मध्यपूर्व भी शामिल है, पीछे है, जहाँ लिंगभेद सर्वाधिक बताया जाता है। वैश्विक मानदंड की तुलना में दक्षिण एशिया में लगभग 74 मीलियन महिलाएँ खो गई हैं, जो दुर्भाग्यवश सामाजिक एवं आर्थिक उपेक्षा की शिकार हुई हैं। दक्षिण एशिया में महिलाओं के साथ भेदभाव के विविध रूप हैं। जन्म से मृत्यु तक भोजन, पौष्टिकता, स्वास्थ्य की देखरेख, शिक्षा एवं अन्य सुविधाओं की दृष्टि से उनके साथ भेदभाव किया जाता है—वे शिशु-हत्या से लेकर बाल-दुर्व्यवहार तक की शिकार होती हैं।

महिलाओं के विरुद्ध अपराध

महिलाओं के विरुद्ध अपराध उनकी समस्याओं को और बढ़ाते हैं। देश-भर में 11,000 से अधिक बलात्कार के मामले 1994 में दर्ज किए गए। लेकिन यह अर्ध सत्य है, क्योंकि सामाजिक बदनामी के भय से ऐसे अधिकतर मामलों की रिपोर्ट दर्ज नहीं कराई जाती है। लगभग आधे मामलों की रिपोर्ट (लगभग 5,000) दो बड़े हिंदी भाषी राज्यों उत्तर-प्रदेश और मध्य-प्रदेश

में दर्ज की गई है, जबकि राजस्थान, महाराष्ट्र, बिहार और आंध्र-प्रदेश में इस वर्ष के दौरान कुल 4,000 मामले दर्ज किए गए। देश की राजधानी में जो तंदूर-हत्या-कांड से कुख्यात हो चुकी है, बलात्कार के कुल 261 मामले दर्ज किए गए, जबकि सभी संघशासित प्रदेशों में कुल 281 बलात्कार की घटनाओं की रिपोर्ट हुई। दिल्ली में महिलाओं से छेड़छाड़ के 22,000 मामले 1994 के दौरान दर्ज करवाए गए। लेकिन यहाँ भी ये आँकड़े सही तस्वीर नहीं प्रस्तुत करते, क्योंकि ऐसे अधिकतर मामलों की रिपोर्ट या तो नहीं लिखवाई जाती है या लिखी नहीं जाती है। देश-भर में दहेज-हत्या के 4,850 मामले 1994 में दर्ज किए गए, जिनमें से उत्तर-प्रदेश में ही 2,000 ऐसे मामले दर्ज किए गए। 1994 से ऐसे मामलों में वृद्धि हुई है, जिससे संबद्ध आँकड़े उपलब्ध हैं।

महिलाओं के सभी अधिकार मानवाधिकार हैं। इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उन्हें स्वामित्व का अधिकार देना है। महिलाओं का संपत्ति पर अधिकार अत्यंत आवश्यक है, वस्तुत: महिलाएँ श्रम-शक्ति की जन्मदात्री हैं। वे घर बनाने में बहुत परिश्रम करती हैं। परिवार और समाज के निर्माण में उनका जो योगदान है, उसके अनुरूप ही संपत्ति में उनका हिस्सा भी होना चाहिए। उन्हें संपत्ति पर स्वामित्व का अधिकार मिलने के साथ ही मानवोचित सम्मान मिल सकेगा। इसे कानूनी और सामाजिक मान्यता मिलनी चाहिए।

असहाय बच्चे

छह वर्ष तक के बच्चे भारत की कुल जनसंख्या के लगभग 20 प्रतिशत हैं, जो आर्थिक प्रगति के इस युग में भी कुपोषित, उपेक्षित और दयनीय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। 2005-06 में किए गए तीसरे राष्ट्रीय परिवार-स्वास्थ्य-सर्वेक्षण से उपलब्ध आँकड़े बताते हैं कि छह वर्ष तक के सभी बच्चों में 42.4 प्रतिशत कुपोषण से ग्रस्त हैं, अपनी आयु के अनुसार उनका वजन कम पाया गया—जो 1998-99 के आँकड़े से मात्र 2.1 प्रतिशत कम है। अविकसित बच्चों का प्रतिशत 44 प्रतिशत से गिरकर 37 प्रतिशत हुआ है, लेकिन वर्तमान दर पर भारतीय बच्चों को अपनी आयु के अनुसार स्वाभाविक कद प्राप्त करने में दो दशक से अधिक लगेंगे। छह वर्ष से कम आयु के आधे बच्चों को टीके नहीं लगाए गए हैं और 77 प्रतिशत बच्चों को एनीमिया (रक्त-अल्पता) है। तीन दशक पहले शुरू किया गया समेकित बाल-विकास-सेवा-कार्यक्रम (आई.सी.डी.एस्.) महत्त्वपूर्ण सरकारी कार्यक्रम है। लेकिन छह वर्ष से कम आयु के बच्चों पर हाल ही में जारी 'फोकस' सर्वेक्षण से और 'आँगनवाड़ी' केंद्रों के कार्य-कलाप से पता चलता है कि इन कार्यक्रमों से बच्चों को अपेक्षित प्रकार का लाभ नहीं मिल रहा है। सरकारी प्रयासों के बावजूद भारतीय बच्चे उपेक्षित और दयनीय स्थिति में फँसे हुए हैं।

मानवाधिकार निगरानी रिपोर्ट के अनुसार, सड़क पर जीवन बिताने वाले बच्चों की संख्या 115 मीलियन है। यदि यह लगभग सच है तो यह संख्या कई यूरोपीय देशों की आबादी के बराबर है। मानवीय विकास रिपोर्ट 2006 के अनुसार, 10 में से चार स्कूली बच्चे ही दसवीं

कक्षा तक की पढ़ाई पूरी कर पाते हैं तथा 100 में से लगभग 6 बच्चे एक वर्ष से अधिक जीवित नहीं रह पाते हैं। यदि इन्हें यूरोप में बसा दिया जाता तो उन्हें आपातस्थिति घोषित करनी पड़ती। एक ओर हम 9 प्रतिशत विकास-दर के आधार पर सुपरपॉवर बनने की बात सोच रहे हैं तो दूसरी ओर यह हास्यास्पद स्थिति है। वे कल्याणकारी कार्य कहाँ हैं जिनके अभाव में कोई नागरिक समाज अपने को सभ्य नहीं कह सकता। महाराष्ट्र-सरकार को अपनी बाल-विकास-नीति की मुख्य सिफारिशों को अभी क्रियान्वित करना है। राज्य महिला एवं बाल-विकास-विभाग नियोजित एवं संरचनायुक्त नीति पर बल देता है। अधिकारी यह स्वीकार करते हैं कि धनराशि की उपलब्धता कोई समस्या नहीं है, वास्तव में बहुत-सी निधि-राशि व्यर्थ जाती है।

अकेले महाराष्ट्र में 40,000 से अधिक बच्चे बालगृहों में उपेक्षा के शिकार हैं। पिछले वर्ष राज्य-सरकार ने इन बालगृहों में चल रहे सामाजिक क्षेत्र के कुसमंजन कार्यक्रम के लिए प्राप्त राष्ट्रीय अनुदान के 16 करोड़ रुपए में से 40 प्रतिशत अन्यत्र खर्च कर दिए। राज्य सरकार ने स्वयं इतनी ही धनराशि ऐसे प्रयासों पर व्यय की है। महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या यह धनराशि बच्चों पर खर्च के लिए प्रयुक्त होती है या नहीं। केंद्र-सरकार ने 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के घरों, अस्पतालों, कल-कारखानों और असुरक्षित स्थानों पर कार्य करने पर प्रतिबंध लगा दिया है। उनका ऐसे कार्य करना स्पष्टत: मानवाधिकारों का उल्लंघन है।

मानवाधिकारों के प्रति सुलभ का दृष्टिकोण

महिला-सशक्तीकरण की समस्या के प्रति सुलभ का दृष्टिकोण इस विश्वास पर आधारित है कि सामाजिक परिवर्तन शिक्षा, सामाजिक उत्थान के लिए अभियान चलाने और लोगों को परिवर्तन के लिए प्रोत्साहित करने से आता है। महिला-सशक्तीकरण, छूआछूत मिटाने एवं बच्चों को शिक्षित करने से संबद्ध अनेक कानून हैं, लेकिन वे केवल अधिकतर कागज पर ही हैं। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि सबसे बड़ी संख्या में पूर्णत: निर्धन लोग (संयुक्त-राष्ट्र की स्थापना के अनुसार, प्रतिदिन एक डॉलर पर जीवन निर्वाह करनेवाले लोग), सर्वाधिक निरक्षर (भारत की लगभग 90 प्रतिशत महिलाएँ पढ़ और लिख नहीं सकतीं) और सर्वाधिक कुपोषित बच्चे (सहारा क्षेत्र से भी अधिक दयनीय स्थिति में) हमारे यहाँ ही हैं। इसे समझने के लिए आँकड़ों की आवश्यकता नहीं है। यू.एन्.डी.पी. की सामाजिक स्थिति पर जो रिपोर्ट है, उसके अकाट्य आँकड़ों से ये तथ्य स्पष्ट हैं। मैंने सरकारी और गैर-सरकारी अभिकरणों के साथ कार्य करते हुए सामाजिक परियोजनाओं को हाथ में लिया है, ताकि महिलाओं, विशेष रूप से सर्वाधिक निर्धन, अपमानित एवं भेदभाव से ग्रस्त हाथ से मैला ढोनेवाली महिलाओं की सहायता की जा सके। अखिल भारतीय स्तर पर उनकी शिक्षा, प्रशिक्षण और सामाजिक स्थिति बेहतर करने के लिए योजनाएँ बनाई गई हैं, जिनकी यहाँ चर्चा करना समीचीन नहीं है (कृपया 'सुलभ इंटरनेशनल सोशल सर्विस ऑर्गनाइजेशन'/'सुलभ इंटरनेशनल म्यूजियम ऑफ ट्वॉलेट्स' नामक हमारे वेबसाइड पर क्लिक करके देखें)। यद्यपि कुछ प्रयासों की चर्चा सुलभ-स्वच्छता और समाज-सुधार-आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में की गई है।

हाथ से मैला ढोने और साफ करने का प्रश्न मानव-मूल्यों और मानवाधिकारों से संबद्ध है, क्योंकि यह 10 दिसंबर, 1948 को संयुक्त-राष्ट्र-महासभा-द्वारा अपनाए गए मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के अनुच्छेद 1 का उल्लंघन है, जिसमें कहा गया है कि सभी मनुष्य जन्म से स्वतंत्र और समान होते हैं। यह घोषणा राष्ट्रों के नैतिक आचरण के मूल्यांकन की कसौटी है और राजनीतिक-सामाजिक अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने का आहवान करती है।

मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के प्रथम दो अनुच्छेद यह स्पष्ट करते हैं कि स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व मानवाधिकार के आधार हैं। 'सभी मनुष्य जन्म से स्वतंत्र और समान होते हैं' (अनुच्छेद 1) और 'प्रत्येक व्यक्ति वर्ग, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीतिक या अन्य विचार, राष्ट्रीय या सामाजिक मूल या जन्म के आधार पर बगैर भेदभाव के सभी अधिकारों और स्वतंत्रता का अधिकारी है' (अनुच्छेद 2)। यह स्पष्ट है कि जाति-व्यवस्था इस घोषणा के आधार पर विसंगतिपूर्ण है, क्योंकि यह जन्म के आधार पर विभिन्न व्यक्तियों को विभिन्न सामाजिक स्तर प्रदान करती है। यह प्रणाली लोगों के कुछ वर्गों को मंदिर में प्रवेश करने, संस्कृत पढ़ने, पुजारी बनने के लिए धार्मिक पुस्तकें पढ़ने से रोकती है। यह अनुच्छेद 18 के विरूद्ध है, 'प्रत्येक व्यक्ति को विचार की स्वतंत्रता का अधिकार है' आदि। दलित गाँवों की बाहरी सीमा पर रहने के लिए विवश किए जाते हैं, जो अनुच्छेद 13 (1) का उल्लंघन है। मैला ढोनेवाले मीडिया का ध्यान नहीं आकर्षित कर पाते हैं, क्योंकि वे हाथ से मैला साफ करने और ढोने का कार्य जाति-व्यवस्था के अधीन सदियों से करते आए हैं और इसपर समाज की स्वीकृति है। सामाजिक श्रेणियाँ अन्य समाजों में भी प्रचलित हैं, किंतु धार्मिक-सामाजिक धर्मशास्त्रों-द्वारा विहित श्रेणियाँ हिंदू-समाज की अनोखी प्रथा हैं। अनेक सुविदित उदारवादी हमारे समाज में हुए हैं-गाँधीवादी, अतिवादी मानववादी एवं मानवाधिकार कार्यकर्ता, जिन्होंने सामाजिक भेदभाव के विरूद्ध आवाज उठाई है।

समाज के विकास में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका पर बल तो दिया गया है, लेकिन उनका सशक्तीकरण मात्र राजनीतिक मुद्दा बनकर रह गया है। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि उनकी स्थिति में बहुत अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है, विशेषकर विकासशील देशों में, जहाँ वे सेक्स, व्यापार और सजावट की वस्तु समझी जाती हैं, जिसे ड्राईंग-रूम में रखा जा सकता है या दहेज के लिए जला दिया जाता है। पश्चिमी देशों में यह सच नहीं हो सकता है, क्योंकि वहाँ उन्हें सभी क्षेत्रों में लगभग पूरे अधिकार प्राप्त हैं। किंतु रूढ़िग्रस्त और अशिक्षित गरीब देशों में ऐसा नहीं है।

विकासशील देशों में भी सशक्तीकरण के कुछ अपवाद उदाहरण हैं। इंदिरा गाँधी भारत और बेनजीर भुट्टो पाकिस्तान की प्रधानमंत्री थीं। लेकिन स्त्रियों की स्थिति में कोई अंतर नहीं आया। कुछेक वर्गों को, विशेष रूप से समाज के उच्च वर्ग की महिलाओं को छोड़कर, अधिकतर महिलाएँ बिना किसी अधिकार के अपना जीवन व्यतीत कर रही हैं। पाकिस्तान में विशेषरूप से उनकी स्थिति और भी खराब है।

एक पीढ़ी पहले तक अधिकतर महिलाएँ नौकर आदि के छोटे-मोटे कार्य ही करती थीं। उनके जीवन का उद्देश्य विवाह और बच्चों तक ही सीमित था। विवाह के बाद उन्हें नौकरी छोड़नी पड़ती थी। आज वे उन संगठनों में कार्य कर रही हैं, जो उन्हें दूसरी श्रेणी का नागरिक समझते थे। लाखों महिलाओं को अपने जीवन का निर्णय स्वयं करने का अवसर दिया गया है और लाखों लोगों की प्रतिभा को और अधिक उत्पादक कार्यों में लगाने का अवसर मिला है। अरब देशों, जापान तथा कुछ दक्षिणी यूरोप के देश इसका विरोध कर रहे हैं, वे अपनी व्यर्थ गई प्रतिभाओं और कुंठाग्रस्त नागरिकों के रूप में बहुत बड़ी कीमत चुकाएँगे।

* * *

भारत में महिला सशक्तीकरण : दशा एवं दिशा

• *डॉ. सुभाष शर्मा*

भारत की आधी आबादी स्त्रियों की है मगर सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में उनकी भागीदारी आधी क्या, तिहाई भी नहीं है। यह सच है कि भारतीय संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में (उद्देशिका, मूलाधिकार, मौलिक कर्तव्य, राज्य के नीति निदेशक सिद्धांत आदि) स्त्री की समता, स्वतंत्रता, उसके विकास और सशक्तीकरण से संबंधित प्रावधान वर्णित हैं। मसलन, अनुच्छेद 14 के अनुसार सभी स्त्रियों को पुरुषों की तरह विधि के समक्ष समानता का अधिकार प्राप्त है यानी उन नकारात्मक परंपराओं, कुप्रथाओं और कुरीतियों को खारिज कर दिया गया है जिनमें स्त्रियों के साथ भेदभाव तथा उनका शोषण एवं उत्पीड़न किया जाता रहा है तथा समान अपराध के लिए भी उन्हें पुरुषों की अपेक्षा अधिक सख्त दंड दिया जाता रहा है। यह 'वैधिक समानता' भारत में दो तरह से अपनाई गई है। पहला, सभी व्यक्तियों के लिए एक ही कानून काम करता है। दूसरा, सभी को कानून की उचित प्रक्रिया (ड्यू प्रोसेस ऑफ लॉ) अपनाने का अधिकार है अर्थात कानून में वर्णित संरक्षण का लाभ सभी स्त्रियों और पुरुषों को मिलता है। 'वैधिक समानता' (फॉर्मल इक्वॉलिटि) का सिद्धांत समान लोगों को समान रूप से देखता है – उसे अंग्रेजी में कहते हैं 'ट्रीटिंग इक्वल्स एलाइक'। जाहिर है यह सिद्धांत भिन्नता के लिए भिन्न कानूनों की वकालत करता है। मगर कानूनों के संरक्षण हेतु आवश्यक सुविधाएं जुटाने का दायित्व यह सिद्धांत अपने सिर पर नहीं लेता। सो 'वैधिक समानता' का सिद्धांत अपूर्ण है क्योंकि प्राय: किसी भी समाज में खासकर भारत जैसे विकासशील समाज में – सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक भिन्नताएं तथा विषमताएं व्याप्त होती हैं। इसलिए इससे आगे जाकर 'वास्तविक समानता' (सब्सटैंटिव इक्वॉलिटि) का सिद्धांत व्यापक एवं गहन रूप से समानता सुनिश्चित करने वाली दशाओं का भी खयाल रखता है। अर्थात् कानून विषमतामूलक परिस्थितियों को अपने दायरे में लेता है तथा उन्हें दूर करने की कोशिश करता है। भारतीय संविधान में वैधिक समानता और वास्तविक समानता, दोनों का प्रावधान है।

• *संयुक्त सचिव, रक्षा मंत्रालय, दिल्ली*

उदाहरण के तौर पर, संविधान की धारा 15 (1) के अनुसार राज्य किसी नागरिक के साथ लिंग, जन्मस्थान, जाति, प्रजाति, धर्म आदि के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा। यह वैधानिक समानता का सूचक है।

इसके साथ-साथ धारा 15 (3) में यह वर्णित है कि राज्य महिलाओं और बच्चों के लिए 'सकारात्मक भेदभाव' (अफर्मेटिव डिस्क्रिमिनेशन) की व्यवस्था कर सकता है - अर्थात् महिलाओं और बच्चों को पुरुषों की अपेक्षा विशिष्ट सुविधाएं और अधिकार दिए जा सकते हैं। यह वास्तविक समानता का सूचक है। यह भी उल्लेखनीय है कि संविधान की धारा 14 सामान्य प्रकृति की है जबकि समानता से ही संबंधित धारा 15 एवं 16 विशिष्ट प्रकृति की है। धारा 16 के तहत रोजगार के मामले में सभी स्त्रियों-पुरुषों को समान अवसर मिलते हैं। इसके अलावा धारा 21ए के तहत राज्य चौदह वर्ष के सभी बच्चों (लड़कों और लड़कियों दोनों) को मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करता है। चूंकि अधिकतर लड़कियाँ अशिक्षित रही हैं, अत: अब शिक्षा के कारण उनका सशक्तीकरण तेजी से होने लगा है। फिर धारा 23 में मानव-व्यापार, बेगार एवं बंधुआ मजदूरी का प्रतिबंध है तथा माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विभिन्न निर्णयों में स्पष्ट किया है कि मानव-व्यापार में महिलाओं का अनैतिक देह-व्यापार भी शामिल है। धारा 24 में चौदह वर्ष से कम उम्र के सभी बच्चों (बालक-बालिका दोनों) को किसी कारखाने, खान या खतरनाक नियोजक में लगाने पर प्रतिबंध है। ये सारे प्रावधान मूलाधिकार के रूप में हैं जिन्हें लागू करना राज्य के लिए बाध्यकारी है तथा यदि राज्य उन्हें कार्यान्वित नहीं करता, तो कोई भी पीड़ित व्यक्ति/समूह/संगठन उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय की शरण ले सकता है।

दूसरी ओर राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांतों को लागू करने के लिए राज्य बाध्य नहीं है, जैसे धारा 39 से 45 तक। धारा 39 ए में प्रावधान है कि राज्य ऐसी नीति बनाएगा जिससे सभी नागरिक-स्त्री एवं पुरुष-समान रूप से जीविका के साधन को सुनिश्चित कर सकें। इसी प्रकार धारा 39 डी में स्पष्ट उल्लेख है कि पुरुषों और महिलाओं को समान काम के लिए समान पारिश्रमिक मिलेगा। धारा 39 इ के अनुसार राज्य सुनिश्चित करेगा कि सभी कामगारों-स्त्रियों एवं पुरुषों दोनों के स्वास्थ्य एवं बच्चों की नाजुक उम्र का दुरुपयोग न हो तथा नागरिकों को अपनी उम्र या शक्ति के प्रतिकूल कोई काम अपनाने के लिए मजबूर नहीं होना पड़े। धारा 39 एफ में प्रावधान है कि राज्य सभी बच्चों (लड़कों एवं लड़कियों दोनों) को स्वस्थ रूप से तथा स्वतंत्रता एवं सम्मान की दशाओं में विकसित होने के लिए अवसर एवं सुविधाएं प्रदान करे। इसके साथ-साथ राज्य बचपन एवं युवावस्था को शोषण तथा नैतिक एवं भौतिक परित्याग के विरुद्ध सुरक्षा सुनिश्चित करे। इसके अलावा धारा 42 में प्रावधान किया गया है कि राज्य काम की न्यायप्रद एवं मानवीय दशाएं तथा मातृत्व सहायता देने का प्रावधान करेगा। इसी प्रकार धारा 45 में उल्लेख है कि राज्य छह वर्ष तक की उम्र के सभी बच्चों को बचपन-पूर्व की देखभाल तथा शिक्षा की व्यवस्था सुनिश्चित करेगा। इस प्रकार स्पष्ट है कि इन नीति-निर्देशक सिद्धांतों में महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए कई प्रकार के प्रावधान किए गए हैं जो राज्य के लिए बाध्यकारी भले न हों, मगर नागरिकों-विशेषकर

महिलाओं में बढ़ती चेतना तथा जनांदोलनों के कारण इन मामलों में राज्य की सक्रियता काफी बढ़ी है और न्यायालयों ने भी कई मामलों में नीति-निर्देशक सिद्धांतों को लागू करने के लिए राज्य को निर्देश दिया है। उदाहरण के तौर पर, के पी. उन्नीकृष्णन के मामले में 14 वर्ष तक के बच्चों को मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा को, जो नीति-निर्देशक सिद्धांत था, न्यायालय ने सम्मान सहित जीने के मूलाधिकार से जोड़ा और राज्य को इसे लागू करने का निर्देश दिया। इसके फलस्वरूप संविधान में 86वाँ संशोधन किया गया और मूलाधिकार में एक नई धारा 21 ए जोड़ी गई जिसे कानून बनाकर अप्रैल 2010 से पूरे भारतवर्ष में लागू कर दिया गया है। इसी तरह राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून बन रहा है जो नीति-निर्देशक सिद्धांत पर आधारित है। फिर समान पारिश्रमिक अधिनियम (1976), मनरेगा (महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण नियोजन गारंटी अधिनियम 2005) आदि कानून राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों पर आधारित हैं।

इसके अलावा नागरिकों के मौलिक कर्तव्यों [धारा 51 ए (b), में स्पष्ट प्रावधान है कि सभी नागरिक महिलाओं की प्रतिष्ठा को आँच पहुँचाने वाले व्यवहारों का त्याग करेंगे। इसी के आधार पर सती कार्य (प्रतिषेध) अधिनियम 1987 बनाया गया जिसके अनुसार सती होने का प्रयास करने वाली महिलाओं के साथ-साथ ऐसी प्रेरणा देने वाले तथा मदद करने वाले व्यक्तियों को भी दंडित किया जाता है। इसके अलावा संविधान में 73वें एवं 74वें संशोधन (1993) के द्वारा धारा 243 डी (3) एवं 243टी (3) के जरिए क्रमशः ग्राम पंचायतों और नगर निगमों में एक-तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित कर दी गईं। इसके परिणामस्वरूप लाखों ग्रामीण महिलाएं पंचायतों की मुखिया और सदस्य हैं। इससे ग्रामीण महिलाओं में नेतृत्व का तेजी से विकास हुआ है और वे अपने अधिकारों के प्रति सचेत हुई हैं। इसके अलावा धारा 243जी में प्रावधान किया गया है कि महिलाओं और बच्चों के विकास के कार्यक्रम पंचायती राज संस्थाओं को सौंप दिए जाएं - इसके साथ ही शिक्षा, परिवार कल्याण, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता आदि कार्य भी पंचायतों को सौंप दिए जाएं। तदनुसार पंचायतों को 29 कार्य पूरी तरह सौंप दिए गए हैं। यह अलग बात है कि महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए पंचायतों को ज्यादा धनराशि, कार्य और कर्मचारी देने की जरूरत है।

इसके अलावा बहुत-से कानून हैं जो महिलाओं के हितों की रक्षा करते हैं जिनमें प्रमुख हैं : समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976, कारखाना अधिनियम 1948, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 1948, मातृत्व लाभ अधिनियम 1961, दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961, अनैतिक व्यापार (प्रतिषेध) अधिनियम 1956, महिलाओं की अशिष्ट प्रस्तुति (प्रतिषेध) अधिनियम 1986, मुस्लिम महिला (तलाक होने पर अधिकारों का संरक्षण अधिनियम 1986, बाल-विवाह (अवरोध) अधिनियम 1929, सती कार्य (प्रतिषेध) अधिनियम 1987, गर्भ-पूर्व एवं जन्म-पूर्व परीक्षण तकनीक (विनियमन एवं प्रतिषेध) अधिनियम 1994, विशेष विवाह अधिनियम 1954, गर्भ की चिकित्सीय समाप्ति अधिनियम 1971, घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005 आदि। इन कानूनी प्रावधानों की वजह से महिलाओं में चेतना का विकास हुआ है और वे अपने अधिकारों की रक्षा हेतु न्यायालयों की शरण ले रही हैं। मगर यह भी सही है कि एक ओर विभिन्न कानूनों की खामियों का

अनुचित लाभ लेते हुए अभियुक्त सजा मुक्त हो जाते हैं तथा दूसरी ओर दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961 के तहत कई महिलाओं ने झूठे मामले भी दायर किए जिसके कारण विचारण में अपराध सिद्ध नहीं हो सके और अभियुक्त बरी हो गए। इस संदर्भ में उड़ीसा राज्य महिला आयोग की अध्यक्ष ने टिप्पणी की थी कि कई महिलाएं निहित स्वार्थ हेतु, प्रतिशोध हेतु अथवा किसी के बहकावे में आकर प्राय: झूठा मुकदमा दायर करती हैं। इसी प्रकार कुछ वर्ष पूर्व बिहार के वैशाली (हाजीपुर) जिले में एक महिला ने 27 मामले यौन उत्पीड़न के दायर किए थे जिन्हें महिला पुलिस अधीक्षक ने जाँच में झूठा पाया था। फिर भी यह सच है कि विभिन्न कानूनों के होते हुए भी महिलाओं का शारीरिक, मानसिक, आर्थिक एवं यौन शोषण कम नहीं हो रहा है।

महिलाओं के हितों के संरक्षण हेतु भारत की योजना-प्रक्रिया में परिवर्तन होता रहा है। शुरू-शुरू में महिलाओं के 'कल्याण' वाला दृष्टिकोण योजना में अपनाया गया था अर्थात छिटपुट तरीके से यहां-वहां उन्हें कुछ लाभ दिए गए जैसे मातृत्व लाभ। इसके बाद 'विकास' का दृष्टिकोण अपनाया गया अर्थात महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक विकास (जैसे रोजगार में हिस्सेदारी) को केंद्र में रखा गया। मगर इससे भी बात नहीं बनी। सो महिला 'सशक्तीकरण' का दृष्टिकोण अपनाया गया जिसमें लैंगिक विषमता को दूर करने हेतु महिलाओं को भौतिक संसाधन, आधारभूत संरचना उपलब्ध कराने के साथ-साथ उन्हें स्वास्थ्य एवं शिक्षा की सुविधाएं भी उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया तथा सभी क्षेत्रों में लैंगिक न्याय लाने एवं राजनैतिक भागीदारी की कोशिश की गई। इसी परिप्रेक्ष्य में लैंगिक बजट बनाने पर जोर दिया गया। इस प्रकार अब भारत में महिलाओं के बहुआयामी विकास एवं सशक्तीकरण पर जोर है। भारत के योजना आयोग ने ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-12) में लैंगिक न्याय के लिए पाँच तरह के सशक्तीकरण पर जोर दिया है :

(क) आर्थिक सशक्तीकरण सुनिश्चित करना।

(ख) सामाजिक सशक्तीकरण का प्रबंध करना।

(ग) राजनैतिक सशक्तीकरण को समर्थ बनाना।

(घ) महिलाओं से संबंधित कानूनों का प्रभावकारी कार्यान्वयन।

(ङ) मुख्य धारा में लैंगिक न्याय लाने एवं कार्यान्वयन तंत्र को सुदृढ़ करने हेतु संवैधानिक तंत्र सृजित करना।

अन्तरराष्ट्रीय संस्था 'इफाद' के अनुसार महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए चार मुख्य प्रक्रियाएं अनिवार्य हैं :

(क) महिलाओं की गतिशीलता एवं सामाजिक अन्त:क्रिया में परिवर्तन।

(ख) महिलाओं के श्रम पैटर्न में परिवर्तन।

(ग) महिलाओं को संसाधनों की उपलब्धता तथा उस पर नियंत्रण में परिवर्तन।

(घ) निर्णय लेने में महिलाओं के नियंत्रण में परिवर्तन।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में महिलाओं के विकास एवं सशक्तीकरण के निमित्त निम्नलिखित विशिष्ट लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं :

(क) 0-6 वर्ष के आयु समूह का लिंगानुपात 927 (2001) से 2011-12 तक 935 करना तथा 2016-17 तक 950 करना।

(ख) यह सुनिश्चित करना कि सभी शासकीय योजनाओं के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष लाभान्वितों में से 33 प्रतिशत महिलाएं/बालिकाएं हों।

(ग) शिशु-मृत्यु दर 57 से घटाकर 28 करना तथा मातृ मृत्यु दर (प्रति हजार जीवित जन्मों पर) 3.01 से घटाकर 1 करना।

(घ) 2011-12 तक महिलाओं और बालिकाओं में रक्ताल्पता को 50 प्रतिशत कम करना।

(ङ) बालकों एवं बालिकाओं दोनों के लिए प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालय स्तरों पर पढ़ाई बीच में छोड़ने वालों की दर (ड्रॉप आउट) 10 प्रतिशत कम करना।

महिला सशक्तीकरण हेतु एक जरूरी कदम है लैंगिक दृष्टि से सभी मदों में आँकड़े जुटाना जिससे विषमता के विभिन्न पहलुओं की जानकारी हो सके। इस संबंध में संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा विकसित किए गए दो सूचकांकों को भारत सरकार ने अपनाया है : 'लैंगिक विकास सूचकांक' (जेंडर डेवलपमेंट इंडेक्स) तथा 'लैंगिक सशक्तीकरण मापक' (जेंडर इम्पावरमेंट मेज़र)। लैंगिक समता के संवर्धन की परियोजना के तहत भारत सरकार ने 2007 में लैंगिक विकास सूचकांक और लैंगिक सशक्तीकरण मापक की गतिविधि को अपनाया। ज्ञातव्य है कि जहां मानव विकास सूचकांक शिक्षा, दीर्घायु तथा आय (जीवन-स्तर) की औसत उपलब्धि को मापता है, वहीं लैंगिक विकास सूचकांक इन तीनों आयामों में स्त्री और पुरुष के बीच व्याप्त विषमताओं को परिलक्षित करने हेतु औसत उपलब्धि को समायोजित करता है। इसके आगे लैंगिक सशक्तीकरण माप अवसरों पर ध्यान केंद्रित करता है और तीन क्षेत्रों में लैंगिक विषमता को पकड़ता है : राजनैतिक भागीदारी तथा आर्थिक भागीदारी में निर्णय लेने की शक्ति। वर्ष 1996 से 2006 की तुलना करने पर पाया गया कि समूचे भारत में लैंगिक विकास सूचकांक 1996 में 0.514 था जो 2006 में बढ़कर 0.59 हो गया - अर्थात् स्त्री-पुरुष विषमता थोड़ी घटी। इसी प्रकार 1996 में लैंगिक सशक्तीकरण मापक 0.416 था जो 2006 में बढ़कर 0.497 हो गया - अर्थात् इस दशक में आर्थिक संसाधनों पर उनका आधिपत्य बढ़ा। इसके अलावा विभिन्न राज्यों की तुलना करने पर पाया गया कि 2006 में लैंगिक विकास सूचकांक में केरल का पहला स्थान (0.745) रहा और महाराष्ट्र का दूसरा स्थान (0.677) रहा जबकि सबसे खराब स्थिति बिहार (0.479) की थी और उसके बाद उत्तर प्रदेश का स्थान (0.509) था। मगर लैंगिक सशक्तीकरण मापक में पूरे देश में आंध्र प्रदेश का पहला स्थान (0.547) रहा। हिमाचल प्रदेश का दूसरा स्थान (0.541) रहा जबकि सबसे खराब स्थिति बिहार (0.379) की थी और उसके बाद उड़ीसा (0.393) की। इस प्रकार हम पाते हैं कि महिलाओं के विकास के मामले में (शिक्षा, दीर्घायु एवं आय) केरल अव्वल रहा और

महाराष्ट्र दूसरे स्थान पर मगर महिला सशक्तीकरण के मामले में (आर्थिक भागीदारी, राजनैतिक भागीदारी तथा आर्थिक संसाधनों पर आधिपत्य) आंध्र प्रदेश अव्वल रहा तथा हिमाचल प्रदेश दूसरे स्थान पर रहा। दूसरी ओर महिला विकास तथा सशक्तीकरण दोनों मामलों में बिहार सबसे निचले पायदान पर रहा।

जब से भारत सरकार ने लैंगिक बजट निर्माण शुरू किया है, तब से महिलाओं के लिए बजट में निर्धारित राशि में आशातीत वृद्धि हुई है। मसलन 2005-06 में महिलाओं के लिए रुपये 14378.7 करोड़ (2.79%) की राशि सामान्य बजट में निर्धारित थी जो 2009-10 में बढ़कर रुपये 56857.6 करोड़ (5.57%) हो गई। ऐसा कोई मंत्रालय/क्षेत्र नहीं है जिसमें लैंगिक बजट की व्यवस्था नहीं की जा सकती। उदाहरणार्थ, अंतरिक्ष विभाग में ग्राम संसाधन केंद्र कुपोषण, स्वास्थ्य आदि मुद्दों पर अंतरिक्ष के जरिए प्रसारण करता है। इसी प्रकार 'एडूसेट' एवं 'ग्रामसेट' दूरदराज के इलाकों में सूचनाओं और शिक्षा का प्रसारण करते हैं। इसी प्रकार वाणिज्य विभाग विशेष आर्थिक क्षेत्रों तथा विश्व व्यापार संगठन के तहत हुए समझौतों में महिलाओं की बीमारियों (थायरायड, मूत्राशय/गर्भाशय का कैंसर) की नाभिक दवाओं तथा महिलाओं की ऊर्जा जरूरतों के लिए बजट का प्रावधान होता है। इसी प्रकार ऊर्जा क्षेत्र में लैंगिक बजट-निर्माण में तीन प्रकार की कार्रवाइयाँ की जा सकती हैं : पहली, राजीव गाँधी ग्रामीण विद्युतीकरण योजना के तहत महिला स्व-सहायता समूहों को ग्रामीण विद्युत वितरण में फ्रेंचाइजी के रूप में शामिल करना। दूसरी, बड़ी परियाजनाओं से विस्थापित लोगों के पुनर्वास में लैंगिक बजट बनाना। तीसरी, ऊर्जा वितरण में भिन्न लैंगिक प्रभावों की पहचान।

यहां यह उल्लेखनीय है कि 'महिलाओं के विरुद्ध सर्वभेदभाव-समापन समझौता' (जिसे 'सेडा' के नाम से जाना जाता है) (1979) को भारत सरकार ने 25 जून 1993 को [कुछ संशोधनों के साथ, अनुच्छेद 16 (1), (2) तथा अनुच्छेद 29 (1) जो किसी समुदाय के निजी मामलों में दखल न देने से संबंधित है, अनुमोदित कर दिया। संयुक्त राष्ट्र के 'सेडा' के पश्चिमी क्षेत्र की बैठक 22-23 सितंबर, 2009 को नई दिल्ली में संपन्न हुई थी। जाहिर है कि समझौते के मुख्य प्रावधान महिलाओं क सशक्तीकरण के लिए बनाए गए हैं : अनुच्छेद 2 में कहा गया है कि संविधान तथा अन्य कानूनों में स्त्री-पुरुष समानता के सिद्धांत को शामिल किया जाएगा, राष्ट्रीय न्यायाधिकरणों एवं अन्य सरकारी संस्थाओं के जरिए महिलाओं के अधिकारों को संरक्षण दिया जाएगा, महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव वाले कार्यों/प्रथाओं में राष्ट्र शामिल नहीं होगा, महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव रखने वाले कानूनों, विनियमनों और रिवाजों को खत्म किया जाएगा या संशोधन किया जाएगा आदि। अनुच्छेद 3 के अनुसार महिलाओं के पूर्व विकास हेतु राष्ट्र राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में उचित उपाय करेंगे। अनुच्छेद 6 के अनुसार राष्ट्र ऐसे उपाय)कानून सहित) करेंगे जिनसे महिलाओं को वेश्यावृत्ति और देह-व्यापार के शोषण से रोका जा सके। अनुच्छेद 7 के अनुसार राष्ट्र महिलाओं को मताधिकार एवं निर्वाचन लड़ने का अधिकार सुनिश्चित करेंगे तथा वे नीति-निर्धारण, सरकार के सभी स्तरों पर भागीदारी एवं राजनैतिक जीवन से संबंधित गैर-सरकारी संगठनों में भाग लेने का अधिकार महिलाओं को देंगे। अनुच्छेद 10 के अनुसार राष्ट्र महिलाओं को

पुरुषों के समान शिक्षा देंगे, सह-शिक्षा को प्रोत्साहन देंगे, छात्राओं की पढ़ाई बीच में छोड़ने की दर (ड्रॉप आउट रेट) घटाएंगे, वयस्क शिक्षा एवं कार्यात्मक साक्षरता का अवसर देंगे आदि। अनुच्छेद 11 के अनुसार राष्ट्र महिलाओं को रोजगार देने के लिए काम का अधिकार सभी को देंगे, रोजगार के समान अवसर देंगे, चयन में समान मापदंड अपनायेंगे, रोजगार एवं व्यवसाय को स्वतंत्र रूप से चुनने का अधिकार देंगे, समान काम के लिए समान मजदूरी देंगे, सेवानिवृत्ति, बेरोजगारी, बीमारी, अशक्तता एवं बुढ़ापे में सामाजिक सुरक्षा के अतिरिक्त वेतन सहित छुट्टी का अधिकार देंगे, कार्यस्थल पर स्वास्थ्य एवं शारीरिक सुरक्षा, प्रजनन सुरक्षा आदि देंगे। अनुच्छेद 14 के अनुसार राष्ट्र ग्रामीण विकास में सभी स्तरों पर महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करेंगे जिनमें कृषि साख, बाजार की सुविधाएं, उचित तकनीक, भूमि सुधार, सामुदायिक क्रियाकलाप, स्वरोजगार, परिवार नियोजन आदि शामिल होंगे। इसके आलोक में भारत सरकार के महिला एवं बाल विकास मंत्रालय की दृष्टि है : सशक्त महिलाएं ससम्मान से जिएं और हिंसा मुक्त वातावरण में देश के विकास में समान सहभागी के रूप में अपना योगदान दें।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर 8 मार्च, 2010 को राष्ट्रीय महिला सशक्तीकरण मिशन की स्थापना की गई। इसका उद्देश्य है महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक और वैधिक सशक्तीकरण हेतु विकास लक्ष्यों में अंतरालों की पहचान करना तथा उचित संस्थागत ढांचों के जरिए उन अवरोधों को दूर करना। मिशन 5 लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु कार्यरत है : महिलाओं का आर्थिक सशक्तीकरण, महिलाओं के विरुद्ध हिंसा की समाप्ति, स्वास्थ्य एवं शिक्षा पर जोर देकर महिलाओं का सामाजिक सशक्तीकरण, कार्यक्रमों, नीतियों, योजनाओं आदि में मुख्य धारा में लिंग के मुद्दे को लाना, स्थानीय स्तर पर विभिन्न कार्यक्रमों और योजनाओं के तहत लाभों को पाने हेतु जनजागरण तथा समर्थन गतिविधियाँ चलाना। इसके अलावा दो नई पहलें की गई हैं पहली है - 'सबला' - राजीव गाँधी किशोरी सशक्तीकरण योजना जो 11-18 वर्ष की किशोरियों के पोषाहार और स्वास्थ्य पर ध्यान केंद्रित करती है तथा उन्हें जीवन कौशल शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, शिक्षा आदि देकर सशक्त बनाती है। यह योजना विभिन्न राज्यों/संघ शासित क्षेत्रों में मौजूद आंगनवाड़ी केंद्रों के जरिए लागू की जा रही है। इसमें किशोरियों के लिए पोषाहार योजना तथा किशोरी सशक्तीकरण योजना दोनों को मिला दिया गया है। यह केंद्र प्रायोजित योजना है जिसकी 100 फीसदी निधि केंद्र सरकार देती है। मगर इसके पोषाहार वाले अंश में केंद्र और राज्य सरकारें आधा-आधा खर्च वहन करती हैं। इसके छह उद्देश्य हैं : पहला, किशोरियों को स्व-विकास एवं सशक्तीकरण के योग्य बनाना। दूसरा, उनकी पोषाहार तथा स्वास्थ्य स्थिति को सुधारना। तीसरा, उनमें स्वास्थ्य, स्वच्छता, पोषाहार, किशोरी पुनरुत्पादक एवं यौन-स्वास्थ्य, परिवार एवं बाल-देखभाल की जागरूकता पैदा करना। चौथा, उनके घरेलू हुनर, जीवन-कौशल तथा व्यावसायिक हुनर की वृद्धि करना। पाँचवां, विद्यालय के बाहर की किशोरियों को औपचारिक/अनौपचारिक शिक्षा में प्रवेश दिलाना। छठा, उन्हें सार्वजनिक सेवाएं जैसे प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र, डाकघर, बैंक, थाना आदि के बारे में सूचनाएं देना। इसमें उन्हें पाँच रुपए प्रतिदिन की दर से पोषाहार का प्रावधान है। दूसरी पहल है - इंदिरा गाँधी मातृत्व

सहयोग योजना – इसके तहत गर्भवती और दूध पिलाने वाली महिलाओं के स्वास्थ्य एवं पोषण स्थिति को सुधारने हेतु नकद राशि का भुगतान किया जाता है।

सन् 1993 में भारत सरकार ने 31 करोड़ रुपए की समग्र निधि (कोरपस फंड) के साथ राष्ट्रीय महिला कोष की स्थापना की जिससे असंगठित क्षेत्र की गरीब महिलाओं की आधारभूत जरूरतें पूरी की जा सकें। अब (2009–10 में) यह राशि बढ़कर 148 करोड़ रु0 हो गई। इसमें मध्यस्थ लघु वित्त संगठनों (जैसे गैर-सरकारी संगठन, महिला संघ, सहकारी संगठन) के जरिए असंगठित क्षेत्र की जरूरतमंद और गरीब महिलाओं को जीविका चलाने, छोटी इकाई शुरू करने, गृह निर्माण आदि शुरू करने के लिए लघु वित्त ऋण संवर्धन के तहत नए महिला समूहों में मितव्ययिता एवं साख की गतिविधि बढ़ाने हेतु पाँच लाख रुपए तक ऋण दिया जाता है। ऐसा समूह कम से कम छह माह का अनुभव रखता हो। दूसरे, मुख्य ऋण योजना के तहत तीन वर्ष के अनुभवी मध्यस्थ लघुवित्त संगठनों को एक समय में तीन करोड़ रुपए तक ऋण दिया जा सकता है। तीसरे, परिक्रामी निधि योजना (रिवाल्विंग फंड स्कीम) के तहत पाँच वर्ष के अनुभवी लघु वित्त संगठनों को तीन करोड़ रु0 का आवर्ती ऋण मिल सकता है जिसे वे स्व-सहायता समूहों को आय सृजित करने वाले कार्यों के लिए दे सकते हैं। इसी तरह की सात अन्य योजनाएं राष्ट्रीय महिला कोष द्वारा चलाई जाती हैं। शुरू से लेकर दिसंबर, 2009 तक राष्ट्रीय महिला कोष ने पूरे भारत में 234.9 करोड़ रु0 मध्यस्थ लघुवित्त संगठनों को प्रदान किया था। इससे कुल 6.62 लाख महिलाएं लाभान्वित हुईं। इसके अलावा समेकित बाल विकास योजना के तहत 2009–10 (31 दिसंबर, 2009 तक) में 156.86 लाख गर्भवती स्त्रियों एवं दूध पिलाती माताओं को पोषाहार (पाँच रुपए प्रतिदिन की दर से) लाभान्वित किया गया – उन्हें 600 कैलोरी ऊर्जा और 18–20 ग्राम पोषाहार प्रतिदिन दिया जाता है। मगर भारत जैसे देश में (जहाँ गरीबी का फीसद कम से कम 40 है) गर्भवती और दूध पिलाती महिलाओं की संख्या इससे बहुत ज्यादा है। इस प्रकार लाखों गरीब एवं जरूरतमंद महिलाएं पोषाहार की कमी से रक्ताल्पता की शिकार होती हैं। एक अनुमान के अनुसार करीब 60% गर्भवती ग्रामीण महिलाएं रक्ताल्पता से पीड़ित हैं और बच्चे जनने के दौरान होने वाली माताओं की मृत्यु का 17% हिस्सा (1995) रक्ताल्पता का होता है। यह अत्यंत दु:खद है कि समुचित चिकित्सा सुविधा के अभाव में, पोषाहार की कमी से, रक्त-स्राव और रक्त विषाक्तता से, असुरक्षित गर्भपात से, प्रसूति सड़ांध से, बच्चे की गर्भ में गलत स्थिति आदि से करीब 7000 भारतीय महिलाएं प्रसव के दौरान प्रतिवर्ष 'काल के गाल' में समा जाती हैं।

भारत सरकार की एक अन्य योजना है 'प्रियदर्शिनी योजना' जो मध्य गंगा क्षेत्र (उत्तर प्रदेश, बिहार) में महिला सशक्तीकरण एवं आजीविका कार्यक्रम के रूप में लागू है। इसका उद्देश्य समेकित एवं टिकाऊ रूप में गरीब महिलाओं/किशोरियों को स्व-सहायता समूहों के जरिये आजीविका के अवसर उपलब्ध कराना है। आजीविका में सुधार के साथ-साथ उन महिलाओं में अपनी सामाजिक, राजनैतिक, वैधिक, स्वास्थ्य और आर्थिक समस्याओं को संबोधित करने हेतु क्षमता-निर्माण भी होगा। इस परियोजना में बिहार के मधुबनी एवं सीतामढ़ी जिले तथा उत्तर प्रदेश के श्रावस्ती,

बहराइच, रायबरेली एवं सुल्तानपुर जिले शामिल हैं जहां महिलाओं और किशोरियों को स्व-सहायता समूह बनाने के लिए प्रेरित किया जाता है। अन्य मौजूद स्व-सहायता समूह इस परियोजना में शामिल होने के लिए स्वतंत्र हैं। उन्हें प्रशिक्षण दिया जाता है जिससे वे आय-सृजन, बाजार, सामाजिक मुद्दों आदि को ठीक से समझ सकें। परियोजना प्रखंडों (ब्लॉकों) में समुदाय-आधारित सेवा केंद्र स्थापित किया जाता है जो स्व-सहायता समूहों को हर संभव निर्देशन एवं समर्थन दे सके। इसमें गैर-सरकारी संगठनों को विभिन्न सुविधाएं देने हेतु शामिल किया जाता है। इस कार्यक्रम को नाबार्ड के जरिये संचालित किया जाता है। इससे महिलाएं अपनी छोटी-मोटी इकाइयाँ स्थापित कर सकेंगी। इस बाबत 'इफाद' और भारत सरकार के बीच (दिसंबर, 2009 में) इकरारनामा हो चुका है जिसमें कुल परियोजना राशि 3.73 करोड़ डॉलर है जिसमें 'इफाद' का हिस्सा 3 करोड़ डॉलर और भारत सरकार का हिस्सा 0.27 करोड़ डॉलर है।

पूरे प्रकरण को समग्रता में देखने पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं: त्रिस्तरीय पंचायतों में महिलाओं के लिए एक-तिहाई सीटों पर आरक्षण होने के कारण पूरे देश में करीब बारह लाख महिला प्रतिनिधि कार्यरत हैं जो महिलाओं के 'प्रारंभिक समावेशन' का सूचक है मगर राज्यों की विधान सभाओं और लोकसभा में अभी तक एक तिहाई महिला प्रतिनिधि नहीं हैं (10 से 12% मात्र महिलाएं हैं) जिसके कारण महिला नेतृत्व जिला स्तर से ऊपर शीर्ष की ओर नहीं उभर पा रहा है अर्थात् 'उर्ध्व मुखी गतिशीलता' नहीं हो पा रही है। महिला आरक्षण का विरोध करने वाले प्राय: मध्य जाति आधारित क्षेत्रीय दल हैं जिनके अपने निहित स्वार्थ और गुप्त एजेंडा हैं। जाहिर है जब तक महिलाओं की शीर्ष संसदीय संस्थाओं में राजनैतिक भागीदारी नहीं होगी, तब तक उनका 'सारगर्भित समावेशन' संभव नहीं है अर्थात् सही मायने में उनका सशक्तीकरण नहीं हो सका है। दूसरे, आर्थिक भागीदारी के मामले में भी महिलाओं की स्थिति संतोषजनक नहीं है क्योंकि वे नियोजन में पुरुषों से कई जमाने दूर हैं। फिर यह कटु सत्य है कि उन्हें कृषि कार्यों में पुरुष मजदूरों से कम मजदूरी मिलती है तथा उन्हें कतिपय कार्यों को करना बाध्यकारी है (जैसे खाना बनाना, कपड़े धोना, झाड़ू-पोंछा करना, बच्चों का पालन-पोषण करना, ईंधन लाना, पानी लाना आदि) जबकि कतिपय कार्यों को करने में उन पर प्रतिबंध है – जैसे हल से जुताई करना, छप्पर छाना, मंदिर में पुजारी बनना आदि। इस प्रकार, मूलत: गाँवों में श्रम-विभाजन विषमता पर आधारित है और महिलाओं के हितों के विरुद्ध है। इसके साथ-साथ भूमंडलीकरण ने महिलाओं की आर्थिक स्थिति को बदतर कर दिया है क्योंकि संगठित क्षेत्र के कई कार्य असंगठित हो गए हैं जहाँ ज्यादातर महिला कामगार होते हैं और वे कार्य न तो स्थायी होते हैं, न उनमें न्यूनतम मजदूरी मिलती है और न उनमें जोखिम से सुरक्षा की व्यवस्था होती है। विभिन्न उत्पादों के खुले आयात के कारण घरेलू उद्योग बुरी तरह प्रभावित हुए हैं। जिनमें महिलाएं पारम्परिक रूप से कम पूँजी लगाकर खाली समय में काम करती रही हैं। अत्यधिक आयात के कारण उनके स्थानीय उत्पादों की माँग खत्म हो गई है और वे बेरोजगार हो गई हैं। इस प्रकार भूमंडलीकरण ने अस्थायीकरण और हाशियाकरण की प्रक्रियाओं को तेज किया है जिससे 'गरीबी के स्त्रीकरण' की प्रक्रिया तेज हुई है। तीसरे, दुर्भाग्यवश, भारत में पश्चिमीकरण को ही शासन-प्रशासन ने आधुनिकता का पर्याय मान लिया है। इसलिए पश्चिम में

बने बड़े बाँधों, राजमार्गों, बड़ी इमारतों आदि की नकल भारत में काफी होती रही है और उनसे साढ़े चार करोड़ लोग विस्थापित हो गए हैं जिसके परिणामस्वरूप महिलाओं का जीवन-स्तर काफी गिर गया है क्योंकि उनकी जीविका की आधार भूमि उनसे छीन ली गई है और न तो उन्हें उचित मुआवजा मिला और न समुचित तरीके से उनका पुनर्वास किया गया। एक अनुमान के मुताबिक 1990 से 2005 के बीच करीब तीस लाख एकड़ जमीन किसानों की सहमति के बिना 'लोक उद्देश्य' के नाम पर उनसे छीन ली गई है और गैर-कृषि कार्यों हेतु उन्हें बड़े-बड़े बिल्डरों, ठेकेदारों, उद्योगपतियों आदि के हवाले कौड़ी के दाम पर कर दिया गया। चौथे, भूमंडलीकरण ने स्वास्थ्य, स्वच्छता, पेय जलापूर्ति, सिंचाई आदि के लिए उपभोक्ता शुल्क (यूजर फीस) का सिद्धांत प्रतिपादित किया है जिसके कारण ग्रामीण महिलाओं की स्वास्थ्य की स्थिति बदतर हो गई है। पहले ही उनमें से पचास फीसदी को ही चिकित्सक और प्रशिक्षित नर्स की सुविधाएं उपलब्ध होती थीं। मगर शुल्क लगने और बढ़ने के कारण गरीब महिलाएं प्रसव में चिकित्सा एवं पोषाहार जैसी जरूरी सुविधाओं से महरूम हो गई हैं। यद्यपि 'सर्वशिक्षा अभियान' जोर-शोर से चलाया गया है मगर उसका शैक्षिक स्तर न्यूनतम से कम रहा है जिसके कारण ग्रामीण गरीब बालिकाएं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से वंचित हैं। गाँवों के विद्यालयों में शिक्षकों की कमी, शिक्षकों की अनुपस्थिति, शिक्षकों के आकस्मिक रुख एवं इच्छाशक्ति की कमी, आधारभूत संरचनाओं की कमी, शिक्षण-सामग्रियों की कमी आदि के कारण ग्रामीण बालिकाएं 'न्यूनतम अधिगम स्तर' (मिनिमम लेवल ऑफ लर्निंग) हासिल नहीं कर पा रही हैं। फिर घर-परिवार की समस्याओं के दबाव के कारण बालिकाओं में पढ़ाई बीच में छोड़ने की दर (ड्रॉप ऑउट रेट) अब भी बालकों से काफी अधिक है। यूँ पहले ही दाखिले में बालक-बालिकाओं में अंतर है – जहाँ करीब तीन-चौथाई बालक विद्यालयों में दाखिला लेते हैं, वहीं सिर्फ दो-तिहाई बालिकाएं ही स्कूलों में दाखिला लेती हैं। सच्चाई है कि एक बालक को शिक्षा देने से सिर्फ एक व्यक्ति शिक्षित होता है जबकि एक बालिका को शिक्षा देने से एक पीढ़ी शिक्षित हो जाती है। इस प्रकार शासन-प्रशासन के प्रयास से कुछ हद तक महिलाओं का सशक्तीकरण हुआ है मगर यह ऊँट के मुँह में जीरे के समान है। अभी हजारों मील की यात्रा करनी है और लम्बी यात्रा की शुरुआत भी पहले कदम से ही होती है। यह समस्या काफी बड़ी होने के कारण इसमें सरकार, गैर-सरकारी संगठनों, समुदायों, पंचायतों और स्थानीय (लोक समाज) को एकजुट होने की तत्काल जरूरत है। हमें एक नई सीख भारत के कोनों से मिल रही है कि स्त्री सशक्तीकरण में स्त्रियों के संगठनों की प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से अहम भूमिका होती है, इसलिए उनके स्व-सहायता समूहों को टिकाऊ एवं आत्मनिर्भर बनाने की नितांत आवश्यकता है।

* * *

महिलाओं एवं बच्चों के अधिकारों का संरक्षण: एक राष्ट्रीय दायित्व

• *लक्ष्मी सिंह*

भारत विश्व का द्वितीय सर्वाधिक आबादी वाला देश है। इस घनी आबादी का करीब पचास प्रतिशत महिलाएँ हैं जो आज अपने अधिकारों से वंचित नजर आ रही हैं। वैदिक एवं सिन्धु घाटी सभ्यता के समय महिलाओं की यह दुर्दशा नहीं थी - समाज में उन्हें सम्मान के साथ देखा जाता था, इतना तक कि उन्हें देवी का दर्जा दिया गया था। उस समय महिलाओं को समाज द्वारा लिए जा रहे महत्वपूर्ण निर्णयों में समान भागीदारी प्राप्त थी। किन्तु गुजरते वक्त एवं भारत के इतिहास में आए उतार-चढ़ाव के साथ महिलाओं की आज़ादी घटती गई। इस गिरावट ने अंततोगत्वा सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में महिलाओं के अधिकारों को छीना। साथ ही साथ उन्हें अपने परिवार के पुरुष सदस्यों पर पूर्णरूपेण निर्भर होने को मजबूर कर दिया। महिलाएँ पीढ़ी-दर पीढ़ी अपने अधिकारों से वंचित होती गईं जिसके फलस्वरूप उनका स्तर घरेलू सामान के जैसा हो गया। भारत के पुरुष प्रधान समाज ने महिलाओं को दया का पात्र बना दिया।

आज़ादी प्राप्त करने के बाद, भारत एक राष्ट्र बना तथा अपना संविधान लागू किया। इस संविधान में महिलाओं को पुरुष के समान, सभी अधिकार दिए गए हैं। मौलिक अधिकारों के साथ-साथ, मौलिक कर्तव्यों में भारत के संविधान में महिलाओं को उचित सम्मान देने का प्रावधान किया गया है। भारत के संविधान में नारियों को समानता देने के साथ-साथ विशेष दर्जा भी दिया गया है ताकि उनका विशेष संरक्षण हो सके। उद्देशिका, मौलिक अधिकार (भाग III अनु0 12 से 35) तथा राज्य के नीति-निदेशक सिद्धांत (भाग IV अनु0 36 से 51-A) में इन बिन्दुओं पर विस्तार से चर्चा की गई है।

उद्देशिका में "हम भारत के लोग....." शब्दों में सभी पुरुष एवं महिलाएं सम्मिलित हैं। सभी को समान मौका एवं सम्मान देने की बात कही गई है। उद्देशिका को ध्यान में रखते हुए महिलाओं को उचित दर्जा दिलाने एवं उनके अधिकारों तथा सम्मान के संरक्षण हेतु कई कानून बनाए जा चुके हैं। मौलिक अधिकारों के भाग में राष्ट्र को हिदायत दी गई है कि लिंग के आधार पर कोई

• *अध्यक्ष, झारखण्ड अकादमिक परिषद, रांची (झारखण्ड)*

भेदभाव न हो [अनु0 15 (1), । उसी प्रकार आम जनता को हिदायत दी गयी है कि लिंग आधारित भेदभाव न हो अनु0 15 (2)। किन्तु अनु0 15 (3) में राष्ट्र को महिलाओं के उत्थान एवं संरक्षण हेतु विशेष कानून बनाने का अधिकार दिया गया है। भारत की न्यायपालिका ने भी महिलाओं के संरक्षण हेतु कई महत्वपूर्ण आदेश पारित किए हैं। लिंग समानता के चिन्तन को चरितार्थ करने हेतु माननीय उच्चतम न्यायालय ने विशाखा बनाम राजस्थान राज्य के मामलों में बारीकी से मार्गदर्शन दिया है ताकि कामकाजी महिलाओं को कार्यस्थल में लिंग के आधार पर प्रताड़ना न सहनी पड़े। यह सभी कामकाजी महिलाओं के सम्मान सहित कार्य करने के अधिकारों को संरक्षित करता है (अनु0 14, 19 एवं 21) तथा यह मार्गदर्शिका उस वक्त तक लागू रहेगी जब तक कि विधायिका इस संबंध में उचित कानून नहीं बना लेती है।

भारत की विधायिका ने संविधान के 73 वें एवं 74 वें संशोधन के ज़रिए अनुच्छेद 243 डी (3) में प्रावधान किया है कि पंचायतों में कम से कम एक तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित रहेंगी। इस एक-तिहाई कोटे में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की आरक्षित सीटें शामिल होंगी। ये सीटें बारी-बारी प्रत्येक चुनाव क्षेत्र में उपलब्ध होंगी। उसी प्रकार अनुच्छेद 243 टी (3) के अनुसार नगर निकायों में भी प्रावधान किया गया है। कुछ राज्यों में यह प्रावधान 50 प्रतिशत तक कर दिया गया है।

महिलाओं को अधिकार दिलाने तथा उनकी रक्षा के लिए कई कानून बनाए गए। ब्रिटिश राज के जमाने से चली आ रही भारतीय दंड संहिता में धारा 498ए जोड़ी गई जिसके अनुसार पति अथवा उनके रिश्तेदारों द्वारा पत्नी को प्रताड़ित करना दंडनीय अपराध माना गया। इसी प्रकार, धारा 304 बी में दहेज-मृत्यु, धारा 306 में आत्महत्या करने की प्रेरणा, धारा 326 में खतरनाक हथियार से की गई गम्भीर चोट, धारा 376 में बलात्कार, धारा 494 में एक पत्नी के रहते दूसरा विवाह करना इत्यादि कई धाराओं को दंडनीय एवं महिलाओं के हित में भारतीय दंड संहिता में अंगीकृत किया गया है।

भारतीय दंड संहिता के अलावा, महिलाओं को उनका हक दिलाने हेतु कई अन्य कानून बनाए गए हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि समाज में महिलाओं को सुरक्षा एवं समान मौका देने की जरूरत थी अन्यथा ये कानून नहीं बनते। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर भारत ने महिलाओं के विरूद्ध हर प्रकार के भेदभाव की समाप्ति पर अभिसमय CEDAW (Convention on the elimination of all sorts of discrimination against women) जैसे समझौते पर 1993 में हस्ताक्षर किया जिसके आलोक में भारत ने कबूल किया कि भारत में महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव किया जाता है तथा भारत महिलाओं को समान अधिकार दिलाने हेतु प्रतिबद्ध है। CEDAW, यानि महिलाओं के विरूद्ध किए जा रहे सभी प्रकार के भेदभाव को मिटाने का अन्तरराष्ट्रीय समझौते एवं वादों, का पालन करने के लिए भारत ने वर्ष 2006 में घरेलू हिंसा कानून को लागू किया। इस कानून को बहुत व्यापक बनाया गया है जिसके अनुसार महिलाओं को अपने घर में पूर्ण सुरक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की गई है। अगर पति अथवा उनके रिश्तेदारों द्वारा मात्र

इशारों से भी महिला को प्रताड़ित किया जाता है, तो भी उन पर कानूनी कार्रवाई हो सकती है। महिलाओं को इस कानून के अंतर्गत सभी सुविधाएं जैसे संरक्षण, घर में रहने की अनुमति, भय-मुक्त वातावरण में निवास करने तथा आर्थिक एवं वित्तीय उत्पीड़न से मुक्ति पाने के आदेश इत्यादि को मुहैया कराने हेतु न्यायिक दंडाधिकारियों, संरक्षण पदाधिकारियों, गैर-सरकारी संस्थाओं एवं थानों को चिह्नित किया जा रहा है। दहेज निषेध अधिनियम 1961, डायन प्रथा निषेध अधिनियम 1999, गर्भधारण-पूर्व एवं प्रसव-पूर्व नैदानिक तकनीक (लिंग चयन निषेध अधिनियम, 1994) (The Pre conception and Prenatal Diagnostic Techniques (Prohibition of Sex selection Act, 1994), परिवार न्यायालय अधिनियम 1984, राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम 1990, इत्यादि भी महिलाओं के अधिकारों के संरक्षण हेतु बनाए गए हैं।

भारत में कानूनों की कमी नहीं है - बस कमी है उनके निष्ठा से अनुपालन की। कानून ताक पर रखा रह जाता है और महिलाएँ अपने अधिकारों से वंचित रह जाती हैं। महिलाओं को सम्मान के साथ जिन्दगी गुजर-बसर करने का अधिकार, भयमुक्त वातावरण में घर में रहने, यात्रा करने, कार्यालय में काम करने का अधिकार, समय पर उपयुक्त स्वास्थ्य-चिकित्सा प्राप्त करने का अधिकार, स्कूल-कॉलेज एवं व्यावसायिक शिक्षण/प्रशिक्षण संस्थानों में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार, रोजगार प्राप्त करने, समान कार्य के लिए समान वेतन/मजदूरी पाने तथा प्रोन्नति का समान अवसर मिलने के अधिकार इत्यादि, अब भी पूर्णरूपेण उपलब्ध नहीं हुए हैं। कहने के लिए तो महिलाओं को सभी मौलिक अधिकार एवं मानव अधिकार मिलने चाहिए किन्तु आजादी प्राप्त करने के 6 दशकों से अधिक समय बीतने के बाद भी भारत में नारियों के प्रति पुरुषों की सोच में कोई विशेष बदलाव नहीं आया है। महिलाएँ आज भी भोग-विलास की सामग्री मानी जाती हैं। शोषण एवं दमन से अब भी नारियाँ त्रस्त हैं। रेलगाड़ियों, बसों, टैक्सियों तथा ऑटोरिक्शाओं में महिलाएँ सुरक्षित सफर नहीं कर सकतीं, और न ही सभी लड़कियाँ अपने घर में चैन से रह सकती हैं - बलात्कार, छेड़खानी तथा अपमानित होने का डर हमेशा रहता है। आजाद भारत में महिलाएँ खुद को कितनी सुरक्षित एवं निरापद महसूस करती हैं, इस पर सरकार एवं समाज को गंभीरता से मंथन करना चाहिए। नारी अपराध में तेजी से वृद्धि हो रही है। नारियों को सामाजिक, राजनीतिक एवं अन्य क्षेत्रों में आजादी मिली है किन्तु उनके मन की जंजीर अब भी नहीं टूटी है। परिवारिक जीवन में कई बार महिला निजी निर्णय लेने हेतु स्वतंत्र नहीं होती। उनकी इच्छा-अनिच्छा जाने बगैर उन पर पुरुषों द्वारा कई इच्छाएं थोप दी जाती हैं। महिलाएं पुरुषों की तरह आजादी के साथ घूम-फिर नहीं सकतीं। उन्हें हर कदम पर पुरुषों के संरक्षण की आवश्यकता होती है।

देश की करीब आधी आबादी होने के बावजूद राजनीतिक क्षेत्र में महिलाएं पुरुषों से बहुत पीछे हैं। देश की संसद हो अथवा राज्यों की विधान सभा, महिला सदस्यों की संख्या पुरुषों के अनुपात में बहुत कम है। उसी प्रकार, सभी राजनीतिक दलों में महिलाओं की भागीदारी भले ही जमीनी स्तर पर नगण्य न हो, किन्तु पद-धारकों में उनकी संख्या नगण्य ही कही जाएगी। निर्वाचन के समय महिलाओं को यह कहकर टिकट नहीं दिया जाता कि वे अधिक धन नहीं लगा सकेंगी

फलस्वरुप अधिक वोट प्राप्त नहीं कर सकेंगी। महिलाएं ज्यादातर शिक्षिका, नर्स, कंप्यूटर कर्मी इत्यादि के रूप में नियोजित होती हैं, अथवा आंगनवाड़ी सेविका, कृषि एवं निर्माण मजदूर के रूप में जीविकोपार्जन करती हैं। न्यायिक सेवाओं में महिलाओं की भागीदारी असंतोषजनक है।

अभी तक कोई महिला भारत की मुख्य न्यायाधिपति नहीं बन पाई है। हमारे देश की राष्ट्रपति तथा लोकसभा को अध्यक्ष भले ही महिलाएं हैं, एवं पूर्व में प्रधानमंत्री के रूप में महिला भी इस पद को संभाल चुकी हैं, किन्तु बहुत क्षेत्रों में, विशेषकर भारतीय फौज में, अब भी महिलाओं की संख्या औसत से काफी कम है।

महिलाओं को तब तक उनके अधिकार प्राप्त नहीं होंगे जब तक वे स्वयं अपनी स्थिति को मजबूत करने की चेष्टा नहीं करेंगी। उन्हें शिक्षित एवं प्रशिक्षित होना होगा, घर की चहारदीवारी से बाहर आकर समाज के उत्थान के लिए हाथ बंटाना होगा। महिलाओं को अपने अधिकारों के बारे में जानना होगा। उन्हें सतर्क रहना होगा कि उनका व्यापार/व्यापारीकरण न हो एवं दहेज प्रथा, देह-व्यापार, अश्लील टी. वी. विज्ञापनों, फिल्म उद्योग में उनके शोषण, अंधविश्वास, डायन प्रथा, सती प्रथा, बाल विवाह, भ्रूण-हत्या, घरेलू हिंसा, कार्य क्षेत्र में उत्पीड़न आदि के विरुद्‌ध एकजुट होकर आवाज उठानी होगी।

केन्द्र एवं राज्य सरकारों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि महिलाओं के लिए बने सभी कानून सख्त एवं स्पष्ट हों तथा उनका सही ढंग से अनुपालन हो। महिला चाहे किसी भी पंथ या संप्रदाय की हो, उनके पंथ या संप्रदाय विशेषकर पर्सनल लॉ को उनके साथ नाइंसाफी करने का प्रश्रय नहीं मिलना चाहिए। सभी महिलाओं को पुरुषों के जैसा समान अधिकार प्राप्त होना चाहिए। महिलाओं को उपयुक्त रोजगार के पर्याप्त अवसर मिलने चाहिए ताकि उन्हें अपने गांव से पलायन करने की मजबूरी न हो। सरकार, सरकारी सेवकों, बुद्‌धिजीवियों, राजनीतिज्ञों, व्यापारियों यानि समाज एवं देश के सभी वर्गों को महिलाओं को उनके अधिकार दिलाने हेतु गंभीरता से सोचना एवं कार्रवाई करनो होगो। अगर देश का महिला वर्ग असुरक्षित रहेगा, अपने अधिकारों से अनभिज्ञ एवं वंचित रहेगा तो विकास के बारे में सोचना बेमानी होगा। आधी आबादी अंधकार में रहे - इससे दुखद स्थिति क्या हो सकती है? देश की तरक्की में महिलाओं की समान भागीदारी तब हो सकती है जब नीति-निर्णय में उन्हें शामिल किया जाएगा।

महिलाओं के संरक्षण के लिए, उनकी फरियादों को सुनने तथा जल्द राहत दिलाने हेतु राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन एक अधिनियम के तहत किया गया है। दिल्ली में स्थित यह आयोग महिलाओं द्‌वारा संचालित है तथा महिलाओं के हित में गठित है। कई राज्यों में राज्य महिला आयोगों का गठन किया गया है जो राष्ट्रीय महिला आयोग से स्वतंत्र हैं। किन्तु इन आयोगों के आदेश सामान्य न्यायालय के आदेश जैसे बाध्यकारी नहीं होते - इनका आदेश प्रशासन एवं सरकार के लिए अनुशंसा होते हैं यद्यपि इन आयोगों को दीवानी कोर्टों के जैसे कुछ अधिकार प्राप्त हैं। अत: महिलाओं को इन आयोगों से उतना लाभ नहीं मिलता जितना कि सामान्य न्यायालयों से। महिलाओं

के पारिवारिक न्यायालय गठित किए गए हैं जो पारिवारिक समस्याओं की सुनवाई करके आदेश पारित करते हैं। न्यायपालिका ने मुफ्त कानूनी सहायता का प्रावधान सभी महिलाओं के लिए किया है ताकि किसी महिला को न्याय पाने में पैसे की कमी न हो। यह एक महत्वपूर्ण कदम है किंतु इस संबंध में पर्याप्त जानकारी का अभाव है - बहुत कम महिलाएं इस सुविधा से अवगत हैं। इसलिए इस प्रावधान का फायदा नहीं उठा सकतीं। वकीलों में भी इस प्रावधान के प्रति उतनी सहानुभूति नहीं दिखाई देती जितनी कि अपेक्षित है। महिलाओं के लिए विशेष मंत्रालय, यानि समाज कल्याण मंत्रालय का गठन राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर किया गया है। किन्तु जब मंत्रियों में मंत्रालयों का आबंटन होता है, तो इस मंत्रालय को मंत्रीगण उतना महत्व नहीं देते हैं - इसे एक कमजोर मंत्रालय समझा जाता है जिसका आबंटन हमेशा किसी महिला मंत्री को ही होता है।

संयुक्त राष्ट्र संगठन ने सन् 1990 में बच्चों के जीवित रहने, उनके संरक्षण एवं विकास हेतु एक घोषणा पत्र पारित किया था जिसमें भारत की भी भागीदारी थी। दिनांक 11 दिसंबर, 1992 को भारत ने बाल अधिकार अभिसमय को स्वीकार किया। इसके तहत जिन देशों ने इस पर हस्ताक्षर किए, उन पर बाल अधिकारों के संरक्षण हेतु आवश्यक कदम उठाने का उत्तरदायित्व आ गया है। तदनुसार भारत सरकार ने National Charter for Children 2003 को अपनाया है। इस घोषणा पत्र में बच्चों के जीवित रहने, विकास एवं संरक्षण हेतु प्रतिबद्धता पर जोर दिया गया है। देश एवं समाज का बच्चों के प्रति कर्तव्य तथा बच्चों का परिवार, समाज एवं राष्ट्र के प्रति कर्तव्य का प्रावधान इस घोषणा पत्र में किया गया है। बच्चों के लिए कार्य करने की राष्ट्रीय योजना (National Plan of Action for Children 2005) जो भारत के संसद में प्रस्तुत की गई थी, में उन कदमों को दर्शाया गया है जिनके जरिए भारतीय बच्चों के जीवन में सुधार आ सके। इस योजना को चार भागों में बांटा गया है, यथा बच्चों का जीवित रहना, बच्चों का विकास, बच्चों का संरक्षण तथा बच्चों की भागीदारी। इस योजना के मार्गदर्शी सिद्धांत इस प्रकार हैं :-

1. बच्चे को संसाधन एवं मानव अधिकार संपन्न व्यक्ति समझना।
2. लिंग, वर्ग, जाति, नस्ल, पंथ एवं वैधिक स्तर पर आधारित भेदभाव का समाधान करना ताकि समानता बनी रहे।
3. सभी नीतियों एवं कार्यक्रमों में निर्धनतम, सबसे वंचित एवं प्रतिकूल परिस्थितियों से ग्रसित बच्चों को अधिकतम प्राथमिकता देना।
4. बालपन के विभिन्न चरणों एवं अवस्थाओं को चिह्नित करना तथा मूलभूत आवश्यकताओं एवं अधिकारों को दिलाना।

इस राष्ट्रीय योजना के कई लक्ष्य हैं, जैसे वर्ष 2010 तक शिशु मृत्यु दर को प्रति हजार तीस की संख्या को घटाना, वर्ष 2010 तक बच्चों में कुपोषण को घटाना, वर्ष 2010 तक प्रत्येक शिशु जन्म को निबंधित करना, वर्ष 2010 तक सभी बच्चों की देखभाल, विकास एवं गुणात्मक शिक्षण, वर्ष 2010 तक बाल विवाह का अंत तथा मादा भ्रूण हत्या, बच्चियों की हत्या खत्म करने के

साथ-साथ बच्चियों को जीने देना, उनका विकास एवं उनका संरक्षण। इसके अलावा, कठिन परिस्थितियों में बाल अधिकारों की रक्षा, किशोर न्याय अधिनियम का पालन करना तथा बच्चों को अन्तरराष्ट्रीय स्तर की गुणात्मक देखभाल करना, बाल श्रम को पूरी तरह समाप्त करना ताकि बच्चों का आर्थिक शोषण न हो, बच्चों के अधिकारों एवं हितों की रक्षा हेतु नीतियों कार्यक्रमों एवं कानूनों का अनुश्रवण, समीक्षा तथा सुधार करना, राष्ट्रीय कार्य योजना तथा बाल अधिकार अभिसमय के तहत बनाए जा रहे प्रतिवेदनों में बच्चों की भागीदारी को सुनिश्चित करना - ये सभी राष्ट्रीय योजना के उद्देश्य हैं।

भारतीय संविधान के 86वें संशोधन अधिनियम 2002 ने संविधान में अनुच्छेद 21 ए को जोड़ते हुए प्रावधान किया कि प्रत्येक बच्चा जिसकी उम्र 6 वर्ष से 14 वर्ष तक हो, को मुफ्त एवं अनिवार्य रूप से शिक्षा पाने का अधिकार है। यह नया अनुच्छेद प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा को आच्छादित करेगा तथा लोग भारत के संविधान के भाग III का लाभ पाने हेतु न्यायालय को शरण ले सकेंगे। इस संशोधन के कार्यान्वयन हेतु इस साल से शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार संबंधी कानून भारत में लागू हो चुका है। इससे पूर्व, सर्व शिक्षा अभियान के माध्यम से सभी बच्चों को स्कूल भेजने का कार्य व्यापक रूप से चलाया जा रहा है।

बाल विवाह को रोकने के लिए अभी तक भारत ने कड़े एवं कारगर कदम नहीं उठाए हैं। फलस्वरूप, 1998-99 में राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण द्वारा पाया गया कि 18 वर्ष की उम्र की हो जाने तक 65 प्रतिशत लड़कियाँ विवाहित हो चुकी थीं। बाल विवाह मानव अधिकार का हनन है। बाल विवाह के चलते लड़कियाँ शारीरिक एवं मानसिक रूप से पूरी तरह विकसित नहीं हो सकतीं। कम उम्र में गर्भ-धारण एवं सामाजिक अलगाव के साथ ही साथ अल्प शिक्षा तथा नगण्य व्यावसायिक प्रशिक्षण के कारण लड़कियाँ गरीबी से त्रस्त रहती हैं। बाल विवाह निरोध अधिनियम, 1929 बाल विवाह को मान्यता नहीं देती है। अन्तरराष्ट्रीय बाल अधिकार समझौता के अनुच्छेद 19 एवं 34 में प्रावधानित है कि बच्चों को सभी प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक प्रताड़ना तथा यौन शोषण एवं दुर्व्यवहार से बचाना है। बाल विवाह मानव अधिकार के सार्वभौम घोषणा के अनुच्छेद 16 के विरुद्ध है क्योंकि इस अनुच्छेद में यह प्रावधान है कि विवाह में दोनों पक्षों की पूरी सम्मति रहनी चाहिए। बाल विवाह बच्ची के जीने के अधिकार, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 में प्रावधानित है, के खिलाफ है।

बच्चों की अभिरक्षा तथा संरक्षण जैसे विषय पर न्यायालय ने कई फैसले सुनाए हैं, जैसे किसी भी नाबालिग लड़की को अपने पिता अथवा पति के साथ रहने को मजबूर नहीं किया जा सकता, अगर वह अपनी भलाई समझने में सक्षम हो। अभिरक्षण का निर्णय अंतिम नहीं है बल्कि भविष्य में परिस्थिति को देखते हुए बदला भी जा सकता है। अगर नाबालिग संतान अपनी माँ के साथ रहती है तो क्षेत्राधिकार माँ का आवास होगा न कि पिता का आवास।

बाल गवाही के बारे में न्यायालय का कहना है कि यद्यपि कोई बालक गवाह बन सकता है किंतु उसकी गवाही के साथ पर्याप्त संपुष्टि चाहिए। वह इसलिए कि बच्चों को आसानी से पाठ पढ़ाकर गवाही दिलवाई जा सकती है।

भारत में बाल अधिकारों एवं उनके संरक्षण के लिए कई कानून बनाए गए हैं। सर्वप्रथम, अगर संविधान पर नजर डालें तो समानता का अधिकार (अनु0 14), स्वतंत्रता विशेषकर बोलने एवं भावना प्रकट करने का अधिकार (अनु0 19 (प) (ए)), निजी आज़ादी, कानूनी कार्रवाई प्राप्त करने का अधिकार (अनु0 21), शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनु0 23), धार्मिक, सांस्कृतिक एवं शिक्षा के अधिकार (अनु0 29) तथा संवैधानिक प्रतिकार का अधिकार (अनु0 32)। भारत के संविधान ने अनुच्छेद 15 (3) में देश को अधिकार दिया है कि महिलाओं एवं बच्चों के लिए विशेष प्रावधान कर सकता है। संविधान का भाग III मौलिक अधिकारों के बारे में है जो वाद-योग्य हैं। देश का कर्तव्य है कि वह बाल संरक्षण सुनिश्चित करें एवं बच्चे ऐसे व्यवसायों से न जुड़ें जो उनकी उम्र तथा शक्ति के अनुपयुक्त हो [अनु0 39 (9) (ई), बच्चों के स्वस्थ विकास हेतु समुचित अवसर प्रदान करना भी प्रावधानित है [अनु0 39 (एफ),। भारत में बच्चों से सम्बन्धित 250 केन्द्रीय तथा राज्यव्यापी अधिनियम हैं जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण अधिनियम निम्नलिखित विषयों को आच्छादित करते हैं :- अभिभावकों की नियुक्ति, बाल विवाह, हिन्दू दत्तक ग्रहण, हिंदुओं में बच्चों के अभिभावकों की नियुक्ति, बच्चों के लिए हानिकारक प्रकाशनों पर रोक, 21 वर्ष से कम उम्र के अपराधियों के साथ व्यवहार, अनाथालयों तथा बाल गृहों का पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण, 14 साल से ज्यादा उम्र के प्रशिक्षुओं की व्यवसायिक प्रशिक्षण पाने की योग्यता, स्वास्थ्य चिकित्सक द्वारा गर्भ-धारण की समाप्ति, बाल श्रम, बाल बंधुआ मजदूरी, शिशुओं के लिए आहार एवं दुग्ध प्रतिस्थापना, चिकित्सीय कारणों हेतु गर्भ में लिंग पहचान तथा मादा भ्रूण हत्या, बाल अपराध न्याय, सुधार तथा पुनर्वास, इत्यादि।

बच्चों की देखभाल के लिए अनेक नीतियाँ बनी हैं जैसे, राष्ट्रीय बाल नीति 1974, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986, राष्ट्रीय बाल श्रम नीति 1987, दक्षिण एशियाई (SAARC) बच्चियों का दशक 1991-2010 के लिए राष्ट्रीय नीति, बच्चों के लिए राष्ट्रीय कार्य नीति 1992, राष्ट्रीय पोषाहार नीति 1993, राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 2000, राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2001। इन नीतियों पर आधारित राष्ट्रीय एवं राज्य सरकारों ने कई कार्यक्रम एवं योजनाएँ लागू की हैं। भारत सरकार ने महिला एवं बाल कल्याण हेतु करीब 120 परियोजनाएं एवं कार्यक्रम चलाए हैं जो 13 से अधिक मंत्रालयों एवं विभागों के माध्यम से कार्यान्वित हो रहे हैं। प्रजनन एवं बाल स्वास्थ्य कार्यक्रम महिलाओं एवं बच्चों के समेकित गुणात्मक स्वास्थ्य हेतु चलाया जा रहा है। समेकित बाल विकास सेवा कार्यक्रम एक साथ स्वास्थ्य, पोषाहार एवं विद्यालय-पूर्व सेवाएं देता है। इसके तहत समूचे देश में आंगनवाड़ी केंद्रों का जाल बिछाया गया है ताकि गर्भवती महिलाएं, दूध पिलाने वाली माताएं एवं शिशुओं के स्वास्थ्य की संपूर्ण देखभाल हो सके।

राष्ट्रीय बाल संरक्षण पहल भारत सरकार के सामाजिक न्याय एवं सशक्तीकरण मंत्रालय द्वारा अभियान स्वरूप शुरू की गई है। इस अभियान को राष्ट्रीय सामाजिक प्रतिरक्षा संस्थान (National Institute of Social Defence) एवं चाइल्ड लाइफ फाउंडेशन के माध्यम से चलाया जा रहा है। पुलिस, स्वास्थ्य प्रणाली, न्यायिक प्रणाली, बाल न्याय प्रणाली, शिक्षा प्रणाली, यातायात प्रणाली, श्रम प्रणाली, मीडिया, दूर-संचार विभाग, उद्योग क्षेत्र, सामाजिक कार्यकर्ता एवं निर्वाचित जन प्रतिनिधियों के साथ मिलकर इसे कार्यान्वित किया जा रहा है। बाल अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम 2005 के तहत राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग का गठन सन् 2007 को किया गया है। सभी राज्यों में ऐसे आयोग का गठन होना बाकी है। गैर-सरकारी संगठनों द्वारा बाल सेवा के क्षेत्र में अहम भूमिका निभाई जा रही है। बच्चे अब कल्याण के पात्र नहीं रहे बल्कि उनके सर्वांगीण विकास एवं सशक्तीकरण में हस्तक्षेप करने की नीति है। शोध एवं अभिलेखन, प्रत्येक स्तर पर उचित संशोधन लाने की वकालत, बाल अधिकारों की अद्यतन स्थिति पर वैकल्पिक प्रतिवेदन तैयार करना, अन्य गैर-सरकारी संगठनों के साथ तारतम्य बैठाकर बाल अधिकारों पर आवाज उठाना, चेतना जगाना, आम जनता की राय को संगठित करना, बाल अधिकार के विशेष हनन पर हस्तक्षेप करना, बच्चों की समस्याओं पर आवाज उठाने का मंच उपलब्ध कराना, सीधी कार्रवाई करके बच्चों को गुलामी से छुड़ाना, बच्चों के लिए परियोजनाओं को लागू करना।

भारत में शिशु मृत्यु दर, बाल विवाह, मातृ मृत्यु दर, बाल विधवा, यौन पर्यटन, अवैध बाल व्यापार (वेश्यावृत्ति, श्रम, दुरुपयोग हेतु) जैसी समस्याएँ गंभीर रूप से विद्यमान हैं। शारीरिक एवं मानसिक रूप से बच्चों की सही देखभाल करना एक बड़ी चुनौती है। भारत की आर्थिक उदारीकरण नीति से ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में अनेक समस्याएँ देखने को मिलती हैं। वैश्वीकरण के फलस्वरूप अन्तरराष्ट्रीय संगठित अपराध का विस्तारीकरण हुआ है जिसके कारण बच्चे बुरी तरह से उसकी चपेट में आ रहे हैं। युद्ध, आतंकवाद, गरीबी, पर्यावरण विपदा, विकास के नाम पर घर का उजड़ जाना, तथा वैश्वीकरण के चलते बच्चे उसके शिकार हो रहे हैं। बच्चियों की हालत तो सबसे दुखदायी है। उन्हें न तो जन्मने दिया जा रहा है और जन्मने के बाद भी हर पग पर वे नाना प्रकार की प्रताड़ना की शिकार बन रही हैं।

जरूरत है बाल केंद्रित संस्कृति की, बाल्यावस्था के बचाव एवं संरक्षण की। जरूरत है कानूनी हस्तक्षेप एवं रक्षा की। बाल अधिकारों के अनेक रूप हैं लेकिन अगर कुछ मौलिक अधिकारों पर ही गंभीर कार्रवाई हो तो स्थिति में गुणात्मक सुधार आएगा। इसी प्रकार महिलाओं के अधिकार तो कई हैं किंतु जरूरत है महत्वपूर्ण अधिकारों को जानना एवं कानूनन उनका कार्यान्वयन करना। भारत में महिलाओं एवं बच्चों की स्थिति बदतर ही कही जाएगी, विशेषकर ग्रामीण इलाकों में। आबादी में तेजी से वृद्धि हो रही है। भारत एक युवा राष्ट्र कहलाता है क्योंकि यहाँ युवकों की संख्या वृद्धों के मुकाबले काफी अधिक है। लेकिन यहाँ युवा पीढ़ी-दर-पीढ़ी कुपोषण का शिकार बनते जा रहे हैं। महिलाएँ रक्तक्षीणता से ग्रसित हैं, कुपोषण से जूझ रही हैं। फलत: बच्चों का उचित मानसिक एवं शारीरिक विकास नहीं हो पा रहा है। यह परिस्थिति राष्ट्रीय आपदा का रूप धारण कर

रही है। इन कुपोषण ग्रसित बच्चों का इलाज भविष्य में नहीं हो सकता। देश को ऐसी पीढ़ियाँ मिलेंगी जो अच्छी एवं स्वस्थ नागरिक नहीं बन सकतीं। महिलाओं की संख्या भी धीरे-धीरे घट रही है। अगर अभी सुधारात्मक कदम नहीं उठाए गए तो देश में असंतुलित लिंग अनुपात की भयावह स्थिति बनेगी।

देश के संतुलित विकास के लिए सभी नागरिकों को सचेत एवं गम्भीर होना होगा। मात्र कानून बनाने से काम नहीं चलने वाला अपितु इसमें सभी की सहभागिता की जरूरत है। विकास का सही आकलन तभी हो पाएगा जब समाज के अंतिम पायदान पर खड़े नागरिकों को उसके दायरे में सम्मिलित किया जाएगा। यह तभी हो सकेगा जब महिलाओं एवं बाल अधिकारों का संरक्षण होगा, उन अधिकारों को सही मायने में दिलाया जाएगा।

* * *

भारतीय समाज में सरोगेसी : चुनौतियों और अधिकारों के निकष पर

• डा. प्रतिभा

सा भावयित्री भावयित्वा भवति तं स्त्री गर्भं
विभर्ति सोऽग्र एव कुमारं .... ।

(वह माँ गर्भ को पालने वाली है, इस कारण पति तथा पुत्र से पालने योग्य है। उस गर्भ को स्त्री बड़े यत्न से, विवेक से नौ-दस मास तक पालती है।)

-ऐतरेय उपनिषद्, द्वितीय अध्याय

भारतीय परम्परा में कोई स्त्री शिशु को गर्भ में धारण करने तथा तदुपरान्त उसे जन्म देने से ही माँ का पद प्राप्त करती है। नियोग इत्यादि परम्पराओं के माध्यम से प्राचीन भारतीय समाज में वैकल्पिक पितृत्व के तो संकेत हैं, परन्तु मातृत्व कभी वैकल्पिक नहीं हुआ अथवा प्रश्नचिह्नों के घेरे में नहीं आया। जन्मदात्री और पालनकर्त्री के रूप में विभेद अवश्य हुए, जैसे देवकी कृष्ण की जन्मदात्री माँ, और यशोदा पालनकर्त्री माँ के रूप में लोक-विश्रुत रही। किन्तु जन्मदात्री माँ के ही विभेद और विकल्प-अर्थात् जैविक माँ कोई और तथा जन्मदात्री माँ कोई और - यह स्थिति पूर्णरूप से तकनीक-सिद्ध आधुनिकता के दिमाग की उपज हो सकती है।

विगत दो दशकों से पुनरुत्पादन तकनीक (Reproductive Technique) के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन आये हैं। इस क्षेत्र में प्रवर्तित नवीन तकनीकों- डोनर इनसरमिनेटर (Doner inserminator) ए आई० वी० एफ० तथा भ्रूण अन्तरण (Embryo Transfer) इत्यादि ने प्रजनन वातावरण को आमूल-चूल बदलते हुए 'अपने बच्चे' की इच्छा रखने वाले निस्संतान दंपत्तियों की आँखों में नये स्वप्न उत्पन्न कर दिए हैं।

पिछले कुछ समय से इस क्षेत्र में एक नए विकल्प का उद्भव हुआ है। यह विकल्प है वैकल्पिक मातृत्व अर्थात् Surrogate Motherhood का। आम बोलचाल की भाषा में यह

• *अध्यक्ष, इतिहास विभाग, दयानन्द महाविद्यालय, अजमेर (राजस्थान)*

प्रक्रिया सरोगेसी के नाम से जानी जाती है। पारिभाषिक रूप से ***सरोगेसी वह प्रक्रिया है, जिसमें एक स्त्री किसी अन्य स्त्री के लिए उसके बच्चे को अपने गर्भ में धारण करती है-इस अभिप्राय से कि जन्म होने के बाद उस बच्चे को उसके अधिकारी माता-पिता (Commissioning Parents) को दिया जा सके। इस प्रकार सरोगेट माँ वह है जो बच्चे को गर्भ में धारण कर जन्म देती है।***

जीव-वैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो सरोगेसी प्रजनन-व्यवस्था का वह रूप है, जिसमें एक स्त्री किसी दंपत्ति के निषेचित अंडाणु को अपने गर्भ में आश्रय देती है और नौ महीने के बाद शिशु को जन्म देकर उस दंपत्ति को सौंप देती है। अर्थात् सरोगेट माँ 'माँ' तो है किन्तु बच्चा उसका नहीं है। बच्चे के अभिभावक कोई और हैं। उसकी तो सिर्फ 'कोख' है जो उसने किराये पर दी है और उसके बदले उसे धन दिया जाएगा।

इस प्रकार इस व्यवस्था में दो प्रकार की माँ होती हैं जैविक (Genetic) तथा सामाजिक या अधिकारी (Commissioning) माँ, जो बच्चे के लिए अपना अंडाणु (Ovem) प्रदान करती है और जन्म के बाद उसे अपनाती है तथा सरोगेट माँ, जो बच्चे को कोख में धारण करती है। किसी-किसी परिस्थिति में जैविक और सामाजिक माएँ अलग-अलग होती हैं तो कभी-कभी सरोगेट माँ ही जैविक माँ होती है और सामाजिक माँ कोई और।

सरोगेसी की आवश्यकता क्यों?

अनुर्वर स्त्री के लिए प्राय: आई० वी० एफ० (IVF - In Vitro Fertilization) तकनीक का प्रयोग किया जाता है। इसमें पति के शुक्राणु और पत्नी के अंडाणु लिए जाते हैं। प्रयोगशाला में दोनों का संयोजन करवा कर भ्रूण को स्त्री के गर्भाशय में अन्तरित (Transfer) कर दिया जाता है, जिससे स्त्री सन्तान को जन्म देने योग्य हो जाती है। यह प्रक्रिया संतानोच्छुक स्त्री के गर्भाशय में ही होती है।

कभी-कभी यदि टी०बी०, गर्भाशय के ट्यूमर जैसी बीमारी अथवा दुर्घटना इत्यादि किसी कारण से स्त्री का गर्भाशय गर्भ धारण करने में अक्षम हो, नष्ट हो गया हो, बचपन से ही गर्भाशय नहीं हो या गर्भ धारण करने के बाद बार-बार गर्भपात करवाना पड़ता हो, तब स्थिति की माँग के अनुसार सरोगेसी का आश्रय लिया जाता है। संतानोच्छुक दंपत्ति में से पति से शुक्राणु और पत्नी से अंडाणु लेकर बाहर संयोजन के बाद भ्रूण को सरोगेसी के लिए प्रस्तुत किसी अन्य स्त्री के गर्भाशय में अन्तरित कर दिया जाता है। कभी-कभी अंडाणु भी किसी अन्य स्त्री या सरोगेट माँ से ही लिया जाता है। सरोगेसी की यह प्रक्रिया वैरिएशन ऑफ आई० वी० एफ० के रूप में पहचानी जाती है। वस्तुत: आई० वी० एफ० के कुल मामलों में से 2-3 प्रतिशत में ही सरोगेसी की आवश्यकता होती है।

सरोगेसी की विधियां

सरोगेसी व्यवस्था में प्रमुख रूप से दो विधियाँ अपनाई जाती हैं-

पूर्ण सरोगेसी (Total Surrogacy)

इस व्यवस्था में आई० वी० एफ० तकनीक की सहायता से सन्तानोच्छुक दम्पत्ति के युग्मकों को मिलाकर भ्रूण का निर्माण किया जाता है और तत्पश्चात् यह सरोगेट माँ के गर्भाशय में रोप दिया जाता है। अर्थात् सन्तानोच्छुक दम्पत्ति के निषेचित अडांणु को सरोगेट स्त्री अपने गर्भ में पालती है। इस विधि में प्राकृतिक तौर पर स्त्री का बच्चे से कोई सम्बन्ध नहीं होता। कभी-कभी सन्तानोच्छुक दंपत्ति में से पत्नी की शारीरिक अक्षमता के कारण किसी अन्य स्त्री के अंडाणु लिए जाते हैं।

आँशिक सरोगेसी (Partial Surrogacy)

इस विधि में सन्तानोच्छुक दम्पत्ति में से पत्नी की शारीरिक अक्षमता के कारण पति के शुक्राणु से सरोगेट स्त्री के अंडाणुओं का निषेचन कराया जाता है और निषेचित अंडाणु को उसी सरोगेट माँ के गर्भाशय में रोप दिया जाता है। अर्थात् इस विधि से उत्पन्न (Harvested) संतान के जैविक ढाँचे में उसके पिता के साथ सरोगेट माँ भी सहभागी होती है। कहा जाता है कि इस प्रक्रिया में सरोगेट स्त्री ही बच्चे की प्राकृतिक माँ भी होती है।

चिकित्सकों के अनुसार इस प्रकार के मामलों में सरोगेट माँ से सामान्य दैहिक सम्बन्धों के माध्यम से भी निषेचन संभव हो सकता है परन्तु नैतिकता की दृष्टि से वर्ज्य होने के कारण ऐसा किया नहीं जाता। इसके स्थान पर सरोगेट माँ के अंडाणु परखनली में रखकर सन्तानोच्छुक पति के शुक्राणु से निषेचित कराया जाता है। निषेचन के बाद भ्रूण को सरोगेट माँ के गर्भाशय में रोप दिया जाता है।

सरोगेसी व्यवस्था के प्रकार

सरोगेसी व्यवस्था दो प्रकार की होती है-

वाणिज्यिक अथवा व्यावसायिक व्यवस्था (Commercial or Professional Arrangement)

इस व्यवस्था में सरोगेट माँ को गर्भावस्था से संबद्ध आवश्यक चिकित्सकीय और स्वास्थ्य सम्बन्धी खर्च के अतिरिक्त पर्याप्त धन का भुगतान किया जाता है। प्राय: इस व्यवस्था में सन्तानेच्छुक दम्पत्ति और सरोगेट माँ में कोई जान-पहचान अथवा सम्बन्ध नहीं होता और इसी कारण इस व्यवस्था में बीच में कारण रूप से धन स्वभाविक रूप से विद्यमान रहता है। सम्बद्ध आर्ट (ART- Assisted Reproductive Technique) क्लीनिक तथा विज्ञापन आदि की मद में भी खर्च होता हैं। भारत जैसे निर्धन देश में धन स्वयं में एक बहुत बड़ा लालच है।

परार्थवादी अथवा भावात्मक व्यवस्था (Altruistic or Emotional Arrangement)

इस व्यवस्था में धन की भूमिका के महत्त्वपूर्ण न होने से न के बराबर भुगतान होता है। अधिक से अधिक गर्भावस्था से जुड़े आवश्यक खर्च का ही भुगतान सरोगेट माँ को किया जाता है। कभी-कभी यह व्यवस्था सन्तानोच्छुक दंपत्ति के रक्त सम्बन्धी अथवा निकटस्थ मित्र स्त्री के साथ ही की जाती है (वह स्त्री दम्पत्ति में से एक की माँ, भाभी व बहन हो सकती है।

दूसरे शब्दों में, सन्तान उत्पन्न करने में अक्षम स्त्री से भावात्मक-रागात्मक सम्बन्ध रखने वाली स्त्री उसकी अपूर्णता को पूर्णता में बदलने के लिए अपनी कोख देने को तैयार होती है। तब यह पूर्ण रूप से भावात्मक व्यवस्था बन जाती है।

अधिकतर देशों में व्यावसायिक अथवा परार्थवादी व्यवस्थाओं को परिभाषित नहीं किया गया है। किसी स्पष्ट विभाजक रेखा के अभाव में ऐसा करना सम्भव भी नहीं है। यह कहना मुश्किल है कि एक व्यवस्था कब दूसरी व्यवस्था में परिवर्तित हो जाए। निकटस्थ मित्र अथवा सम्बन्धी लालच में पड़ कर सन्तानेच्छुक दम्पत्ति को ब्लैकमेल करने लग जाएं या धन मांगने लग जाएं और पूर्णत: व्यावसायिक दृष्टि से सम्पर्क में आई सरोगेट माँ भावात्मक-रागात्मक रुख अख्तियार कर ले। कुछ मामलों में ऐसा देखने में आया है कि व्यावसायिक तौर पर जुड़ने वाले दोनों पक्ष एक दूसरे के लिए समर्पित हो गए।

एक उदाहरण में हैदराबाद के दम्पत्ति ने अपने बच्चे की सरोगेट माँ की फोटो अपने पूजा के कमरे में सजा रखी है। इसी प्रकार माता-पिता बनने के बाद एक दम्पत्ति ने अनुगृहीत होकर सरोगेट माँ के प्रत्येक बच्चे के नाम पर रू 50,000 - रू 50,000 की राशि बैंक में फिक्स्ड डिपॉजिट करवा दी।

सरोगेसी का प्रारम्भ

विश्व में सरोगेसी का पहला मामला 1976 में अमेरिका में सामने आया। हालांकि व्यापक चर्चा में यह विषय 1984 में आया जब न्यूजर्सी के विलियम व ऐलिजाबेथ के बच्चे के लिए सरोगेट माँ बनी मेरी वेथ व्हाइटहैड ने बच्ची को देने से मना कर दिया। अंतत: 1985 में पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर बच्ची को उसके माता-पिता को सौंप दिया।

भारत में सरोगेसी

भारत में सरोगेसी से जुड़ा पहला स्पष्ट मामला 2004 ई० में लोगों की निगाह में आया, जब गुजरात की 47 वर्षीय स्त्री ने अपने गर्भधारण में अक्षम बेटी के लिए जुड़वां बच्चों को जन्म दिया।

समय के साथ-साथ सरोगेसी से सम्बद्ध मामलों में तेजी से वृद्धि हो रही है। 'नेशनल आर्टिफिशियल रिप्रॉडक्टिव टैक्नीक रजिस्ट्री ऑफ इंडिया' के अनुसार 2004 में सरोगेट माँओं

के 50 मामले प्रकाश में आए, वहीं मात्र एक वर्ष में ये मामले 300 प्रतिशत बढ़कर 158 हो गए। आंकड़ों के अनुसार इस समय भारत में कुल 350 फर्टिलिटी क्लीनिक सरोगेट माँओं की व्यवस्था करते हैं। अकेले 'भारत की सरोगेट राजधानी' कहे जाने वाले आणंद (गुजरात) के आकांक्षा क्लीनिक में प्रतिवर्ष सरोगेसी के औसतन 144 मामले होते हैं। गत वर्ष आकांक्षा क्लीनिक में सरोगेट स्त्रियों से 190 नवजातों ने जन्म लिया। आज स्थिति यह है कि भारत के स्थानीय दम्पत्तियों और अप्रवासी भारतीयों के साथ-साथ चीन, फ्रांस, जर्मनी, ताइवान, कोरिया, इस्राइल, ग्रेट ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमेरिका के अनेक संतानहीन दम्पत्ति 'अपने बच्चे' की चाह में भारत की ओर खिंचे चले आ रहे हैं। कहा जा रहा है कि अब भारत विदेशियों के लिए चिकित्सा-पर्यटन के बाद प्रजनन-पर्यटन के केन्द्र के रूप में तेजी से परिवर्तित हो रहा है। वर्तमान में 1.5 बिलियन डॉलर प्रतिवर्ष के इस उद्योग के 2012 तक 2 अरब डॉलर हो जाने की सम्भावना है।

भारत में सरोगेसी व्यवसाय की इस तीव्र वृद्धि के निम्न कारण हो सकते हैं :-

सुविधा से प्राप्य-विदेशों में सरोगेट माँ की खोज आसान काम नहीं है। वेटिकन जैसे देश तो इस प्रक्रिया को प्राकृतिक व्यवस्था का उल्लंघन तथा बच्चे की खरीदारी मानते हैं। इसके विपरीत भारत में आकांक्षा फर्टीलिटी क्लीनिक, आणंद तथा दिल्ली आई० वी० एफ० जैसे क्लीनिक न केवल सन्तानेच्छुक दम्पत्ति तथा सरोगेट माँओं को मिलवाने का कार्य करते हैं, अपितु गर्भधारण-पूर्व से लेकर बच्चे के जन्म और अंतरण तक के समस्त भावनात्मक, कानूनी तथा आर्थिक पहलुओं को सुलझाने का प्रयास करते हैं।

कानूनी सहूलियत - वर्तमान भारतीय कानून भी सरोगेसी को प्रोत्साहन देने वाला हो जैसे - भारत में व्यावसायिक सरोगेसी को मान्यता है। यहाँ एक स्त्री कानूनन 5 बार सरोगेशन कर सकती है, जबकि अनेक दूसरे देशों में यह संख्या 2 ही है।

यहाँ बच्चे को जन्म देते ही तुरन्त उसकी सरोगेट माँ से बच्चे पर उसका अधिकार समाप्त कर देने वाले प्रपत्रों पर हस्ताक्षर ले लिए जाते हैं। भारत सरकार की सरोगेसी पर 'सहायक प्रजनन तकनीकी दिशा-निर्देश' के कारण यहाँ बच्चे की कस्टडी लेते वक्त आने वाली कानूनी पेंचीदगियां कम हैं।

सस्ता - भारत में सरोगेसी की प्रक्रिया तुलनात्मक रूप से पर्याप्त सस्ती है। एक अनुमान के अनुसार भारत में सरोगेसी के लिए करीब एक लाख रुपये से लेकर ज्यादा से ज्यादा रु0 4 लाख तक खर्च होते हैं, जबकि अमेरिका में यह खर्च कम से कम रु0 16 लाख तक आता है। एक मामले में एक अमेरिकी दम्पत्ति ने किसी निजी ऐजन्सी के माध्यम से कुल 1,50,000 अमेरिकी डॉलर (लगभग रू० 60 लाख) में सरोगेट माँ के लिए करार किया जबकि आणंद के आकांक्षा फर्टीलिटी क्लीनिक के माध्यम से सम्पर्क की गई भारतीय सरोगेट माँ को उन्हें मात्र 10,000 डॉलर (रू० 4 लाख) देने पड़े।

उन्नत स्वास्थ्य सुविधाएं - इस सन्दर्भ में जो एक बात भारत को तीसरी दुनिया के बाकी देशों से अलग करती है वह है यहाँ अन्य देशों के मुकाबले स्वास्थ्य तथा देखभाल की बेहतर सुविधाएं। इन सुविधाओं में भारत विकसित देशों को टक्कर दे रहा है। यहाँ न केवल उच्च प्रशिक्षित तथा अंग्रेजी बोलने वाले डॉक्टर हैं बल्कि 'अतिथि देवो भव' तथा 'मानव सेवा ही धर्म है' का भाव लिए हुए देखभाल में तत्पर नर्सिंग स्टाफ। साथ ही अत्याधुनिक तकनीकी तथा उपकरणों से सुसज्जित आई० वी० एफ० क्लीनिक यहाँ स्थापित हैं।

मानव संसाधन की अधिकता तथा निर्धनता - विश्व की दूसरी सबसे बड़ी जनसंख्या वाला देश होने के कारण भारत मानव-संसाधन की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध राष्ट्र है। इस जनसंख्या का अधिकांश भाग युवा है। स्वाभाविक रूप से प्रजनन की दृष्टि से स्वस्थ स्त्रियाँ यहाँ उपलब्ध हैं। स्थापित तथ्य यह भी है कि भारतीय जनता का एक बड़ा वर्ग निर्धनता से जूझ रहा है जिससे मुक्ति का कोई उपाय मिलते ही सब उसी ओर भागते हैं। आश्चर्य नहीं कि सरोगेट माँ बनने के लिए तत्पर स्त्रियों का एक बड़ा समूह उस निम्न मध्य वर्ग से जुड़ा है जिसका अधिकांश वक्त दो जून की रोटी के लिए संघर्ष करते बीतता है।

1. **तेजी से अमीर बनने की आकांक्षा** - भारत में सरोगेसी प्रथा के इस तीव्र फैलाव के पीछे एक अन्य बड़ा कारण आर्थिक बेहाली से जूझते भारतीयों में जल्दी से जल्दी ज्यादा से ज्यादा धन कमाने की मानसिकता का भी फैलना है। मात्र एक सरोगेसी प्रक्रिया में निम्न मध्यम वर्गीय परिवार को उतना धन प्राप्त हो जाता है जो कि सामान्य रूप से उनकी 5-10 वर्षो की कुल आय के बराबर होता है।
2. **भावात्मक कारण** - कई प्रवासी भारतीय अपने बच्चों की चाह भारतीय सरोगेट माँ के माध्यम से ही पूरा करना चाहते हैं। भारतीय आध्यात्मिकता तथा संस्कृति से प्रभावित अनेक विदेशी दम्पत्ति भी भारतीय सरोगेट माँ की कामना करते हैं। भारतीय स्त्रियाँ यद्यपि अपनी निर्धनता और पारिवारिक-सामाजिक मजबूरियों के कारण कोख किराए पर देने की कीमत अवश्य लेती हैं परन्तु किसी सूनी गोद को किलकारी से भरने का आत्मिक सुकून भी उन्हें अनुभव होता है। खुशियों से दूसरों का आँचल भरने की यह सन्तुष्टि भरी भावना भारतीयों में ही होती है। भारत में मातृत्व को पूर्णता तथा बांझपन को अभिशाप के रूप में देखा जाता रहा है। अत: दूसरों को मातृत्व सुख प्रदान करना एक स्त्री को प्रसन्नता और सन्तोष से भर देता है। 9 माह अपने गर्भ में रखने वाली माँ की मन:स्थिति को पूरी तरह से प्रभावित कर बच्चे के आने वाले जीवन की रूपरेखा तैयार होती है। यहाँ तक कि कुछ हिन्दू दम्पत्ति सरोगेट माँओं को गीता का पाठ करने को कहते हैं, जिससे बच्चे पर अच्छा असर पड़े।

कुल मिलाकर बाजार का प्रमुख नियम इस व्यवस्था पर भी लागू होता है जिसके अनुसार उत्पादक और उपभोक्ता - दोनों पक्षों को अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होने पर सौदा

सम्पन्न हो जाता है। यहाँ उत्पादक (सरोगेट माँ) को अपेक्षाकृत अधिक कीमत सुविधाजनक तरीके से प्राप्त होती है और उपभोक्ता (सन्तानेच्छुक दम्पत्ति) को वस्तु अन्य स्थानों की तुलना में अपेक्षाकृत कम कीमत पर, सुविधाजनक तरीके से और कम से कम कानूनी अड़चनों के साथ प्राप्त हो रही है।

यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि सरोगेसी जैसा संवेदनशील मुद्दा भारतीय समाज में कैसे स्वीकार्य हो रहा है। क्या इससे जुड़े नैतिकता जैसे मुद्दे भारतीय पारम्परिक समाज को प्रभावित नहीं कर रहे हैं ? कहा जाता है कि माँ बनना पुनर्जन्म लेना है, तो क्या कारण है कि स्वयं स्त्री भी अपने जीवन का जोखिम लेने को तैयार हो जाती है!

सरोगेसी से जुड़े मामलों से ज्ञात होता है कि पहले पहल सरोगेसी को उन्हीं स्त्रियों ने स्वीकार किया जो भयंकर गरीबी अथवा आर्थिक दबाव झेल रही थीं। यह स्थिति बच्चे की असाध्य बीमारी, पति की शारीरिक-मानसिक विकलांगता के कारण उत्पन्न हुई धन की आवश्यकता अथवा अत्यधिक निर्धनता और कुपोषण से मुक्त होने की इच्छा इत्यादि के फलस्वरूप हो सकती थी। परन्तु बाद में उन्हीं स्त्रियों ने जीवन स्तर सुधारने के लिए सरोगेसी को स्वीकार किया। झुग्गी-झोंपड़ी से मुक्त होने, घर बनाने, बच्चों को शिक्षित करने, बेटियों की अच्छी शादी के लिए दहेज इकट्ठा करने, पति के लिए ऑटोरिक्शा जैसे रोजगार के स्थायी संसाधन जुटाने अथवा उसके किसी अन्य व्यवसाय में निवेश करने जैसे मुद्दे सरोगेसी स्वीकारने का कारण बनने लगे। कई मामलों में बेहतर जीवन की चाह में पतियों ने भी उन्हें यह स्वीकारने के लिए बाध्य किया। कुल मिलाकर गरीबी से मुक्ति पाने तथा बेहतर जीवन जीने का यह सर्वोत्तम तरीका उन्हें लगा। आर्थिक उन्नयन के बाद परिवार का सामाजिक उन्नयन स्वाभाविक रूप से होने लगता है और परिवारजन तथा रिश्तेदार भी अन्ततः इसे स्वीकार कर लेते हैं। डॉक्टरों द्वारा की जाने वाली सरोगेसी की वैज्ञानिक व्याख्या से नैतिकता सम्बन्धी प्रश्न भी पृष्ठभूमि में चले गए हैं। हाँ, व्यापक रूप से भारतीय समाज अभी भी इसे स्वीकार नहीं कर पाया है जिससे सामाजिक बहिष्कार के भय से पति-पत्नी इस प्रक्रिया को गोपनीय रखते हैं। कुछ मामलों में इस माध्यम से प्राप्त पैसा खत्म हो जाने के बाद पति और परिवार की भावनाएं स्त्री के प्रति बदल जाती हैं और नैतिकता के प्रेत पुनः सिर उठाने लगते हैं।

सरोगेसी व्यवस्था की समीक्षा

किसी स्त्री के माँ बनने के स्वाभाविक अधिकार की रक्षा करने वाली इस व्यवस्था से निःसन्देह स्त्रियों में आर्थिक आत्मनिर्भरता का उदय हुआ है और आत्मनिर्भरता किसी भी स्त्री के जीवन में बड़े परिवर्तन लाने वाली होती है। कुछ आर्ट क्लीनिक यह ध्यान रखते हैं कि इसके माध्यम से प्राप्त पैसा स्वयं स्त्री ही खर्च करे। निस्संदेह यह उनके आत्मानुभव का क्षण होता है क्योंकि उन्हें स्वयं के मूल्य का भान होता है। कहा जा सकता है कि यह उन स्त्रियों के लिए सशक्तीकरण का पहला स्वाद सिद्ध होता है।

किन्तु उच्चाकांक्षा के रथ पर सवार कुछ स्त्रियों ने जब मात्र धन कमाने के लिए सरोगेसी को स्वीकार किया तो यह उनके पारिवारिक जीवन के बिखराव का कारण भी बना। असीमित वैज्ञानिक विकास का प्रतीक कही जा सकने वाली सरोगेसी व्यवस्था अपने उद्‌भव एवं विकास के साथ ही वाद-विवादों का केन्द्र-बिन्दु भी बन गई। विशेषकर भारत जैसे भाव, परिवार तथा परम्परा-प्रधान देश में यह व्यवस्था सहजतया स्वीकार्य नहीं हो सकती थी। अस्वीकार और विरोध के ये बिन्दु प्रमुखतया इन मुद्दों पर केन्द्रित थे-

1. **अप्राकृतिक तथा अनैतिक कृत्य**- एक प्रकार से सरोगेसी अप्राकृतिक व्यवहार की हद है। मात्र इसलिए कि विज्ञान से यह संभव है, कुछ भी व्यवहार्य नहीं हो सकता। मात्र इसलिए कि तकनीक उपलब्ध है हमें भगवान नहीं हो जाना चाहिए। भारतीय परिवेश में तो सरोगेसी पूर्णतया परम्परा-विरोधी प्रथा है और धन के जुड़ाव से यदि सरोगेसी के पक्ष में कोई स्वीकार्यता बनती भी है तो यह स्वीकार्यता सतही और अल्पकालीन होती है, विरोध की अन्तर्धारा ही प्रवाहमान रहती है। इसी प्रकार इस प्रथा को अनैतिक मानने वालों का तर्क है कि विश्व के अनाथालय बच्चों से अटे पड़े हैं। अनेक बच्चे तो इतने भी सौभाग्यशाली नहीं हैं कि वहाँ तक जा सकें। माना कि सरोगेट माँओं को पैसे की जरूरत होती है परन्तु अनाथ बच्चों को भी बेहतर घर की जरूरत होती है। जब तक संसार के समस्त अवांछित और अनाथ बच्चे गोद न ले लिए जाएं, यह पद्‌धति अनैतिक रहेगी।
2. **भावनात्मक मुद्दे** - एक शिशु को गर्भ में धारण करना और तत्पश्चात् उसे जन्म देना स्वयं में अद्‌भुत तथा असाधारण प्रक्रिया है। शिशु के गर्भ में आते ही मातृत्व हिलोरें लेने लगता है और उसके लिए स्नेहिल भावनाएं उत्पन्न करने वाले हारमोन बनने लगते हैं। तब 9 माह बाद बच्चे को स्वयं से दूर करना अत्यन्त कष्टदायक होता है। अपने गर्भनाल से जुड़े उस शिशु के साथ हर पल हर क्षण साथ रहने, बोलने, बतियाने सुख-दुख बाँटते रहने और अपने खून से सींचकर पोषित करने के बाद एक दिन अचानक यदि कोई कहे - "धन्यवाद आपका काम हो गया, अब यह मेरा है।" तो निस्संदेह यह स्त्रीत्व का अपमान है। राष्ट्रीय स्तर पर भी एक भावनात्मक मुद्दा है कि विदेशी अधिकतर भारतीय माँएं ही क्यों चाहते हैं? क्या इसके पीछे मात्र भारतीय संस्कार हैं जो भारतीय माँएं प्रतिरोपित कर सकती हैं अथवा कुछ और ? कहीं यह भारतीय निर्धनता का उपहास तो नहीं? तीसरी दुनिया के शोषण का जरिया तो नहीं ?

सरोगेट स्त्री का शोषण - सरोगेसी प्रथा के विरोध का एक ठोस आधार यह है कि यह व्यवस्था सरोगेट स्त्री के शोषण का माध्यम बनती है। यह शोषण निम्न रूपों में हो सकता है-

- स्पष्ट कानूनी बन्धनों के अभाव में बिचौलिए निर्धन, जरूरतमंद किन्तु अशिक्षित स्त्रियों को लालच के जाल में फंसाकर उनका शोषण करते हैं। चूँकि स्त्री कमजोर मोलभावी क्षमता रखती है अतः उसका शोषण और भी आसान हो जाता है।

- 9 मास तक गर्भ में बच्चे को अनुभव करने और जन्म देने की प्रक्रिया में उससे हो गए जुड़ाव को एकदम दूर कर उसे किसी अन्य को सौंप देना निस्संदेह मातृत्व का मखौल उड़ाना है।
- प्रश्न यह भी उठता है कि क्या एक बच्चे को अपने गर्भ में पालना उसकी इच्छा करने की तुलना में कमतर कार्य है? ऐसे में क्या सरोगेट माँ का इस्तेमाल प्राकृतिक इन्क्यूबेटर (Natural Incubator) अथवा बच्चा उत्पन्न करने वाली मशीन (Baby Producing Machine) के रूप में तो नहीं हो रहा है?
- ब्रिटेन तथा अमेरिका में सरोगेट माँ की भावनाओं को पूरा सम्मान देने के लिए उसे बच्चे पर अधिकार दर्ज करने का मौका दिया जाता है। ब्रिटेन में सरोगेट माँ बच्चे के पहले दो सालों में कभी-भी उस पर दावा कर सकती है। दूसरी ओर भारत में बच्चों को जन्म देने के बाद सरोगेट माँ का उस पर कोई अधिकार नहीं होता।
- परिवार का जीवन-स्तर सुधारने तथा कम समय में अधिक से अधिक पैसा कमाने की भौतिकवादी मानसिकता रखने वाले पति तथा परिवारजन भावनात्मक ब्लैकमेलिंग के द्वारा स्त्री को इस कार्य में भागीदार बनने के लिए बाध्य करते हैं। थोड़े समय के लिए नैतिकता के प्रश्न ताक पर रख देते हैं और यह सब कुछ स्त्री की जान को जोखिम में डालकर किया जाता है। पैसा समाप्त होने के बाद पुन: नैतिकता-अनैतिकता के प्रश्नों से एक स्त्री को असह्य दबाव झेलना पड़ता है।
- पारिवारिक सामाजिक छींटाकशी का तनाव स्त्री को ही झेलना पड़ता है।
- सरोगेसी व्यवस्था के माध्यम से पैसा प्राप्त होने पर प्राय: पति उस पर अधिकार कर लेते हैं, और उसे अपने ऐशो-आराम के लिए इस्तेमाल करते हैं। स्वयं स्त्री को उस धन का कोई सुख प्राप्त नहीं होता।
- कई बार तो एड्स आदि के मरीज अपने युग्मक (Gamete) देकर सरोगेसी अपनाते हैं जो सरोगेट माँ के लिए अत्यन्त घातक हो सकता है।
- यदि किसी कानूनी समझौते के अभाव में बिना कोई अग्रिम धन दिए ही सन्तानेच्छुक दम्पत्ति पीछे हट जाएं तो निर्धन सरोगेट माँ का क्या होगा? वह गर्भावस्था के दौरान तथा बच्चे को जन्म देने के बाद उसके पालन-पोषण पर आने वाला खर्च कैसे उठाएगी?
- कभी-कभी उर्वर दम्पत्ति भी सहूलियत के बल पर सरोगेसी का विकल्प अपनाने लगे हैं। चौंकानेवाला तथ्य उभर कर आया है कि महानगरों की उच्चाकांक्षी कामकाजी महिलाएं मातृत्व को अपने कैरियर में बाधा समझकर सरोगेट माँओं को किराए पर ले रही हैं। अर्थात् वे माँ तो बनना चाह रही हैं किन्तु अपने कैरियर से समझौता किए बिना। इस तथ्य की द्विपक्षीय स्पष्ट व्याख्या हो सकती है। एक तो यह कि इस उपभोक्तावादी दौर में सब कुछ (यहाँ तक की माँ की कोख भी) खरीदे जा सकने की मानसिकता जोर पकड़ रही है। प्रकारान्तर से यह निर्धन, जरूरतमंद स्त्रियों का शोषण है। दूसरे यह कि, स्वयं स्त्रियाँ

भी अब माँ बनने की चुनौतियों से पीछे हट रही हैं। क्या यह घर-बाहर की दोहरी जिम्मेदारी उठाने के कारण दरक रहे अपने अस्तित्व को पुन: सहेजने का प्रयास कहा जाए? लेकिन इस प्रक्रिया में एक दूसरी स्त्री के अधिकार तो आहत नहीं हो रहे, यह भी ध्यान में रखना होगा।

निस्संदेह किसी भी देश के लिए यह गौरव की बात नहीं होगी कि अनुपयुक्त स्वास्थ्य सुविधाओं और कुपोषण से जूझती स्त्रियां मात्र अपने बच्चों के पालन-पोषण की चिंता में थोड़े से धन के लिए बार-बार प्रसव-पीड़ा से गुजरने के लिए तैयार हों।

बच्चे का शोषण - बहुत बार सरोगेसी व्यवस्था के माध्यम से उत्पन्न बच्चे शोषण का भी जरिया बन जाते हैं। उदाहरणार्थ -

- चूँकि सरोगेसी में धन का लेन-देन अकेला बड़ा मुद्दा है तो यह भी संभव है कि सरोगेट माँ उस शिशु को अपने गर्भ में उस शिद्दत और भावातिरेक के साथ न पाले जैसा 'अपने' शिशु को पालती है। निस्संदेह 'माँ' की यह मन:स्थिति शिशु के भावी जीवन को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकती है।
- नवजात को माँ के पोषक दूध से वंचित करना उसके प्राथमिक अधिकार का हनन है जो कि नवजात के असंतुलित शारीरिक-मानसिक विकास का कारण बन सकता है।
- यदि बच्चा किसी गम्भीर बीमारी से ग्रस्त हो, विकलांग हो अथवा बदसूरत और सन्तानेच्छुक दम्पत्ति के इच्छानुसार लिंग का न हो तो ऐसी स्थिति में यदि वे उस बच्चे को न लेना चाहें और यदि सरोगेट माँ भी उसे स्वीकार न करे तो बच्चे के क्या अधिकार होंगे ? शिशु की राष्ट्रीयता का प्रश्न भी उभर कर आ सकता है क्योंकि अनेक मामलों में सन्तानेच्छुक दम्पत्ति भारत से बाहर के होते हैं।
- चूँकि किसी शिशु के पास माता-पिता के चयन का अधिकार नहीं होता है, अत: उसका भावी अस्तित्व दुधारी तलवार की भाँति हो सकता है।
- बड़े होने पर इस अपारम्परिक व्यवस्था से उत्पन्न बच्चे की मानसिकता क्या होगी?
- यदि सरोगेसी प्रसंग के बाद दम्पत्ति का स्वयं का बच्चा हो जाता है तो सरोगेसी प्रक्रिया से उत्पन्न बच्चे के प्रति उनका व्यवहार कैसा होगा?
- विशेषज्ञों की एक धारणा यह भी है कि चूँकि सेरोगेसी के माध्यम से उत्पन्न हुए बच्चे से अधिकारी माता-पिता का भावनात्मक लगाव ज्यादा नहीं होता, अत: ऐसे बच्चों का प्रयोग आतंककारी गतिविधियों, मानव देह व्यापार तथा अनैतिक जेनेटिक इन्जीनियरिंग से जुड़े अनुसंधानों इत्यादि में भी किया जा सकता है। पूर्व योजना से भी इन उद्देश्यों के लिए सरोगेसी व्यवस्था को चुना जा सकता है।

- कभी-कभी 60 वर्ष व इससे अधिक के स्त्री-पुरुष इस माध्यम से माता-पिता बन जाते हैं, बिना यह सोचे कि उनके बाद उस बच्चे का भविष्य क्या होगा ? ऐसी स्थिति में बच्चे के हित सर्वोपरि नहीं रह पाते।

कानून तथा राष्ट्रीयता से जुड़े मुद्दे

क्योंकि भारत में सरोगेसी धन से जुड़ा हुआ मुद्दा है अत: स्वाभाविक रूप से अनेकों कानूनी समस्याएं स्वत: उत्पन्न हो जाती हैं। सामान्य रूप से प्रत्येक देश और काल के सन्दर्भ में जो कानूनी मुद्दे उभरते हैं वे हैं-

- वास्तविक माँ किसे माना जाए- सर्वप्रथम बच्चे की इच्छा करने वाली स्त्री को, जैसाकि भारत में माना जाता है, अथवा जन्म देने वाली अर्थात् सरोगेट माँ को, जैसाकि कुछ अन्य देशों में माना जाता है ?
- गर्भपात इत्यादि के मामले में निर्णय क्या हो ?
- क्या हो, यदि बच्चे को जन्म देते समय स्त्री की मृत्यु हो जाए और उसके स्वयं के 1-2 बच्चे हों ?

कुछ मुद्दे विशेष रूप से भारतीय परिस्थितियों की उपज हैं। इटली, स्पेन, चीन आदि अनेक देशों में सरोगेसी व्यवस्था कड़ाई से प्रतिबन्धित है, जबकि अमेरिका, फ्रांस और जर्मनी जैसे कुछ अन्य देशों में यह कड़े कानूनों के द्वारा नियंत्रित है। इसके विपरीत भारत में इस जटिल और पेचीदा प्रक्रिया को अत्यन्त हल्के रूप में लिया गया है। सन् 2002 से वैध घोषित हो चुके इस सेक्टर के संचालन और नियमन के लिए अभी तक कोई कानून नहीं बनाया गया है। इंडियन काउंसिल फॉर मेडिकल रिसर्च की देख-रेख में इन आर्ट क्लीनिक्स के लिए बनाए गए दिशा-निर्देशों के आधार पर इस व्यवस्था को मान्यता, पर्यवेक्षण तथा नियमन की अपेक्षा की जाती रही है, परन्तु आमतौर पर इन क्लीनिक्स द्वारा इन दिशा-निर्देशों की अवहेलना की जाती रही है। फिर, ये दिशा-निर्देश भी प्रत्येक स्थिति को व्याख्यायित करने में स्वयं में पूर्ण नहीं हैं। भारत तथा दूसरे देशों के कानूनों में समरूपता और सामंजस्य के अभाव तथा कतिपय आकस्मिकताओं से भी पेंचीदगियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

गत वर्ष एक ब्रिटिश दम्पत्ति (क्रिस तथा सुसान मॉरिसन) को भारतीय सरोगेट माँ से जन्मे जुड़वाँ बच्चों के जन्म के बाद उनकी राष्ट्रीयता को लेकर भारत में 3 माह तक कानूनी लड़ाइयों में उलझना पड़ा क्योंकि भारतीय कानून जहाँ उन्हें उनके जुड़वां बच्चों का अभिभावक स्वीकार करता है, वहीं ब्रिटिश प्राधिकरण ने सरोगेट माँ को उनका कानूनी अभिभावक स्वीकार किया। इसी प्रकार निहोन (जापानी) के एक दम्पत्ति ने भारतीय सरोगेट से अनुबन्ध किया, परन्तु बच्चे के जन्म के पूर्व ही उन दोनों में तलाक हो गया। चूँकि भारतीय कानून अकेले पुरुष को बालिका-शिशु की कस्टडी की अनुमति नहीं देता, अत: मांझी नामक उस बच्ची को घर ले जाने के लिए उसके पिता तथा दादी को कई महीने तक न्यायालयों के चक्कर काटने पड़े। एक इस्राइली 'गे' व्यक्ति ने सरोगेट माँ से उत्पन्न जुड़वां बच्चों को गोद लिया परन्तु एक लम्बे समय तक उन बच्चों को इस्राइली नागरिकता नहीं मिल सकी।

हाल ही के एक मामले के अनुसार तो एक फ्रांसीसी दम्पत्ति अपने बच्चे को खोने के कगार पर है क्योंकि फ्रांस में सरोगेसी कानूनी तौर पर स्वीकार्य नहीं है।

राष्ट्रीयता इत्यादि के मुद्दे तब और भी जटिल हो जाते हैं जब भारतीय सरोगेट से संतान की इच्छा करने वाला व्यक्ति (स्त्री या पुरुष) एक देश का और अंडाणु अथवा शुक्राणुदाता (स्त्री या पुरुष) किसी दूसरे देश का होता है। इस प्रकार के एक उदाहरण में पूर्वी यूरोप का एक व्यक्ति कानूनों के जाल में उलझ कर रह गया।

कानून और नैतिकता को नए सिरे से परिभाषित करने की आवश्यकता अनुभूत कराने वाला एक असामान्य मामला जुलाई, 2010 में सामने आया जब नार्वे की एक स्त्री ऐसे जुड़वाँ बच्चों को लेकर घर लौटने का प्रयास कर रही थी जो जैविक रूप से उससे कोई सम्बन्ध नहीं रखते थे (शुक्राणुदाता स्कैन्डिनेविया से, अंडाणुदाता भारत से तथा सरोगेट माँ भारतीय)। परन्तु वर्तमान में यूरोपीय दूतावासों द्वारा अनिवार्य कर दिए गए डी.एन.ए. टेस्ट से बच्चों से उस स्त्री का असम्बन्ध सिद्ध होने पर उसके साथ-साथ सरोगेसी प्रक्रिया पर भी प्रश्नचिहन लग गए। चूँकि भारत में शिशु-जन्म प्रमाणपत्र पर अभिभावक के तौर पर सरोगेट माँ के स्थान पर शिशु की इच्छा करने वाले का नाम होता है, अत: उन बच्चों को गोद ले पाने की प्रक्रिया भी आसान नहीं है। एक नैतिक प्रश्न यह भी है कि उस स्त्री ने सरोगेसी को अपनाया ही क्यों जबकि वह किसी बच्चे को गोद ले सकती थी।

इन सब जटिलताओं, विवादों और तथ्यों को ध्यान में रखते हुए भारत में सरोगेसी उद्योग के नियमन के लिए कानून की तीव्र आवश्यकता अनुभव की जा रही है। 2009 ई0 में राष्ट्रीय विधि आयोग ने रु0 25,000 करोड़ के इस 'स्वर्णपात्र' के नियमन के लिए कानून की माँग की है। उसके अनुसार सरोगेसी से पूर्व और पश्चात् के सभी पहलुओं को कानून के दायरे में लाकर सरोगेट माँ, संतान तथा अभिभावक दम्पत्ति के हितों की रक्षा हो। विधि आयोग के अनुसार इस प्रक्रिया के व्यवसायीकरण पर अंकुश लगाने के लिए इसे व्यापक कानून के दायरे में लाते हुए डोनर (किराये पर गर्भ देने वाली अथवा शुक्राणुदाता) के जरिये संतानोत्पत्ति के लिए भावी माता-पिता में से एक की लिखित सहमति अनिवार्य बनाई जाए जिससे बाद में बच्चे को सुरक्षा मिल सके। सुप्रीम कोर्ट द्वारा भी इस सम्बन्ध में शीघ्र कानून बनाने का निर्देश सरकार को दिया गया है।

इस पृष्ठभूमि में सरकार संसद के आगामी सत्र में सरोगेट मातृत्व तथा स्पर्म बैंक के नियमन के लिए Assisted Reproducting Technologies (Regulating) Bill & 2010 नामक बिल प्रस्तुत करने जा रही है। उम्मीद है कि इससे भारत का सामाजिक परिदृश्य नए सिरे से परिभाषित किया जा सकेगा।

बहस के लिए प्रस्तुत बिल के प्रस्तावित ड्राफ्ट में निम्न बिन्दु महत्त्वपूर्ण हैं-

- 21-35 वर्ष की सभी भारतीय महिलाएं सरोगेट माँ बन सकती हैं, किन्तु अपने स्वयं के बच्चों सहित अधिकतम 5 बार गर्भधारण कर सकती हैं।

- धारा 34(3) के अनुसार सरोगेट माँ को समस्त निहित खर्च के अतिरिक्त सन्तानेच्छुक माता-पिता से आर्थिक क्षतिपूर्ति का अधिकार होगा।
- सरोगेट माँ को बच्चे के जन्म के बाद अपने समस्त अधिकार सन्तानेच्छुक माता-पिता के पक्ष में छोड़ने होंगे। बाद में सरोगेट माँ तथा बच्चे में किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं होगा।
- बिल के अनुसार अकेले और अविवाहित भारतीय तथा विदेशी स्त्री-पुरुष (यहाँ तक कि गे और लेस्बियन भी) भारतीय सरोगेट माँओं की सहायता से बच्चे पा सकते हैं।
- विगत कुछ समय से सामने आई कानूनी पेचीदगियों को दूर करने के लिए विदेशियों को सरोगेसी प्रक्रिया प्रारम्भ करने से पूर्व अपने दूतावासों से सरोगेसी से सम्बन्धित अनापत्ति प्रमाणपत्र लाना होगा, ताकि बाद में सरोगेट माँओं से उत्पन्न बच्चे वीजा और उन-उन देशों की नागरिकता प्राप्त करने के अधिकारी स्वत: हो सकें।
- इसी प्रकार आर्ट क्लीनिक्स को सरोगेट माँओं की खोज, आपूर्ति और देखभाल इत्यादि से दूर रहकर मात्र आई० वी० एफ० पर ध्यान केन्द्रित करना होगा। इससे भ्रष्टाचार की प्रक्रियाओं पर अंकुश लग सकेगा।

जैसा कि अपेक्षित था, प्रस्तावित बिल के ड्राफ्ट से भारत में बहसों की एक लम्बी श्रृंखला छिड़ गयी है। चर्च सहित अनेकों संस्थाएं इसे भारतीय परिवार-व्यवस्था तथा विवाह-संस्था का उपहास घोषित कर रही हैं। भारत के मूल्य आधारित सामाजिक-पारिवारिक ढाँचे में तीव्र परिवर्तन का सूत्रपात तो इससे अवश्य होगा।

भारत में सरोगेसी व्यवस्था का मूल्यांकन करते हुए कहा जा सकता है कि नवीनतम अधुनातन प्रजनन तकनीकी की सहायता से निस्सन्तान दम्पत्तियों के लिये 'अपने बच्चे' की कल्पना अवश्य साकार हो रही है, परन्तु इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में किसी भी पक्ष के अधिकारों का हनन न हो, यह ध्यान रखा जाना अत्यन्त आवश्यक है। चूँकि सरोगेसी एक अत्यन्त जटिल और उलझी हुई प्रक्रिया है, अत: कानून को इस मुद्दे पर मौन नहीं रहना चाहिए। यदि प्रजनन संवैधानिक हक है तो सरोगेसी से संतान सुख पाने वाले दम्पति को भी कानूनी कवच मिलना चाहिए किन्तु साथ ही सरोगेसी की अनुमति अपरिहार्य परिस्थितियों में ही दी जानी चाहिए। भारत जैसे देश में जहाँ मानवीय अंगों से लेकर पूरे का पूरा मनुष्य क्रय-विक्रय की वस्तु बन जाता है, वहाँ कोख को किराए पर देने की यह प्रक्रिया रोजमर्रा की वस्तु न हो जाए।

उपर्युक्त सभी के सम्बन्ध में भले ही कितने ही पारदर्शितापूर्ण नियम व कानून क्यों न बन जायें, लेकिन व्यक्तिगत स्वार्थ और त्वरित अनैतिक लाभ किसी भी मनुष्य को इन नियमों और अधिनियमों को तोड़ने के लिए प्रेरित करते हैं।

एक स्त्री-पुरुष अथवा किसी व्यक्ति के हितों से भी कहीं अधिक महत्व उस अजन्मे शिशु तथा नवजात के अधिकारों का होता है, अत: आवश्यकता इस तथ्य की है कि इन नियमों-अधिनियमों को लागू करने के साथ-साथ एक स्वतन्त्र मॉनीटरिंग बॉडी का गठन किया

जाए जो सरोगेसी व्यवस्था में निहित व्यक्तियों, संस्थाओं तथा जन्मे-अजन्मे शिशुओं के अधिकारों के प्रति निष्पक्ष पारदर्शिता से कार्य करने के लिए दृढ़संकल्प हों, तभी सही मायनों में मानव-अधिकारों की रक्षा की संकल्पना पूर्ण होगी।

संदर्भ

1. The week, June 13, 2010
2. Treatmentabroad.comèmedical. tourismènew. June 24, 2010
3. Hindustan Times, 26.06.2010
4. Time of India, July21, 2010
5. The Hindu, July 26, 2010
6. Guardion.co.uk, Friday July 30, 2010
7. upi.comèhealth_newsè2010è07è31
8. Daily Telegraph, August 9, 2010
9. The Newyork Times, August 27, 2010.
10. Times of India, Ahmadabad, August 29, 2010.
11. NDTV, Sept. 13, 2010
12. Landon Evening Standardè Standar.co.uk
13. Cathnewsindia.comè2010è06è25berela_church
14. Surrogacy Arrangement -Comparative Dimensions and prospective Analysis of the law in India by Ashish Chug & Satripa Chakravarti.
15. आउटलुक, साप्ताहिक, 5 फरवरी, 2010
16. इंडिया टुडे, 7 जुलाई 2010
17. राजस्थान पत्रिका, 19 जुलाई 2009
18. इंडिया टुडे, 15 अगस्त 2007
19. राजस्थान पत्रिका, परिवार, 5 सितम्बर 2007
20. प्राचीन भारत का इतिहास वी० सी० पाण्डे।

* * *

स्त्रियों और बच्चों का हित संरक्षण और मानवाधिकार

• *राजेश प्रताप सिंह*

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' के रूप में नारी को सम्मान देने की यह परिकल्पना अब धुँधली पड़ गई है। भारत में स्त्रियों का अतीत बेहद गौरवशाली रहा है। इतिहास के पृष्ठों पर उनके तेजस्वी और व्यक्तित्व की अनेक दास्तानें दर्ज हैं। मगर भारतीय स्त्री का मार्ग बहुत सरल और सहज भी नहीं रहा। महिलाएँ अपनी राह के अनेक अवरोधों और संकटों, का सामना करती हुई वह आगे बढ़ी हैं। सदियों से रूढ़ियों, कुप्रथाओं और शोषण के शिंकजे में कसी हुई स्त्री जाति के अपने ही दु:ख दर्द हैं, तकलीफें हैं। उनके जीवन में आनेवाली कठिनाइयाँ और समस्याएं बहुआयामी हैं।

यदि हम इतिहास के झरोखे से देखें तो हम यह सहजता से अनुमान लगा सकते हैं कि वैदिक काल में स्त्रियों को समाज में ज्यादा समानता व हैसियत का दर्जा प्राप्त था। समाज के प्रत्येक क्रियाकलाप में उनकी सक्रिय भागीदारी थी। गार्गी, मैत्रेयी आदि विदुषियों को समाज में अपेक्षित सम्मान प्राप्त था। स्मृतियों के समय (मनुस्मृति) से स्त्रियों की सामाजिक दशा में पतन शुरू हुआ और मुगलकाल तक आते-आते महिलाएँ पर्दा प्रथा, सती प्रथा, बाल विवाह आदि अनेक कुरीतियों में जकड़ दी गईं।

संपूर्ण विश्व में स्त्रियों की दशा लगभग ऐसी ही रही है। प्राचीन एथेन्स में स्त्रियाँ हमेशा अवयस्क की तरह मानी जाती थीं और उन्हें पिता, पति या भाई के संरक्षण में रखा जाता था। प्राचीन रोम में भी परिवार के समस्त कार्य पुरुषों द्वारा ही किए जाते थे तथा उसके बाद ही परिवार के किसी अन्य को सम्पत्ति में कोई अधिकार मिलता था। इस्लाम में विवाह को एक सामाजिक प्रक्रिया के बजाय एक संविदा माना जाता है। उल्लेखनीय है कि मुस्लिम समाज में शादी के समय स्त्रियों को कई अधिकार ऐसे दिये गये, जो सामान्य जीवन में अकल्पनीय हैं, विशेष रूप से मेहर प्रथा आदि।

12वीं शताब्दी में सामान्य ब्रिटिश कानून के अनुसार शादी के समय स्त्री के पास जो भी सम्पत्ति होती थी। शादी के बाद उस पर पति का अधिकार हो जाता था। फ्रांस में भी कमोबेश यही स्थिति थी। यद्यपि 16वीं शताब्दी में महिलाओं को कुछ अधिकार दिए गये, परन्तु वास्तव में इन्हें

• *पुलिस महानिरीक्षक, इलाहाबाद परिक्षेत्र (उत्तर प्रदेश)*

सही ढंग से अधिकार देने की बात 18 वीं शताब्दी के बाद शुरू हुई। हालांकि उस समय भी ऐसे बहुत से लोग थे, जो मानते थे कि समानता का नियम केवल पुरुषों के लिये है। रूसो ने एक जगह लिखा है "औरतें यदि पुरुष निर्मित कानून में असमानता की बुराई या विरोध करती हैं तो यह गलत है"। ब्रिटेन में औरतों को वोट देने का अधिकार 1918 में मिला और अमेरिका में 1920 में तथा स्विटजरलैंड में यह अधिकार 1971 में मिला। भारतवर्ष में यद्यपि ब्रिटिशकाल में कई सामाजिक अधिनियम जैसे सती प्रथा, विधवा विवाह, बाल विवाह आदि अधिनियम पारित किये गये, परन्तु स्त्रियों के अधिकारों के बारे में ठोस शुरुआत आजादी के बाद संविधान लागू होने से ही प्रारम्भ हुई।

भारत में स्त्रियों के अधिकारों को निम्नलिखित तीन स्तरों - संवैधानिक अधिकार, कानूनी अधिकार, अन्य अधिकार के रूप में वर्गीकृत करके स्त्रियों के सम्मान को बचाने की कोशिश हुई:

(1) संवैधानिक अधिकार

संवैधानिक अधिकार वे अधिकार हैं, जो भारतीय संविधान के अन्तर्गत महिलाओं को प्रदत्त हैं। उनमें से मुख्य निम्न हैं :-

अनुच्छेद 14- (विधि के समक्ष समता) - राज्य, भारत के राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।

अनुच्छेद 16(1)- (लोक नियोजन के विषय में अवसर की समानता) राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से सम्बन्धित विषयों में सभी नागरिकों के लिये अवसर की समता होगी।

अनुच्छेद 16(2)- राज्य के अधीन किसी नियोजन या पद के सम्बन्ध में केवल पंथ, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्‌भव, जन्म स्थान, निवास या इनमें से किसी भी आधार पर न तो कोई नागरिक अपात्र होगा और न उसे विभेद किया जायेगा।

अनुच्छेद 15- किसी के प्रति पंथ, जाति व लिंग के आधार पर भेदभाव।

अनुच्छेद 15(3)- (पंथ, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध)- इस अनुच्छेद की कोई बात राज्यों को स्त्रियों और बालकों के लिये कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।

इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 39(ए) और (सी) सभी को कमाई का समान अवसर एवं समान कार्य पर समान वेतन के अधिकार देता है।

अनुच्छेद 42 (काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं का तथा प्रसूति सहायता का उपबंध)- राज्य काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिये और प्रसूति सहायता के लिये उपबन्ध करेगा।

(2) कानूनी अधिकार

जो सिविल एवं आपराधिक अधिकार हैं, जैसे- पैतृक सम्पत्ति में अधिकार, बिना महिला पुलिस के गिरफ्तार न करना, सूर्यास्त के बाद थाने पर न बुलाना, बलात्कार के मुकदमे में अलग सुनवाई आदि अनेक अधिकार महिलाओं को भारतीय दण्ड संहिता, दण्ड प्रक्रिया संहिता एवं आयात निर्यात (नियन्त्रण) अधिनियम में प्रदान किये गये हैं।

(3) अन्य अधिकार

अनेक सामाजिक नियम बनाये गये हैं, जिनमें स्त्रियों के लिए संरक्षण के विशेष अधिकार हैं, जैसे :-

(1) अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम-1956

(2) सती (निवारण) अधिनियम-1987

(3) दहेज प्रतिषेध अधिनियम-1961

(4) स्त्री अशिष्ट रूपण (प्रतिषेध) अधिनियम-1986

(5) घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम-2005

(6) बाल विवाह अवरोध अधिनियम-1929

(7) शिक्षा का अधिकार अधिनियम

(8) भ्रूण हत्या अधिनियम

1990 में संसद द्वारा राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन किया गया तथा 73 एवं 74वें संविधान संशोधन के द्वारा पंचायतों में महिलाओं को एक तिहाई आरक्षण 30 प्रतिशत का संरक्षण प्रदान किया गया है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग स्वंय स्त्रियों के अधिकारों के प्रति सतर्क है तथा उनके अधिकारों के हनन की जांच तथा अधिकारों के बारे में प्रचार-प्रसार में पूरे मनोयोग से कार्यरत हैं।

स्त्रियों के अधिकार के सम्बन्ध में वर्तमान समय में संयुक्त राष्ट्र ने काफी प्रयास किये हैं। वर्ष 1948 में संयुक्त राष्ट्र ने स्त्रियों के लिए एक आयोग की स्थापना की। यह आयोग पहले मानवाधिकार का एक भाग था, पर बाद में इसे आर्थिक एवं सामाजिक परिषद के अधीन कर दिया गया। वर्ष 1975 से संयुक्त राष्ट्र ने कई विश्व स्तरीय सम्मेलन इस विषय पर आयोजित किये, जिससे औरतों के अधिकारों को एक प्लेटफार्म मिला तथा विभिन्न संस्कृति वाले देशों की औरतों एवं उनकी समस्याओं को जानने का अवसर भी मिला।

पहला विश्व सम्मेलन मैक्सिको सिटी में 1975 में, दूसरा कोपेनहेगेन 1980, तीसरा नैरोबी 1985 और चौथा बीजिंग 1995 में हुआ। इसमें महिलाओं के सशक्तीकरण एवं स्त्री-पुरुष के बीच गैर बराबरी को मिटाने के लिए संकल्प लिए गए।

मानवाधिकार की सार्वभौमिक घोषणा में पुरुष एवं स्त्रियों के समान अधिकारों की बात की गई है। संयुक्त राष्ट्र की महासभा में 1979 में स्त्रियों के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभाव मिटाने के लिए भेदभाव नामक स्त्रियों के विरूद्ध समस्त प्रकार के भेदभाव की समाप्ति विषयक आम सहमति-1979 अंगीकार किया, जिसे विश्व के लगभग सभी देशों ने स्वीकार किया है। उल्लेखनीय है कि अमेरिका ने इस पर दस्तखत किये हैं, परन्तु अनुमोदित नहीं किया और सात संयुक्त राष्ट्र सदस्यों ने हस्ताक्षर भी नहीं किए हैं। इसमें भेदभाव की निम्न परिभाषा दी गई है:-

किसी भी प्रकार का भेदभाव, जो लिंग भेद के आधार पर कोई प्रतिबंधित या निषेध करते हैं तथा जो स्त्रियों के, चाहे वे शादीशुदा हो या न हों, के अधिकार के उपयोग या अभ्यास को निम्न क्षेत्रों में खत्म करते हैं :-

(1) पुरुषों एवं स्त्रियों की समानता।

(2) मानवाधिकार

(3) राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, सिविल या अन्य किसी क्षेत्र की मूल स्वतन्त्रता।

जिन देशों ने इसे अनुमोदित किया है, उनकी जिम्मेदारी है कि वे अपने देश के कानून में समानता लाएं और ऐसे सभी भेदभाव वाले कानून खत्म करें, जिनसे लिंग भेद होता हो। वे ऐसे न्यायाधिकरण और संस्थाएं स्थापित करे जो स्त्रियों को हर प्रकार के भेदभाव से सुरक्षा प्रदान करें। हर प्रकार के भेदभाव को खत्म करें, चाहे वह व्यक्ति, समाज या किसी संस्था द्वारा किये जा रहे हों। अफ्रीका में स्त्रियों के अधिकार पर मानव एवं जनाधिकार का अफ्रीका चार्ट का प्रोटोकाल है जिसे मेपुतो प्रोटोकोल के रूप में जाना जाता है। मेपुतो प्रोटोकोल में स्त्रियों को प्रजनन अंगों की सुरक्षा प्रदान की गई है और स्त्री खतना को खत्म किया गया है, यह अफ्रीकी संघ द्वारा 19 जुलाई, 2005 को स्वीकार किया गया है।

बच्चे और बचपन दोनों पूरे विश्व में एक स्वर्ण युग के रूप में जाने जाते हैं। यह समय निश्छल, स्वतंत्र, उल्लास एवं उछल-कूद से भरा होता है। बिना किसी जिम्मेदारी के बालक अपना जीवन यापन करता है, परन्तु इसके साथ-साथ यह भी सच है कि समाज की अनेक दुरूह परिस्थितियों से परिचित न होने के कारण बच्चों का शोषण भी बहुत होता है, चाहे वह बाल श्रम के रूप में हो या कामुक गतिविधियों में लिप्त करने से जुड़ा हो या फिर उन्हें सही समय पर शिक्षा, भोजन तथा कपड़ा आदि न देने का हो। इसलिए बालक की देखरेख एवं संरक्षण की जिम्मेदारी वयस्क और विशेष रूप से माता-पिता की होती है, जो उनके सबसे अच्छे हितों को पूरा कर सकें। समाज का एक वर्ग यह भी मानता है कि यद्यपि बच्चों पर समाज के अन्य नियम लागू नहीं होते, परन्तु उनके लिए अपने अलग नियम और कानून हैं, जिनका पालन उनके सुन्दर भविष्य के लिए अनिवार्य है। यदि ऐसा न हो तो बचपन स्वतंत्र एवं अवसर से भरा न होकर पराधीन, शोषण, निर्दयता एवं दुर्व्यवहार से भरा होता है।

यदि हम ग्रीक हीब्रू और रोमन सभ्यता, जिनका सबसे ज्यादा असर पश्चिमी समाज पर पड़ा है, का अध्ययन करें तो पायेगें कि बच्चे अपने माता-पिता के अधीन रहते थे। अत: उन्हें कोई अधिकार देने के बजाय सिर्फ नसीहत ही दी जाती थी। रोमन कानून में तो पिता को परिवार के ऊपर समग्र अधिकार था। यहाँ तक कि वह उन्हें मृत्यु दण्ड दे सकता था।

मध्य युग में बच्चों की स्थिति समाज में बहुत खराब थी, इसे अंधकार युग के रूप में भी जाना जाता है। वस्तुत: इस समय बच्चों को भय से संचालित करना या शारीरिक दण्ड देना आम बात थी।

अधिकारों की बात 1215 में मैग्ना कार्टा संधि के बाद धीरे-धीरे समाज में आना शुरू हुई। इस संधि के अनुसार कोई भी स्वतंत्र व्यक्ति के बिना सही कानूनी प्रक्रिया अपनाएं जिन्दगी स्वतंत्रता एवं जायदाद नहीं ली जा सकती। इस प्रकार राज्य एक तरह बच्चों का सबसे बड़ा संरक्षक बनकर उभरा।

प्राचीन काल में भारत में समाज में बच्चों के साथ अलग तरह का व्यवहार होता था। जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता था, वैसे-वैसे उसके संस्कार किये जाते थे। बचपन को पांच भागों में बांटा गया था:-

1 गर्भ संस्कार (0 से 4 माह)

2 क्षीरद (0 से 6 माह)

3 क्षीरान्न (6 माह से 2 वर्ष)

4 बाल (2 से 5 वर्ष)

5 कुमार (5 से 16 वर्ष)

कई संस्कार जैसे नामकरण, मुण्डन, उपनयन आदि संस्कारों में आज भी लोग लोगों की आस्था है। बच्चा जब तक दो वर्ष का होता था तब तक उसे पूरी आजादी थी, परन्तु धीरे-धीरे उसे नैतिक मूल्यों की जानकारी दी जाती थी और उससे यह अपेक्षा की जाती थी कि वह अपने से बड़ों का सम्मान करे और नैतिक मूल्यों पर चले। रामचरित मानस में भगवान राम के बचपन के बारे में लिखा है :-

प्रातकाल उठि के रघुनाथा। मातु पिता गुरू नावहि माथा।।

अर्थात भगवान राम प्रात: काल उठकर सबसे पहले माता पिता एवं गुरु का चरण स्पर्श करते थे।

लड़के की इच्छा भारत में संभवत: तब से है, जब से समाज का प्रादुर्भाव हुआ। एक ओर विशेष तथ्य है कि यह सभी संस्कार आदि उच्च जातियों में ही होते थे। निम्न जातियों में इनका प्रचलन नहीं था। अपने से बड़ों के प्रति आदर एवं उनकी बात मानना नैतिक रूप से अनिवार्य था

और इसे सामाजिक मान्यता प्राप्त थी। समाज में बाल विवाह होने के कारण लड़कियों का बचपन पहले ही खत्म हो जाता था। लड़कियों को समाज में निम्न दर्जा सम्भवतः लड़कियों को मारने की कुप्रथा का जनक रही होगी, जो आज भी प्रचलित है।

मध्यकाल में मुगल शासन में बच्चों विशेष रूप से लड़कियों की स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। शिक्षा, कुपोषण तथा अर्थाभाव के चलते बच्चों का समाज में शोषण अत्यधिक था। माँ-बाप अपने बच्चों को न तो पढ़ा सकते थे और न सही पालन-पोषण कर पाते थे। समाज में बहुत कम लोग ही अपने बच्चों विशेष रूप से लड़कियों की सही ढंग से देखरेख कर पाते थे।

ब्रिटिश काल में पूरे भारत का शोषण हो रहा था। अतः बच्चों का प्रभावित होना स्वाभाविक था। यद्यपि गाँधी, नेहरू ने बच्चों के लिए काफी कुछ सोचा और किया, परन्तु यह सब स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही संभव हो पाया। आर्थिक विषमता तथा अशिक्षा ने सबसे ज्यादा बच्चों के जीवन को प्रभावित किया।

बच्चों के अधिकार के संदर्भ में यदि हम विश्व पटल पर देखें तो लीग ऑफ नेशन्स ने 1901 में बच्चों के कल्याण के लिए एक समिति का गठन किया। 1923 में इगलेन्टाइन जेब द्वारा गठित अन्तर्राष्ट्रीय बच्चा बचाओ यूनियन ने एक मसौदा तैयार किया, जिसे 1924 में जेनेवा में लीग ऑफ नेशन्स ने अंगीकार किया। इसे जेनेवा घोषणा पत्र 1924 के नाम से जाना जाता है। इसके प्रमुख बिन्दु निम्न है:-

1 बच्चों को सामान्य विकास के आवश्यक भौतिक एवं मानसिक संसाधन दिये जाये।

2 भूखे बच्चे को खाना दिया जाये। अनाथ व बेसहारा बच्चों को आश्रय दिया जाये और बीमार की सेवा की जाये।

3 विपत्ति के समय बच्चों को सर्वप्रथम मदद दी जाए।

4 बच्चों को जीवन यापन करने के लिए आवश्यक अर्जन हेतु अवसर दिये जाये तथा उनका शोषण न किया जाये।

5 बच्चों का पालन पोषण इस तरह से किया जाए, जिससे उनका सर्वोत्तम निखर कर आये, जिससे वे समाज को कुछ दे सकें।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा इस क्षेत्र में अनेक प्रयास किये गये। मानवाधिकार के अन्तर्राष्ट्रीय घोषणा पत्र का निम्न अनुच्छेद विशेष रूप से बच्चों एवं उनके अधिकारों के संरक्षण की बात करता है:-

(1) अनुच्छेद 25- मातृत्व एवं बचपन, दोनों में विशेष देखभाल एवं सहायता की जरूरत है। सभी बच्चे वे चाहे जैसे पैदा हुए हों, समान सामाजिक सुरक्षा के हकदार हैं।

(2) अनुच्छेद 26- सभी माँ-बाप अपने बच्चों को इस प्रकार की शिक्षा दें, इसको चुनने का अधिकार है।

पुनः वर्ष 1959 में सामान्य जन सभा में बच्चों को अधिकार का घोषण पत्र स्वीकार किया, जिसमें 10 प्रमुख बिन्दु थे। बच्चों के अधिकारों के लिए सबसे महत्वपूर्ण दस्तावेज अन्तरराष्ट्रीय बाल अधिकार आम सहमति-1989 को स्वीकार किया गया। यह अपने आप में अब तक सबसे परिपूर्ण दस्तावेज है। इसमें सभी आर्थिक, राजनतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों की व्याख्या की गई है तथा लगभग सभी देशों (अमेरिका को छोड़कर) इसे अनुमोदित भी किया है। बच्चों के अधिकारों के बारे में किये जाने वाले कार्यों की समीक्षा के लिये अन्तरराष्ट्रीय बाल अधिकार आम सहमति-1989 में अन्तर्राष्ट्रीय विशेषज्ञों की समिति की व्यवस्था की गई है, जो राज्यों को इस सन्धि के विभिन्न सिद्धान्तों के बारे में जानकारी देती है। वर्तमान में इसमें 10 विशेषज्ञ हैं, जो यह सुनिश्चित करते हैं कि बच्चों के सम्बन्ध में बनाये गये कानून का अनुपालन हो। यही नहीं जिन राज्यों ने इसे अनुमोदित कर दिया है, वहाँ पर संयुक्त राष्ट्र की विभिन्न एजेन्सियाँ जैसे यूनिसेफ आदि विभिन्न योजनाओं के मामले में अपनी राय देती हैं। उन योजनाओं को चलाने में मदद करती हैं तथा उसकी समीक्षा भी करती हैं।

इस प्रकार हम देखते है कि विश्व स्तर पर स्त्रियों एवं बच्चों के अधिकारों के अन्तरराष्ट्रीय बाल अधिकार आम सहमति-1989 एवं स्त्रियों के विरूद्ध समस्त प्रकार के भेदभाव की समाप्ति विषयक आम सहमति-1979 दो ऐसे महत्वपूर्ण दस्तावेज है, जो न केवल बच्चों एवं स्त्रियों के अधिकारों एवं उनके संरक्षण की बात करते हैं, वरन समस्त राष्ट्रों के नीति निर्देशक के रूप में कार्य करते हैं कि वे अपने सभी कानून उपरोक्त दस्तावेजों में वर्णित अधिकारों एवं कर्तव्यों को ध्यान में रखकर बनाये:-

1 अन्तरराष्ट्रीय बाल अधिकार आम सहमति-1989 और स्त्रियों के विरूद्ध समस्त प्रकार के भेदभाव की समाप्ति विषयक आम सहमति-1979 दोनों इस बात को मानते हैं कि स्त्रियों एवं बच्चों की जरूरतें विशिष्ट हैं और उन्हें समाज द्वारा बहुत समय से नकारा जाता रहा है, जिसके कारण समाज में उनकी दशा बदतर है।

2 राज्य और इसकी संस्थाएं नैतिक एवं कानूनी रूप से अपने लोगों की मूलभूत जरूरतें पूरी करने के लिए बाध्य हैं।

3 बच्चे एवं स्त्रियां अधिकार के हकदार है।

4 बच्चों एवं स्त्रियों की देखभाल करना राज्यों का उत्तरदायित्व है और वे इसके लिए जिम्मेदार हैं।

5 सभी मानवाधिकार सार्वभौम है।

6 सभी अधिकार अविभाज्य एवं एक दूसरे से संपृक्त है।

अन्तरराष्ट्रीय बाल अधिकार आम सहमति-1989 के प्रमुख 4 सिद्धान्त निम्न हैं:-

1 अनुच्छेद-2 भेदभाव रहित होने का सिद्धान्त।

2 अनुच्छेद-3 बच्चों का सर्वोत्तम हित। बच्चे के सर्वोच्च हित को ध्यान में रखा जाए।

3 अनुच्छेद-6 जीवन, जिन्दगी एवं विकास का अधिकार।

4 अनुच्छेद-12 बच्चों के विचार जानने का अधिकार।

वर्ष 1993 में वियना सम्मेलन में लड़कियों और औरतों के मानवाधिकार को सार्वभौम मानवाधिकारों का आन्तरिक एवं अलग न होने वाला अधिकार माना गया है।

दोनों अन्तरराष्ट्रीय बाल अधिकार आम सहमति-1989 एव स्त्रियों के विरूद्ध समस्त प्रकार के भेदभाव की समाप्ति विषयक आम सहमति-1979 दोनों ने स्त्रियों एवं बच्चों के अधिकारों की प्राप्ति में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। कुछ उदाहरण निम्नवत् हैं:-

1- लड़कियों का संरक्षण-अन्तरराष्ट्रीय बाल अधिकार आम सहमति-1989 के अनुच्छेद 24 के पैरा-3 में स्पष्ट उल्लेख है कि राज्य प्रभावी एवं उचित कदम उठायेंगे, जिससे उन सभी प्रक्रियाओं को, जो बच्चों के स्वास्थ्य के लिये खतरनाक है, को रोका जाए।

2- अनुच्छेद 19-राज्य सभी कदम उठायेगा, जिससे बच्चों का शारीरिक, मानसिक व दुर्व्यवहार रूके, उनका शोषण रूके, उनका कामुक शोषण न हो या उनके साथ किसी भी प्रकार का दुर्व्यवहार न हो, जब तक वे अपने माँ बाप, कानूनी संरक्षण या किसी व्यक्ति, के संरक्षण में रह रहे हों।

अन्तरराष्ट्रीय बाल अधिकार आम सहमति-1989 ने लड़कियों की समस्याओं के लिये एक समिति का गठन किया।

स्त्रियों के विरूद्ध समस्त प्रकार के भेदभाव की समाप्ति विषयक आम सहमति-1979 में लड़कियों का संरक्षण :-

(1) अनुच्छेद 5- में अन्तरराष्ट्रीय बाल अधिकार आम सहमति-1989 के अनुच्छेद 24(3) में सभी राज्यों का उत्तरदायित्व है कि स्त्रियों के साथ होने वाले सभी प्रकार के भेदभाव से सम्बन्धित परम्परायें और अभ्यास खत्म किये जायें।

(2) यद्यपि अन्तरराष्ट्रीय बाल अधिकार आम सहमति-1989 में बाल विवाह का उल्लेख नहीं है, परन्तु स्त्रियों के विरूद्ध समस्त प्रकार के भेदभाव की समाप्ति विषयक आम सहमति-1979 में बाल विवाह को रोकने के लिये कानून बनाने की बात कही गई है।

वस्तुत: स्त्रियों के विरूद्ध समस्त प्रकार के भेदभाव की समाप्ति विषयक आम सहमति-1979 सभी उम्र (लड़कियों) की औरतों पर लागू होता है, इसीलिये अन्तरराष्ट्रीय बाल अधिकार आम सहमति-1989 एवं स्त्रियों के विरूद्ध समस्त प्रकार के भेदभाव की समाप्ति विषयक आम सहमति-1979 की समितियों ने दोनों के उन सभी बिन्दुओं को लागू करने पर जोर दिया, जो एक दूसरे के पूरक हैं। यही नहीं बीजिंग में चतुर्थ विश्व स्त्री सम्मेलन और कार्यवाही का स्थल में लड़कियों के लिये एक अलग प्रभाग दिया गया है, जिसके निम्न उददेश्य हैं :-

(1) लड़कियों के विरूद्ध सभी भेदभाव मिटाना।

(2) लड़कियों के विरूद्ध नकारात्मक सांस्कृतिक व्यवहार एवं चलन मिटाना।

(3) लड़कियों के अधिकारों को संरक्षण देना तथा उसकी क्षमता एवं जरूरतों के बारे में लोगों को अवगत कराना।

(4) शिक्षा एवं प्रशिक्षण में लड़कियों के प्रति होने वाले भेदभाव को मिटाना।

(5) स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्यवर्धक खानपान में भेदभाव मिटाना।

(6) बालश्रम एवं लड़कियों का आर्थिक शोषण रोकना।

(7) लड़कियों के प्रति होने वाली हिंसा रोकना।

(8) लड़कियों को सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक जीवन में भाग लेने हेतु प्रोत्साहित करना।

(9) लड़कियों का स्तर सुधारने के लिये परिवार को प्रोत्साहित करना।

बीजिंग सम्मेलन में हिलेरी क्लिंटन ने अपने उद्‌बोधन में कहा था ...."पूरे विश्व में यह पता है कि यदि स्त्रियां स्वस्थ एवं शिक्षित हैं तो उनका परिवार समृद्ध होता है। अगर स्त्रियां हिंसा से बचती हैं तो उनका परिवार समृद्ध होता है। अगर स्त्रियों को काम करने का मौका मिलता है और वे पूरे तरीके से कमाती हैं तथा समाज में बराबर की हिस्सेदारी रखती हैं तो भी उनका परिवार समृद्ध होता है और जब परिवार समृद्ध होता है तो समाज एवं राष्ट्र स्वतः समृद्ध हो जायेगा।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि बच्चों एवं स्त्रियों के हितों की रक्षा के लिए भारत में एवं विश्व स्तर पर अनेक कानून, आयोग, सन्धियां बनीं हैं। परन्तु फिर भी इस क्षेत्र में जो अपेक्षित परिणाम आने चाहियें वह नहीं आ पा रहे हैं।

जब स्त्रियों और बच्चों के लिए संविधान के पन्नों पर, कानून की किताबों में ढेरों अधिकारों की बातें दर्ज हैं तब इस संदर्भ में समाज में जागरूकता लाने की जरूरत है। स्त्रियों और बच्चों के प्रति होने वाले अत्याचारों और हिंसात्मक कार्रवाही को रोकने के लिए हमें अपनी मानसिक बनावट में परिवर्तन लाने की जरूरत है। जरूरत है सामाजिक और आर्थिक ढाँचे को बदलने की भी। क्योंकि स्त्रियों और बच्चों पर होने वाले अत्याचार के मामले वस्तुतः कानून, पुलिस प्रशासन और स्वयं सेवी संस्थाओं से जुड़े हुए मामले मात्र नहीं हैं। ये बुनियादी तौर पर मौजूदा सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक ढांचे से भी जुड़े हुए हैं। सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक तंत्र में बदलाव लाए बिना स्त्रियों और बच्चों का हित संरक्षण एक कठिन चुनौती है।

* * *

मानव अधिकार हनन तथा पुलिस की भूमिका

• *अशोक कुमार*

हमारे देश में विभिन्न कार्यालयों में पुलिस के खिलाफ प्रतिदिन हजारों शिकायतें प्राप्त होती हैं – परन्तु इनके निराकरण की जो व्यवस्था हमारी पुलिस की कार्यप्रणाली में है उसे बिलकुल भी संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। आज की तारीख में एक आदमी न्याय पाने की लालसा में दर-दर भटकता है और मानवाधिकारों की रक्षा की लाख कसम खाने के बावजूद, कम्युनिटी पुलिसिंग के हजार दावों को दरकिनार करते हुए, सूचना के अधिकार के जमाने में भी-हमारी पुलिस व्यवस्था में आमतौर पर न्याय पाना आज भी एक मृग--मरीचिका ही है- आज भी न्याय का पलड़ा धनी और प्रभावशाली व्यक्तियों की तरफ ही झुका हुआ है।

पुलिस के खिलाफ मुख्यत: निम्न प्रकार की शिकायतें प्राप्त होती हैं, जिनमें आदमी के मौलिक अधिकारों का हनन होता है :-

1. प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज न करना ।
2. दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्ट पर समय से कार्रवाई न करना ।
3. झूठी प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करना ।
4. झूठे मुकदमे में फँसाना ।
5. निर्दोष लोगों को जेल भेजना ।
6. दोषी लोगों के खिलाफ प्रथम सूचना रिपोर्ट के बावजूद विवेचना में उनके नाम निकाल देना ।
7. पुलिस बर्बरता/पिटाई की शिकायतें ।

• *उप-पुलिस महानिरीक्षक, केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल, दिल्ली*

8. फर्जी मुठभेड़ की शिकायतें ।
9. पुलिस–अभिरक्षा में मौत
10. पुलिस–अभिरक्षा में बलात्कार ।

मानवाधिकारों के हनन से संबंधित उपरोक्त से मिलती जुलती और भी शिकायतें पुलिस द्वारा प्राप्त होती रहती हैं। उपरोक्त शिकायतों के निराकरण की व्यवस्था को दो बड़े स्तरों में बांटा जा सकता है ।

1. **पुलिस के अतिरिक्त बाह्य संस्थाएँ:-**
   (i) विभिन्न माननीय न्यायालय
   (ii) संसद एवं विधान सभा
   (iii) राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग
   (iv) राष्ट्रीय अनुसूचित जाति–जनजाति आयोग
   (v) राज्य स्तरीय मानवाधिकार आयोग
   (vi) लोकायुक्त/लोकपाल
   (vii) राज्य स्तरीय पुलिस शिकायत प्राधिकरण

2. **जन शिकायतों के निराकरण संबंधी पुलिस की आंतरिक व्यवस्था :-**
   (i) थाना स्तर (थानाध्यक्ष)
   (ii) क्षेत्र स्तर (क्षेत्राधिकारी/पु0उपाधीक्षक/सहायक पुलिस आयुक्त.)
   (iii) जनपद स्तर (पुलिस अधीक्षक/वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक)
   (iv) रेंज स्तर (पुलिस महानिरीक्षक/पुलिस उप महानिरीक्षक)
   (v) राज्य स्तर (पुलिस महानिदेशक/गृह सचिव)

इन सभी पाँचो स्तरों पर पुलिस के खिलाफ जो भी शिकायतें प्राप्त होती हैं उसमें सबसे महत्वपूर्ण कड़ी पुलिस अधीक्षक का कार्यालय है। थाना स्तर पर की गई शिकायतें इसलिए निरर्थक हो जाती हैं कि आमतौर पर शिकायत थाना पुलिस के विरूद्ध ही होती है, इसलिए शिकायतकर्ता उन शिकायतों को थाने पर लेकर कम ही जाते हैं। जो द्वितीय स्तर है–क्षेत्र स्तर या पुलिस उप अधीक्षक के स्तर पर अभी तक शिकायतों की प्राप्ति, उनका रख–रखाव एवं जवाब देने की प्रक्रिया की आमतौर पर कोई निर्धारित व्यवस्था नहीं है। इसके साथ ही पुलिस उपाधीक्षक फील्ड स्तर पर इतने व्यस्त होते हैं कि पेपर रख–रखाव या जाँच के लिए उनके पास वक्त ही नहीं होता है। कुल मिलाकर यह स्तर भी निष्प्रभावी है ।

पुलिस अधीक्षक का स्तर सबसे प्रभावी इसलिए है कि इस कार्यालय में सीधे प्राप्त होने वाली और अन्य कार्यालयों से प्राप्त होने वाली शिकायतों का ठीक से रख-रखाव होता है। पुलिस अधीक्षक स्तर से ऊपर के अधिकारी जैसे महानिदेशक, अपर महानिदेशक, पुलिस महानिरीक्षक तथा पुलिस उप महानिरीक्षक चारों स्तर के अधिकारियों के पास पहुँचने वाली 95% से भी अधिक शिकायतें पुलिस अधीक्षक कार्यालय/वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक कार्यालय को भेजी जाती हैं। अतः पुलिस अधीक्षक कार्यालय को शिकायतों के निस्तारण के संबंध में पुलिस की आंतरिक व्यवस्था का नोडल कार्यालय कहा जा सकता है ।

वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक का कार्यालय इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि पुलिस से इतर अन्य कार्यालयों से प्राप्त शिकायतें भी इसी कार्यालय को ही प्रेषित की जाती है। माननीय न्यायालय, मानवाधिकार आयोग तथा अन्य संस्थानों के दृष्टिकोण से भी यह कार्यालय नोडल कार्यालय माना जा सकता है। मेरा मानना है कि पुलिस द्वारा अपनी शक्तियों के दुरुपयोग पर रोक बाहरी संस्थानों से उतनी नहीं हो सकती जितनी कि उसकी अपनी आंतरिक निगरानी से। इसलिए जनपद स्तर पर पुलिस के खिलाफ शिकायत निस्तारण की व्यवस्था को मजबूत एवं प्रभावी बनाना किसी भी पुलिस व्यवस्था के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है ।

सामान्यतः जो व्यवस्था इन शिकायतों के निस्तारण के लिए बनाई गई है- ये है कि इन शिकायतों को जाँच हेतु किसी राजपत्रित अधिकारी को सौप दिया जाता है-जो सामान्यतया डी.एस.पी रैंक का होता है। उनके पास सामान्यतया न तो इतना समय होता है-न ही इच्छा शक्ति-और न ही आवश्यक संवेदनशीलता-इसलिए वह ऐसी सभी जाँचों को उसी थाने में जाँच या टिप्पणी हेतु भेज देता है-जिसके खिलाफ वो शिकायत थी-चाहे वो प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज न करने की हो-या मानवाधिकारों के हनन संबंधी- या कोई और गम्भीर शिकायत- सभी परिस्थितियों में जाँच का परिणाम तो पहले से ही स्पष्ट होता है- थानाध्यक्ष-अपने स्वय की या अपने अधीनस्थों की कार्रवाई को पूर्णतया सही करार देते हुए -पीड़ित व्यक्ति की शिकायत को फर्जी, निराधार एवं पेशबन्दी में दिया जाना करार देते हुए डी.एस.पी को रिपोर्ट भेजता है, जो ज्यों को त्यों पुलिस अधीक्षक को रिपोर्ट भेज देते हैं। पुलिस अधीक्षक कार्यालय में ये शिकायतें दाखिल दफ्तर हो जाती हैं - या फिर उसी क्रम में ऊपर तक भेज दी जाती हैं -जहाँ से ये शिकायत जाँच हेतु आई थी।

उपरोक्त व्यवस्था में खेदजनक बात यह है कि इन शिकायतों को आम तौर पर गम्भीरता से नहीं लिया जाता- सामान्यतः पुलिस अधिकारी मानते हैं कि पुलिस के विरूद्ध अधिकांश शिकायतें फर्जी होती हैं- निराधार होती हैं-जबकि इसके विपरीत अपने 21 साल के पुलिसिंग के अनुभव के बाद मेरा मानना है कि इनमें से अधिकांश सही होती हैं । अधिकांश मामलों में पुलिस द्वारा की गई कार्रवाई के पीछे धनी व प्रभावशाली व्यक्तियों का हाथ होता है जिस कारण पीड़ित व्यक्ति को न्याय नहीं मिल पाता है।

इस प्रकार पुलिस के खिलाफ शिकायतों के निस्तारण की व्यवस्था को प्रभावी एवं पारदर्शी नहीं कहा जा सकता । यदि हम इसके कारणों का गहराई से विवेचन करें तो मुख्यत: निम्न कारण सामने आते हैं :-

(i) भ्रष्टाचार – जो समाज–व्यवस्था के अन्य अंगों की तरह पुलिस में भी व्याप्त है ।

(ii) राजनैतिक दबाव – क्योंकि पुलिस राज्य का विषय है और इसलिए छोटे स्तर के नेताओं का भी पुलिस पर दबाव बना रहता है जिस कारण पुलिस एक पक्ष विशेष के प्रभाव में काम करती है। दूसरे पक्ष वालों की शिकायतों को या तो दबा दिया जाता है या उनसे आँखें मूंद ली जाती हैं ।

(iii) वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों का इन शिकायतों के प्रति दृष्टिकोण और संवेदनशीलता एवं इच्छा शक्ति की कमी– 'आम तौर पर कई अधिकारी इसी तरह अपनी ट्रेनिंग बिता देते हैं और अधीनस्थ अधिकारी 'राजा साहब' कहकर उनको चने के झाड़ पर चढ़ाये रखते हैं और अपना उल्लू सीधा करते रहते हैं। कुछ ही अधिकारी होते हैं जो नीचे तक अपनी पकड़ बना पाते हैं, ऐसे अधिकारियों को स्टाफ द्वारा 'कड़क' या 'सख्त' अधिकारी की संज्ञा दी जाती है। 'राजा साहब' की श्रेणी वाले अधिकारियों के कार्यकाल में नीचे का स्टाफ ज्यादा खुश रहता है, क्योंकि ऐसे अधिकारी न तो क्षेत्र में जाते हैं, न अपराध की गहराई में जाते हैं और न ही अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा किये गये गलत कार्यो की तह तक जाते हैं। ऐसे अधिकारी वास्तविकता से पूरी तरह बेखबर रहते हैं। ऐसे में अधीनस्थ अधिकारियों को खुली छूट रहती है। साहब तो राजा आदमी हैं, जो काम न कर सिर्फ मौज करते हैं और उनके नीचे के भ्रष्ट अधिकारी असली राज करते हैं। जबकि उनके कार्यकाल में कर्तव्यनिष्ठ अधीनस्थ अधिकारियों को काम करने का मौका ही नहीं मिल पाता क्योंकि 'राजा साहब' चापलूस व भ्रष्ट अधीनस्थों से घिरे रहते हैं।"

(iv) जाँचकर्ता अधिकारियों (क्षेत्राधिकारी/पुलिस उपाधीक्षक/सहायक पुलिस आयुक्त) के पास काम की अधिकता होती है और इसलिए उनके द्वारा जाँच में पूरा समय नहीं दिया जाता है और वे शिकायत को अपने अधीनस्थों को सौंप देते हैं ।

(v) अपने अधीनस्थ पुलिस कर्मियों के प्रति सहानुभूति का नजरिया–यह आमतौर पर इसलिए होता है क्योंकि दोषी अधीनस्थ पुलिस कर्मी (विशेषकर थाना अध्यक्ष/ उप निरीक्षक) जाँच अधिकारी पर दो तरह का दबाव बनाते हैं। एक तो वे झूठी कसमें खाते हैं और जाँच अधिकारी को विश्वास में लेने की कोशिश करते हैं तथा दूसरे विभाग की रक्षा करने की दुहाई देते हैं।

पुलिस कर्मियों द्वारा अधिकारों का दुरुपयोग अस्वाभाविक नहीं है क्योंकि उनके पास वर्दी है –हथियार हैं– और कानून द्वारा प्रदत्त अधिकार हैं। तीनों की वजह से पुलिस कर्मियों द्वारा अधिकारों के दुरुपयोग की संभावना बनी रहती है। ऐसी संभावना को रोकने के लिए वरिष्ठ अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक स्तर पर एक बहुत अच्छे, ईमानदार, संवेदनशील एवं प्रभावी अधिकारी की आवश्यकता है।

ऐसा नहीं है कि पुलिस के खिलाफ शिकायतों पर कोई कार्रवाई नहीं होती। औसतन एक वर्ष में एक जनपद में पाँच प्रतिशत पुलिस कर्मी दुर्व्यवहार, ज्यादतियों, गलत कार्रवाई आदि की शिकायत के आधार पर निलंबित होते हैं। एक औसत जिले में एक हजार पुलिस कर्मियों की तादाद होती है-यानि एक वर्ष में लगभग पचास पुलिस कर्मी प्रत्येक जनपद में निलंबित किए जाते हैं, जो अनुशासन रखने के लिए अत्यंत आवश्यक है। इस तरह की कार्रवाई किसी अन्य विभाग में एकदम असंभव है क्योंकि वहाँ कर्मचारियों की यूनियनें आड़े आ जाती हैं। अत: यह कहना कि दोषी पुलिस कर्मियों पर बिलकुल कार्रवाई नहीं होती, पूर्णत: गलत है। परन्तु जरूरत है तो इसको और अधिक पारदर्शी बनाने की, और अधिक व्यापक बनाने की। क्योंकि जितनी कार्रवाई की जाती है उससे भी चार गुना अधिक कार्रवाई और किए जाने की आवश्यकता है ।

पिछले विभिन्न वर्षों में पुलिस सुधार हेतु कई आयोग बनाए गए तथा सभी ने पुलिस को नियंत्रण में करने के संबंध में विभिन्न संस्तुतियाँ दी हैं। इनमें राजनैतिक दबाव कम करने के अलावा भी कई और सुझाव दिए गए हैं। मानवाधिकार आयोग द्वारा भी पिछले वर्षों में प्रभावी प्रयास किए गए हैं जिनका काफी असर पुलिस की कार्यप्रणाली में देखने को मिलता है। सबसे बड़ा फर्क तो पुलिस की हिरासत में मौत या बलात्कार के प्रकरणों में आया है तथा इनको अब बड़ी गंभीरता से लिया जाता है। ऐसे प्रकरणों में कार्रवाई भी तत्परता से होती है। चाहे वह कार्रवाई जनता या मीडिया के दबाव में हो या फिर मानव अधिकार आयोग के दबाव में। इसमें जनता और मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका है। फिर भी जो छोटे स्तर की शिकायतें है उनमें अभी भी अपेक्षित संवेदनशीलता उच्च अधिकारियों द्वारा नहीं दिखाई जा रही है।

यह भी देखने में आया है कि राजनैतिक दबाव में नहीं आने वाले एकदम ईमानदार अधिकारी भी अपने अधीनस्थों की एवं पुलिस विभाग की मदद करने के नाम पर जाने कितनी गलत हरकतों से आँखें मूंद लेते हैं। ऐसा करके हम क्या अपने कर्तव्यों का सही पालन कर रहे हैं ? क्या हमें पुलिस को बचाने के लिए बनाया गया है या फिर समाज की रक्षा के लिए? मेरे विचार से किसी भी पुलिस अधिकारी के मन में आम आदमी की रक्षा करना व पीड़ितों की मदद करना ही सर्वोपरि होना चाहिए तथा एक अच्छे और संवेदनशील अधिकारी को विभाग को बचाने के नाम पर दोषी पुलिस कर्मियों का साथ नहीं देना चाहिए ।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि यद्यपि पुलिस के खिलाफ मानवाधिकारों के हनन से संबंधित शिकायतों पर कार्रवाई में सुधार तो परिलक्षित हुआ है परन्तु अभी भी अधिकांश शिकायतों की जाँच मात्र कागजी, सतही बनकर रह जाती है एवं पीड़ितों को न्याय नहीं मिल पाता।

* * *

भारत में सम्मान के लिए स्त्रियों की हत्या

स्त्रियों के मानवाधिकारों का क्रूरतापूर्ण उल्लंघन

• *डॉ० प्रीती सक्सेना*
•• *डॉ० सुदर्शन वर्मा*

मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए दिये गये अधिकार मानवाधिकार कहलाते हैं। ये वे अधिकार होते हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को केवल इस आधार पर मिलने चाहिए कि वह मनुष्य है। ये अधिकार वे अधिकार हैं, जो व्यक्ति के साथ अन्तर्निहित हैं। इन अधिकारों के बिना मानव मनुष्य के रूप में जीवित नहीं रह सकते हैं। मानव अधिकार तथा मूल स्वतंत्रतायें व्यक्तियों के मानवीय गुणों का विकास तथा आध्यात्मिक एवं अन्य आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने में सहायक होती हैं।[1] मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा 1948, सिविल एवं राजनैतिक अधिकारों की अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा 1966, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों की अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966 तथा अन्य अनेक अन्तरराष्ट्रीय घोषणाओं एवं प्रसंविदाओं के माध्यम से विश्व के प्रत्येक मनुष्य को मानवाधिकार प्रदत्त किये गये हैं। ये मानवाधिकार प्रत्येक मनुष्य को प्रदत्त किये जाने के कारण स्त्रियां भी इन मानवाधिकारों की अधिकारिणी हैं। परन्तु स्त्रियों के मानवाधिकारों का विषय सम्पूर्ण संसार में प्राय: एक असहज चर्चा एवं विवाद का विषय रहा है।

इक्कीसवीं शताब्दी के अभूतपूर्व परिवर्तनों के उपरांत भी सम्पूर्ण विश्व की प्रत्येक संस्कृति में स्त्रियों के प्रति भेदभाव एवं हिंसा व्याप्त है। भारत भी इससे अछूता नहीं है। यद्यपि स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय संविधान ने स्त्रियों को पुरुषों के समरूप अधिकार प्रदत्त किए हैं तथा सदियों से शोषित स्त्रियों को समान स्तर पर लाने हेतु विशेष उपबन्ध किये हैं जिस कारण आज स्त्रियों ने शिक्षा

• *विभागाध्यक्ष, मानवाधिकार विभाग, विधिक अध्ययन विद्यापीठ, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ*

•• *रीडर, विधि विभाग, विधिक अध्ययन विद्यापीठ, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय लखनऊ*

1 *एस.के.कपूर, अन्तर्राष्ट्रीय विधि 1997 पृष्ठ 115*

के माध्यम से अपनी बुद्धिमत्ता एवं दक्षता को प्रमाणित कर दिखाया है तथा शिक्षा, व्यवसाय, राजनीति के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति की है तथापि आज भी स्त्रियां भेदभाव एवं हिंसा की शिकार हैं। विशेष रूप से पारंपरिक समुदाय में स्त्रियों के साथ आज भी पारम्परिक तरीके से ही भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जाता है तथा उसके मानवाधिकारों की उपेक्षा की जाती है। भारतीय समाज में आज भी स्त्रियों को दोयम दर्जे का नागरिक तथा पुरुषों से निम्न माना जाता है। लम्बे समय से चली आ रही रुढ़ियां एवं परम्परायें उन्हें पुरुषों के समान अधिकारों के योग्य नहीं मानती हैं। उनके प्रति भेदभाव एवं हिंसा की घटनाएं दिन प्रतिदिन समाचार पत्रों, दूरदर्शन आदि के माध्यम से प्रकाशित होती रहती हैं। यद्यपि यह समस्त घटनाओं का 10 प्रतिशत भी नहीं होती हैं। स्त्रियों के प्रति किये जाने वाले इन अपराधों में उनकी शिक्षा, व्यवसायिक दक्षता, आर्थिक सम्पन्नता कोई मायने नहीं रखती है। मध्य काल से अब तक लगभग समस्त जाति, धर्म एवं समुदायों में बेटियों का जन्म सम्मान घटाने वाली घटना के रूप में ही स्वीकार किया जाता है। जन्म लेते ही बेटियों की हत्या भारत में सदियों से प्रचलित रही है। विज्ञान एवं तकनीकी प्रगति ने जन्म के पश्चात बेटियों की हत्या को कन्या भ्रूण हत्या के रूप में रूपान्तरित कर दिया। स्त्रियों के प्रति होने वाले अपराधों एवं हिंसा की ही एक कड़ी सम्मान की संरक्षा हेतु हत्या का अपराध है। उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरपुर जिले में सन् 2003 में नौ माह के अन्दर लगभग 13 हत्यायें की गयी। इससे पूर्व सन् 2002 में 10 ऐसी हत्याओं के मामले दर्ज किये गये तथा 35 जोड़े गुम घोषित किये गये। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि भारत के सिर्फ हरियाणा एवं पंजाब राज्यों में ही लगभग 107 हत्याएं सम्मान की संरक्षा के लिए की गई थीं। आज भी दिन-प्रतिदिन समाचार पत्रों में सम्मान की संरक्षा के लिए हत्या के मामले प्रकाशित हो रहे हैं जो एक बार पुन: समाज में स्त्रियों की स्थिति एवं उनके मानवाधिकारों के बारे में चिंतन करने पर मजबूर करते हैं।

सम्मान के लिए बेटियों की नृशंस हत्या:

सम्मान के लिए हत्याएं (ऑनर किलिंग) जिन्हें रूढ़िवादी हत्याएं भी कहा जाता है, से तात्पर्य परिवार के सम्मान की संरक्षा के लिए परिवार के सदस्यों द्वारा ही परिवार की कन्या सदस्य अथवा बेटी की हत्या करना है। सम्मान के संरक्षण के लिए अपराध से तात्पर्य ऐसे हिसंक कृत्यों से है, जो कुछ नैतिक मूल्यों को अधिरोपित करने के लिए किये जाते हैं। ऐसे नैतिक मूल्य जिनका पालन करना सामाजिक रूप से आवश्यक बना दिया गया है तथा उनकी अवहेलना परिवार, समाज एवं जातीय समुदाय के द्वारा असहनीय होता है। हत्या तथा बलपूर्वक आत्महत्या करने के लिए दबाव, सम्मान के संरक्षण के लिए हत्या के उदाहरण हैं। इस लेख के उद्देश्य से सम्मान के लिए हत्या से तात्पर्य किसी व्यक्ति की, उसके परिवार, अथवा कुल कबीले अथवा किराये के हत्यारों के द्वारा परिवार के सम्मान के संरक्षण हेतु हत्या करना अथवा उस व्यक्ति को आत्महत्या के लिए विवश करना है।

सम्मान के संरक्षण के लिए हत्या करने वालों का मानना है कि दोषी स्त्री अपने परिवार, जाति एवं समुदाय के अपमान का कारण है। अत: उसकी हत्या करके ही अपनी जाति, समुदाय एवं

प्रमुखत: अपने परिवार के सम्मान की रक्षा की जा सकती है । परिवार के सदस्यों के द्वारा स्त्री को इस हद तक प्रताड़ित किया जाता है कि वह या तो स्वयं ही आत्महत्या कर लेती है, अथवा परिवार वाले उसकी हत्या कर देते हैं। सम्मान की संरक्षा के लिए सदैव पुत्री का ही बलिदान दिया जाता है, पुत्र का नहीं। इस प्रकार सम्मान की संरक्षा के लिए हत्या करने वाले सदैव स्त्रियों की समानता, स्वतंत्रता, गरिमापूर्ण जीवन तथा स्वेच्छा से जीवन साथी का चयन एवं विवाह की स्वतंत्रता के मानवाधिकारों का उल्लंघन करते हैं।

सम्मान के संरक्षण हेतु हत्या का संक्षिप्त इतिहास

सम्मान के संरक्षण हेतु अपने ही पारिवारिक सदस्य की हत्या करना कोई नवीन कृत्य नहीं है अपितु सदियों से यह आपराधिक कृत्य समाज में धर्म, जाति, समुदाय एवं परिवार के सम्मान के संरक्षण के लिए किया जाता रहा है। यद्यपि सम्मान के संरक्षण हेतु हत्या स्त्री एवं पुरुष दोनों की ही की जाती है। परन्तु इस प्रकार की हत्याओं की मुख्य पीड़ित पक्षकार स्त्रियां ही होती हैं। सदियों से लगभग सभी धर्मो में स्त्रियों को परिवार में सम्मान एवं प्रतिष्ठा का द्योतक माना जाता रहा है, तथा उनसे अपेक्षा की जाती है कि विवाह से पूर्व वह अपने पिता व भाई की आज्ञा का पालन करें। उनके विवाह का पूर्ण दायित्व एवं विवाह के लिए निर्णय लेने का पूर्ण अधिकार उनके पिता व भाई अथवा परिवार के वरिष्ठ पुरुष का ही होता है। परिवार के पुरुषों की इच्छा के विरूद्ध कार्य अथवा विवाह का निर्णय परिवार के ऊपर कलंक समझा जाता है तथा समाज, जाति एवं समुदाय आदि के समक्ष परिवार के अपमान का कारण बनता है। स्त्रियों के प्रति यह धारणा आज भी समाज में उतनी ही सुदृढ़ है जितनी प्राचीन काल में थी। अत: यदि कोई भी स्त्री अपने परिवार के निर्णय के विरूद्ध अपने विवाह का निर्णय लेती है अथवा विवाह करती है तो उसे परिवार व जाति का अपमान समझा जाता है। अत: दण्ड के रूप में उसे प्राण दण्ड दे कर अपने सम्मान की रक्षा की जाती है।

विश्व में लगभग प्रत्येक धर्म में सम्मान के लिए हत्या रूपी अविधिक कृत्य विद्यमान है। संयुक्त राष्ट्र संघ जनसंख्या फंड के द्वारा अनुमान लगाया गया है कि सम्पूर्ण विश्व में प्रतिवर्ष लगभग 50000 हत्यायें सम्मान के संरक्षण हेतु की जाती हैं ।

सम्मान हेतु हत्या के कारण

भारत एवं अन्य देशों में सम्मान के संरक्षण हेतु हत्या के निम्न लिखित कारण है:-

1 समाज एवं परिवार के द्वारा अन्तरजातीय विवाह को स्वीकृति/मान्यता प्रदत्त न करना।

2 सगोत्रीय विवाह का धार्मिक एवं सामाजिक निषेध।

3 विवाह पूर्व एवं विवाह पश्चात के संबंध

4 अविवाहित माँ बनना

2 *यूनाइटेड नेशन्स पापुलेशन फंड, 2007-8, पृष्ठ 15*

5 समाज, समुदाय एवं परिवार में स्त्रियों को प्रतिष्ठा की वस्तु समझना

6 रूढ़ि, परम्पराओं एवं सांस्कृतिक मूल्यों को सर्वोपरि मान्यता तथा उनका उल्लंघन सर्वाधिक दण्डनीय अपराध मानना

7 जातीय पंचायतों (विशेष रूप से हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, पश्चिमी उत्तर प्रदेश में) के द्वारा पारित निर्णय एवं उनकी सामाजिक बाध्यता।

भारत में सम्मान के संरक्षण हेतु हत्या के मामलों में वृद्धि का कारण :

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात संविधान के द्वारा स्त्रियों को समान अधिकार प्रदत्त करना तथा विधि एवं संविधियों के माध्यम से स्त्रियों के प्रति समाज में व्याप्त कुरीतियों को समाप्त करने के सरकार के प्रयासों एवं नीतियों के कारण समाज में स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण में काफी सुधार हुआ है। रूढ़िवादी परम्पराओं को त्याग कर स्त्रियों को शिक्षा के अवसर प्रदान किये जा रहे हैं। जिससे उनकी सामाजिक, आर्थिक, एवं शैक्षिक स्थिति में सुधार हुआ है। शिक्षा के कारण स्त्रियों में जातिवाद के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है। आज का युवा वर्ग जाति को आधार न मानकर आर्थिक सुदृढ़ता तथा शिक्षा को ज्यादा महत्व देता है। अत: विवाह के प्रति भी इस युवा वर्ग का दृष्टिकोण परिवर्तित हुआ है। आज का युवा वर्ग स्वयं की पसंद के अनुसार विवाह करने को वरीयता प्रदान करता है, जिसमें जाति, धर्म, गोत्र आदि का कोई स्थान नहीं होता है। एक ओर समाज में स्त्रियों के प्रति रूढ़िवादी दृष्टिकोण में अभूतपूर्व परिवर्तन आया है परन्तु दूसरी ओर स्त्रियों को विवाह की स्वतत्रंता अथवा अपना जीवन साथी चुनने की स्वतंत्रता के सम्बन्ध में समाज के दृष्टिकोण में कोई परिवर्तन नहीं आया है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्थिति और भी दयनीय है। जिन परिवारों में अंतरजातीय अथवा सगोत्रिय विवाह को स्वीकृति दी जाती है वहां केवल पुत्र को ही यह अधिकार दिया जाता है कि वह अपनी इच्छा से अपना जीवन साथी चुन सके। कुछ अपवादों को छोड़कर स्त्रियों को यह अधिकार आज भी प्राप्त नहीं है। सामान्यत: पारिवारिक प्रताड़नाएं स्त्रियों को अपना निर्णय बदलने पर मजबूर कर देती हैं और वे माता-पिता की इच्छानुसार विवाह के लिए तैयार हो जाती हैं। यदि वह अपने निर्णय पर अडिग रहती हैं तो उन्हें प्रताड़ित किया जाता है और अन्तत: उनको हत्या के रूप में मृत्यु दण्ड दे दिया जाता है। इस प्रकार स्त्रियों का अपने अधिकारों के प्रति सचेत होना, उनकी मांग करना तथा अपने जीवन को स्वतंत्ररूप से अपनी इच्छानुसार जीने की कामना करना ही सम्मान के लिए हत्या के मामलों में वृद्धि का मुख्य कारण है।

सम्मान के लिए हत्याओं एवं प्रताड़नाओं के मामलों के वास्तविक आकड़ें प्राप्त नहीं होते हैं क्योंकि अधिकतर मामले सामान्य दुर्घटना अथवा आत्महत्या के रूप में वर्गीकृत कर दिये जाते हैं। अधिकतर मामले दर्ज ही नहीं करवाये जाते हैं अथवा उनकी प्रथम सूचना रिपोर्ट नहीं लिखवाई जाती है अर्थात वो पुलिस के समक्ष ही नहीं आते हैं अथवा दर्ज नहीं होने दिये जाते हैं।

सम्मान के संरक्षण हेतु हत्या का उद्देश्य:

सम्मान के संरक्षण हेतु हत्या का उद्देश्य, व्यक्ति, परिवार एवं समुदाय के सम्मान की संरक्षा माना जाता है तथा सम्मान को ठेस पहुंचाने वाले उन व्यक्तियों को दण्ड देना ही इन हत्याओं का एक मात्र उद्देश्य होता है जिनके अनैतिक कार्यों के कारण परिवार एवं समुदाय अथवा कबीले की प्रतिष्ठा कलंकित हुई है अथवा हो सकती है। सम्मान के लिए हत्या का अपराध प्राय: सामाजिक रूप से अनैतिक घोषित किये गये अथवा अप्रतिष्ठित समझे जाने वाले कृत्यों को रोकने के लिए किया जाता है। जैसे स्त्री का अपने पति से तलाक लेना, विवाह पूर्व शारीरिक संबंध, विवाह पूर्व गर्भाधारण, सम लैगिक संबंध तथा परिवार के वरिष्ठ पुरुषों की अवज्ञा करना अथवा बलात्कार का शिकार होना। इस प्रकार सम्मान हेतु हिंसा का उद्देश्य विवाह की पारम्परिक रूढ़िवादी गरिमा को बनाये रखना, पत्नी का पति के प्रति वफादारी, पवित्रता, वैवाहिक संबंध के द्वारा गर्भधारण तथा पुरुष की आज्ञा का पालन करना आदि रूढ़िवादी परम्पराओं को केवल स्त्रियों के लिए आवश्यक बनाये रखना है।

विभिन्न देशों की स्थिति

सामान्यत: सम्मान की संरक्षा हेतु हत्या उन्हीं देशों में की जाती है जिन देशों में स्त्रियों को मात्र एक वस्तु समझा जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा प्रस्तुत एक रिपोर्ट के अनुसार सम्मान के संरक्षण हेतु हत्या का अपराध अधिकतर बंगला देश, ब्रिटेन, ब्राजील, मिस्त्र, भारत, इजराइल, इटली, जोर्डन, पाकिस्तान, मोरक्को, स्वीडन एवं तुर्की में किया जाता है। सम्मान हेतु हत्या का प्रचलन भारत में सदियों से रहा है तथा सैकड़ों विवाहित अथवा अविवाहित स्त्रियां व पुरुष प्रतिवर्ष सम्मान के नाम पर बलि चढ़ा दिये जाते हैं और उन्हें आत्महत्या का नाम दे दिया जाता है। ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में सम्मान के संरक्षण के लिए माता-पिता तथा भाई अपनी ही बेटियों की हत्या कर देते हैं और उसकी सूचना पुलिस तक नहीं पहुंच पाती है अथवा हत्या को आत्महत्या का स्वरूप देकर प्रस्तुत किया जाता है।

भारत में सम्मान के संरक्षण हेतु हत्या के मामलों में खाप पंचायतों का योगदान एवं इनके निर्णय की वैधानिकता :

भारत एवं प्रजातांत्रिक देश है। भारत में संविधान सर्वोपरि है तथा विधायिका के द्वारा पारित प्रत्येक विधि का सांविधानिक उपबन्धों के अनुकूल होना अनिवार्य है। संविधान विधि के शासन की स्थापना पर बल देता है तथा सरकार पर कर्तव्य अधिरोपित करता है कि वह अपने राज्य क्षेत्र में विधि के शासन की स्थापना करेगा, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को ऐसा भय रहित वातावरण उपलब्ध हो जिसमें वे गरिमा पूर्व जीवन व्यक्ति कर सकें तथा अपने अधिकारों का उपयोग कर सकें। सभी व्यक्ति संविधान एवं विधि के अधीन हों तथा सभी को विधियों का समान संरक्षण प्राप्त हो। इस रूप में भारत में विधि के शासन की स्थापना शहरों में तथा नगरों तक ही हों सकी है परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों

में आज भी प्राचीन रूढ़ियाँ एवं रीति-रिवाज, जो विधि के प्रतिकूल हैं अथवा जिन्हें विधि के द्वारा प्रतिषिद्ध किया गया है प्रचलन में हैं। खाप (जातीय) पंचायतें एवं उनके निर्णय इसी का एक स्वरूप है। संविधान के द्वारा सभी प्रकार के विवादों का निस्तारण करने का अधिकार न्यायपालिका को सौंपा गया है। परन्तु भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी जातीय पंचायत जातीय समुदाय में होने वाली घटनाओं का निस्तारण करती हैं। समाज में इन्हें जातीय न्यायालयों का स्थान प्राप्त है। इन "अनौपचारिक" न्यायालयों के सदस्य स्वयं नियुक्त न्यायाधीश के रूप में आदेश पारित करते हैं तथा जातीय अथवा ग्रामीण समाज स्वेच्छा से अथवा सामाजिक दण्ड के भय से इनके आदेशों का अनुपालन करते हैं अथवा करने के लिए बाध्य हो जाते हैं। खाप पंचायत रूपी यह स्वयं नियुक्त न्यायाधीश इतने शक्तिशाली होते हैं कि नागरिकों की संरक्षक पुलिस भी इनके आदेशों का उल्लघंन नहीं करती तथा आदेश के अनुपालन में विधि को अनदेखा कर अप्रत्यक्ष रूप से उनकी सहायता करती है। समाचार पत्रों में प्रकाशित अनेक मामलों में खाप पंचायतों ने सगोत्रिय विवाह तथा अन्तरजातीय विवाह के मामलों में अनेक विवाहित जोड़ों अथवा लड़कियों को मृत्युदण्ड दिया है। मनोज-बबली हत्याकांड के मामले में हरियाणा के जिला न्यायालय के द्वारा खाफ पंचायत के सदस्य सहित पांच अन्य व्यक्तियों को सम्मान के लिए हत्या का दोषी पाते हुए मृत्युदण्ड दिया गया जिसके उपरान्त हरियाणा में खाप महापंचायत की बैठक की गई जिसमें महापंचायत ने निर्णय लिया कि महापंचायत न्यायालय के द्वारा दण्डित व्यक्तियों की सहायता करेगी। साथ ही साथ महापंचायत ने सरकार से हिन्दु विवाह अधिनियम 1955 के अन्तर्गत संशोधन कर सगोत्रिय एवं अन्तरजातीय विवाह को वर्जित करने एवं अविधिक घोषित करने का प्रस्ताव भी रखा तथा संशोधन न करने के भयंकर दुष्परिणामों की धमकी भी दे दी। ये खाप पंचायतें इतनी शक्तिशाली हैं कि जनता के प्रतिनिधि एवं प्रजातंत्र के रक्षक राजनेता भी इनकी अविधिक मांगों एवं कार्यो में इनका साथ दे रहे हैं तथा इनकी हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 में संशोधन के अविधिक प्रस्ताव में सहयोग का आश्वासन भी दिया है। किसी भी अविधिक निकाय को दण्ड अधिरोपित करने का कोई विधिक अधिकार नहीं है। विवाह एक संस्कार के साथ ही साथ दो व्यक्तियों का व्यक्तिगत मामला भी है। यदि दो वयस्क व्यक्ति आपस में विवाह करना चाहते हैं तो सम्मान के नाम पर उनकी बलि चढ़ा देना आज के मानवाधिकारों के इस युग में न्यायोचित नहीं है तथा दण्डित व्यक्तियों के मानवाधिकारों का घोर उल्लंघन है, विशेष रूप से स्त्रियों के मानवाधिकारों का।

विवाह करने का अधिकार :-

विवाह प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तिगत मामला होता है परन्तु स्वतंत्रतापूर्वक अपने विवाह का निर्णय लेना एवं विवाह करना प्रत्येक व्यक्ति का अन्तरराष्ट्रीय मान्यता प्राप्त मानवाधिकार है। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा 1948 मानवाधिकारों के संबंध में प्रथम अन्तरराष्ट्रीय दस्तावेज है, जिसकी घोषणा मनुष्यों के प्रति किये जाने वाले अत्याचारों एवं भेदभाव पूर्ण कार्यो की रोकथाम की आकांक्षा से की गई थी। यह घोषणापत्र सभी मनुष्यों "स्त्री एवं पुरुषों" के गौरवमयी स्वतंत्रता एवं समानता के अधिकार को मान्यता प्रदत्त करता है तथा लिगं के आधार पर भेदभाव को वर्जित

करता है। घोषणा पत्र सभी वयस्क स्त्री पुरुषों को बिना किसी जाति, धर्म या राष्ट्रीयता की रूकावटों के आपस में, स्वतंत्र सहमति से विवाह करने तथा परिवार स्थापित करने का अधिकार प्रदत्त करता है। इस प्रकार वयस्क स्त्रियों को अपनी स्वतंत्र इच्छा से किसी भी व्यक्ति के साथ विवाह करने का मानवाधिकार प्राप्त है।

मानवाधिकारों के सबंध में सिविल एवं राजनैतिक अधिकारों की अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा 1966 भी प्रावधान करती है कि सभी वयस्क स्त्री व पुरुषों को स्वतंत्र सहमति से विवाह करने तथा कुटुम्ब स्थापित करने के अधिकार को मान्यता प्रदान की जाएगी।

स्त्री विरोधी सघन भेदभाव को प्रतिबन्धित करने हेतु अनेक अन्तरराष्ट्रीय उपस्कर होने के उपरान्त भी उनके प्रति भेदभाव पूर्ण व्यवहार सम्पूर्ण विश्व में अस्तित्व में था तथा है। अत: संयुक्त राष्ट्र संघ ने स्त्रियों के प्रति सभी प्रकार के भेदभाव को समाप्त करने के लिए प्रसंविदा 1979 जारी की। इस प्रसंविदा के माध्यम से समस्त सदस्य राष्ट्र पर दायित्व अधिरोपित किया गया है कि वह अपने राज्य क्षेत्रों में स्त्रियों के प्रति होने वाले भेदभाव व हिंसा को रोकने के लिए विधायी उपबंध करें। प्रसंविदा का अनुच्छेद 11(2) प्रतिपादित करता है कि सदस्य राष्ट्र विवाह और मातृत्व के आधार पर स्त्रियों के विरुद्ध भेदभाव को रोकने के लिए समुचित कदम उठाएंगे। सदस्य राष्ट्र विवाह और पारिवारिक संबंधों से जुड़े सभी मामलों में स्त्री विरोधी भेदभाव को समाप्त करने के लिए आवश्यक कदम उठायेगे तथा स्त्री–पुरुष समानता के आधार पर सुनिश्चित करेंगे 1. विवाह करने का समान अधिकार , 2. स्वतंत्रता पूर्वक अपने जीवन साथी का चयन तथा, 3. पूर्ण स्वतंत्रता और सहमति से विवाह करने या समान अधिकार। इस प्रकार प्रत्येक सदस्य राज्य पर कर्तव्य अधिरोपित किया गया है कि वह अपने राज्य क्षेत्र में प्रत्येक स्त्री को विवाह करने का अधिकार, स्वतंत्रता पूर्वक जीवन साथी का चयन तथा विवाह की स्वतंत्र व पूर्ण सहमति का अधिकार सुनिश्चित करेंगे।

अन्तरराष्ट्रीय मानवाधिकार तथा राष्ट्र के मूल अधिकारों का संश्लिष्ट स्वरूप का दिव्यमान स्वरूप भारत के संविधान के भाग तीन–चार में देखा जा सकता है। मानवाधिकार तथा मूलाधिकार के सम्मिश्रण के कारण संविधान सभा ने भारत के लोगों को जिसमें स्त्रियां भी सम्मिलित हैं, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, व्यवसाय, संगठन और जीवन व कार्य की स्वतंत्रता, विधि और नैतिकता के अधीन रखते हुए प्रदान की है। परन्तु भारतीय संविधान विवाह करने की स्वतंत्रता के अधिकार के संबंध में कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं करता है। परन्तु स्त्री एवं पुरुषों को समानता का अधिकार प्रदत्त करता है। अत: पुरुषों के समान ही स्त्रियां भी अपने सबंध में स्वतंत्र निर्णय लने का अधिकार रखती हैं। भारत में हिन्दू विवाह अधिनियम 1955, विशेष विवाह अधिनियम 1954, मुस्लिम विधि, ईसाई विवाह अधिनियम, आदि विधियां स्त्री एवं पुरुषों को स्वतंत्र सहमति से विवाह करने का अधिकार प्रदत्त करती हैं। हिन्दू विधि एवं मुस्लिम विधि में विवाह के लिए समान धर्म का होना आवश्यक है। क्योंकि भारत में आज भी विवाह व्यक्तिगत विधियों का विषय है। अत: दो हिन्दू स्त्री–पुरुष अथवा

दो मुस्लिम स्त्री–पुरुष चाहे उनकी जाति कोई भी है स्वतंत्र सहमति से विवाह कर सकते हैं। अन्य धर्म के विवाहों को भी विशेष विवाह अधिनियम 1954 के माध्यम से मान्यता प्रदत्त की गई है। परन्तु उपरोक्त समस्त विधिक उपबन्धों के उपरांत भी स्त्रियां विवाह के संबंधों में निर्णय लेने के विषय में प्राचीन, रूढ़िवादी, परम्पराओं से जकड़ी हुई हैं। विशेष रूप से हिन्दू एवं मुस्लिम धर्म के समुदायों में। यहां तक कि हिन्दू समुदायों में भी अन्तरजातोय विवाह, सगोत्रिय विवाह, एक ही गांवों में विवाह, विशेष गांवों के मध्य भाई बहन जैसे संबंधों के कारण विवाह वर्जित हैं। यद्यपि हिन्दू विधि में उपरोक्त वर्णित कारणों से सबन्धित वर्जनाओं का कोई प्रावधान नहीं है।

सम्मान के लिए हत्या को रोकने में न्यायालय की भूमिका:-

हत्या का कृत्य चाहे किसी भी कारण से किया गया हो भारतीय दण्ड संहिता की धारा 299 के अन्तर्गत आपराधिक कृत्य है। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश जस्टिस काटजू ने सम्मान के संरक्षा के लिए की गई हत्या को एक बर्बरता पूर्ण कृत्य कहा है। उच्चतम न्यायालय ने लता सिंह बनाम उत्तर प्रदेश के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि इस प्रकार की हत्या में कुछ भी सम्मानजनक नहीं है। यह केवल क्रूर, एवं समाजवादी मानसिकता वाले व्यक्तियों द्वारा किया गया बर्बरता पूर्ण तथा शर्मनाक कृत्य है जिसके लिए वे कठोरतम दण्ड के योग्य हैं। केवल कठोरतम दण्ड के द्वारा ही हम इस प्रकार के बर्बरतापूर्ण कृत्यों को रोक सकते हैं।

माया कौर, बलदेव सिंह सरदार बनाम महाराष्ट्र राज्य के मामले में भी उच्चतम न्यायालय ने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि ऐसे मामले में अभियुक्त मृत्यु दण्ड के योग्य होते हैं। हमें मजिस्ट्रेट को शक्तियां प्रदत्त करनी होंगी कि वह जातीय पंचायतों से भयभीत परिवारों को संरक्षण ‘देने के लिए उचित मात्रा में बल “पुलिस” मुहैया करायें।

परन्तु दिलीप तिवारी बनाम महाराष्ट्र राज्य के मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभियुक्त का मृत्युदण्ड का दण्ड 25 वर्ष के कारागार में परिवर्तित कर दिया तथा सम्मान की संरक्षा के लिए चार लोगों की नृशंस हत्या के बर्बरता पूर्ण कृत्य को असाधारण मामला मानने से इंकार कर दिया ।

दिनांक 17, जून 2010 को दिल्ली उच्च न्यायालय ने एक याचिका का निस्तारण करते हुए परिवार की इच्छा के विरुद्ध विवाह करने वाले युवक युवतियों की हत्याओं पर चिन्ता व्यक्त की तथा पुलिस द्वारा अन्तरजातीय अथवा परिवार की इच्छा के विरूद्ध विवाह करने वाले युवक युवतियों को सुरक्षा उपलब्ध न कराने के लिए पुलिस को कड़े शब्दों में फटकार लगाई । न्यायमूर्ति श्री एस० एन० ढींगरा ने कहा कि पुलिस पैसे के लिए लड़की के परिवार वालों से मिल जाती है और लड़की के भागने के मामलों को बलात्कार के मामले में परिवर्तित कर लड़के को बलात्कार के आरोप में जेल की सलाखों के पीछे भेज देते हैं और सम्मान के नाम पर लड़की की हत्या कर दी जाती है। सम्मान अथवा प्रतिष्ठा के संरक्षण हेतु हत्या के सभी मामलों में पुलिस किसी न किसी रूप में सम्मिलित होती है । उत्तर प्रदेश उच्च न्यायालय की लखनऊ पीठ ने एक विवाहित जोड़े को

सुरक्षा देने की मांग करने वाली याचिका की सुनवाई करते हुए प्रदेश के पुलिस महानिदेशक को निर्देश दिए कि प्रभा एवं जितेन्द्र को सुरक्षा उपलब्ध कराएं तथा निश्चित तिथि पर सुरक्षित रूप से उन्हें न्यायालय में प्रस्तुत करें ।

दिनांक 21 जून 2010 को सर्वोच्च न्यायालय ने एक गैर-सरकारी संस्था के द्वारा दायर लोक हित याचिका की सुनवाई करते हुए केन्द्र सरकार, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, पंजाब, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश सरकारों सहित नौ राज्यों को सम्मान के संरक्षण हेतु हत्या के बढ़ते मामलों एवं उनकी रोकथाम के लिए सरकारों के द्वारा किये गये उपायों की जानकारी न्यायालय को देने के लिए नोटिस जारी किया। न्यायालय के द्वारा जारी किये गये नोटिस के तुरन्त उपरान्त भारत के विधि मंत्री श्री वीरप्पा मोइली ने इस सम्बन्ध में अपना बयान जारी करते हुए कहा कि सम्मान अथवा प्रतिष्ठा के संरक्षण हेतु हत्या (ऑनर किलिंग) के अपराधों की रोकथाम के लिए केन्द्र सरकार अगले माह संसद के मानसून सत्र में विधेयक लाने की योजना बना रही है। बिल को अन्तिम रूप दे दिया गया है। विधि मंत्री ने कहा कि इस विधेयक के माध्यम से अनेक विधियों एवं संविधियों में संशोधित किये जाने का प्रस्ताव भी रखा जायेगा। सम्मान के संरक्षण हेतु हत्या के अपराध को राकने के लिए लंबे समय से चल रही मांग को ध्यान में रखते हुए, दिनांक 8 जुलाई 2010 को प्रधानमत्री मनमोहन सिंह की अध्यक्षता में ऑनर किलिंग को रोकने के लिए कानून बनाने का निर्णय लिया गया। यद्यपि कैबिनेट में विधेयक पर सहमति नहीं बन पाई। इसलिए जी. ओ. एम. बनाने का निर्णय लिया गया है। सरकार द्वारा उठाए गए कदम से ऐसा प्रतीत हो रहा है कि भारतीय विधायिका शीघ्र ही सम्मान के संरक्षण हेतु हत्यां के अपराध को रोकने के लिए विधि पारित कर समस्या का निवारण करने में सफल रहेगी। इस सम्बन्ध में लेखिका का मत है कि, विशेष विधि पारित करने के स्थान पर भारतीय दण्ड संहिता में धारा 304 ख के समान एक संशोधन करके इसको अपराध घोषित किया जाये क्यों कि भारतीय दण्ड संहिता, सम्मान के संरक्षण हेतु हत्या के अपराध को रोकने में सक्षम है। यदि पुलिस के द्वारा इसके उपबन्धों का उचित क्रियान्वयन किया जाये।

सम्मान के संरक्षण हेतु हत्या के अपराध की जो घटनाएं पिछले कुछ माह में सामने आई हैं सामान्यतया वे हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के उपबन्धों द्वारा वर्जित नहीं थीं। जो भी घटनाएं घटी हैं, मुख्यत: वे अन्तरजातीय विवाह (प्रतिलोम विवाह) का परिणाम हैं। भारत ने स्वतंत्रता के पश्चात विज्ञान, तकनीकी एवं औद्योगिक क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति की है। हिन्दू धर्म के अनुयायी भी इसमें पीछे नहीं हैं। परन्तु चहुंमुखी विकास एवं प्रगति के पश्चात भी प्रतिलोम विवाह के प्रति समाज की धारणा में कोई परिवर्तन नहीं आया है, विशेष रूप से बेटियों के द्वारा किये गये अन्तरजातीय विवाह के प्रति। पारिवारिक तथा जातीय सम्मान के लिए की गई हत्याओं में केवल स्त्रियों की हत्या ही नहीं की जाती है अपितु पुरुषों की हत्या भी की जाती है, परन्तु वह पुरुष हत्या करने वाले परिवार का बेटा नहीं होता है अपितु किसी दूसरे परिवार का बेटा (दामाद) होता है। जब कभी-भी उच्च वर्गीय परिवार का बेटा किसी निम्न वर्ग की कन्या से विवाह करता है तो परिवार के द्वारा केवल उसका बहिष्कार कर दिया जाता है, हत्या नहीं तथा कुछ समय पश्चात उसे परिवार के द्वारा पुन: स्वीकार

कर लिया जाता है। ऐसे विवाह का सम्पूर्ण दोष स्त्री पर ही मढ़ दिया जाता है और इस प्रकार वह वर परिवार के द्वारा प्रताड़ना का शिकार होती है। आज तक समाज में ऐसा एक भी उदाहरण देखने को नहीं मिलता है जिसमें पुत्र को उसके ही परिवार के द्वारा परिवार, जाति, समाज एवं समुदाय की प्रतिष्ठा के लिए दण्डस्वरूप मृत्युदण्ड दिया गया हो। पुत्र का बड़े से बड़ा कुकृत्य भी परिवार के सम्मान को कलंकित नहीं करता है परन्तु यदि एक पुत्री अपनी स्वेच्छा से किसी निम्न वर्ग के व्यक्ति से विवाह कर लेती है तो यह परिवार व समुदाय की प्रतिष्ठा को कलंकित करने वाला कृत्य माना जाता है और दण्ड भारतीय सामाजिक एवं जातीय व्यवस्था पर आधारित होता है। यद्यपि स्वतंत्रता के पश्चात, नगरों में रहने वाले व्यक्ति कठोर जातिय व्यवस्था से बाहर आये हैं जहां जाति का उतना महत्व नहीं है जितना प्राचीन हिन्दू समाज में होता था। जाति के प्रति लोगों की धारणा में परिवर्तन हुआ है परन्तु जब कभी भी प्रश्न विवाह का उत्पन्न होता है तब परिवार एवं समाज की सोच जाति के प्रति उतनी ही प्रबल हो जाती है जितनी प्रबल वह प्राचीन काल में थी। प्रत्येक व्यक्ति अपने बेटे एवं बेटी का विवाह अपनी ही जाति में करना पसन्द करता है।

यदि कुछ आपवादिक मामलों में परिवार अन्तरजातीय विवाह के लिए स्वीकृति प्रदान कर देते हैं अथवा करने के लिए तैयार हो जाते हैं तो सामाजिक वर्जनाएं उन्हें ऐसा करने से रोकने के लिए विवश कर देती हैं। जैसे जातीय पचांयतों का निर्णय। ग्रेटर नोएडा के चिटहरा गांव की पंचायत ने भाटी गोत्र की लड़की का विवाह बंसल गोत्र के लड़के से करने से रोकने के लिए आदेश जारी किया था। जबकि दोनों के परिवार विवाह के लिए तैयार थे। क्योंकि पुरानी परम्परा के अनुसार उन गावों में दूसरे गोत्र के लोग भाटी गोत्र की लड़कियों को बहन के समान मानते हैं। जबकि हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के अन्तर्गत इस प्रकार की वर्जना का कोई उल्लेख नहीं किया गया है।

उपरोक्त वर्णित अन्तरराष्ट्रीय घोषणापत्र एवं प्रसंविदाएं, भारत का संविधान एवं विधियां तथा संविधियां स्त्री एवं पुरुषों को समान अधिकार प्रदत्त करते हैं, लिंग पर आधारित भेदभाव को प्रतिबन्धित करते हैं तथा विवाह योग्य आयु के स्त्री-पुरुषों को स्वतंत्र सहमति से विवाह करने का आधिकार प्रदत्त करते हैं, परन्तु न केवल भारत में अपितु विश्व के अनेक राष्ट्रो में स्त्रियां सदैव अपने मानवाधिकारों से वंचित रही हैं और आज भी वंचित हैं तथा किसी न किसी रूप में भेदभाव का शिकार होती रहती हैं । विशेष रूप से विवाह के संबंध में उनका स्वतंत्र निर्णय आज भी अनेक राष्ट्रो में एवं भारत में भी परिवार व समुदाय के सम्मान पर कलंक माना जाता है और यदि वे ऐसा कोई स्वतंत्र निर्णय लेने का प्रयास करती हैं तो उन्हें पारिवारिक एवं सामाजिक प्रताड़नाओं का सामना करना पड़ता है इस रूप से ऐतिहासिक एवं वर्तमान भेदभाव की नीति के कारण स्त्रियां विधिक रूप से समान अधिकार प्राप्त होने के उपरान्त भी उनका.पूर्ण रूप से उपयोग नहीं कर पाती हैं।

निःसन्देह माता-पिता तथा परिवार के वरिष्ठ जन, अपने बच्चों के उज्जवल, समृद्ध एवं खुशहाल जीवन की कामना करते हैं। प्रत्येक माता-पिता अपनी पुत्री का विवाह अपने से उच्च एवं

प्रतिष्ठित परिवार में करने का प्रयास करते हैं जिससे उनकी पुत्री का भविष्य सुरक्षित एवं संरक्षित रह सके तथा उसे समाज एवं परिवार में मान एवं प्रतिष्ठा प्राप्त हो। परन्तु माता-पिता की यह धारणा एवं विवाह के संबंध में निर्णय लेने के एकमात्र अधिकार का महत्व उस समय अधिक महत्वपूर्ण तथा औचित्य पूर्ण था जब समाज में पर्दा प्रथा एवं बाल विवाह जैसी कुरीतियां व्याप्त थीं। पर्दा प्रथा के कारण स्त्रियों को शिक्षा से वंचित रखा जाता था। अवयस्क, अशिक्षित एवं सामाजिक क्रियाकलापों से अपरिचित तथा कुरीतियों से लड़ने में अक्षम स्त्रियां स्वयं के प्रति उचित निर्णय लेने में अक्षम व असमर्थ होती थीं जिस कारण उनके परिवार के बुजुर्ग व्यक्तियों का निर्णय महत्वपूर्ण होता था तथा उनके भावी भविष्य के लिए उचित भी। परन्तु वर्तमान समय में सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक तथा राजनैतिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है। स्त्रियों की स्थिति में सुधार हुआ है तथा वे अपने भविष्य की योजना तथा विवाह का स्वतंत्र निर्णय लेने में सक्षम हुई हैं। ऐसी परिवर्तित स्थितियों में भी उन्हें प्राचीन रूढ़ि एवं परम्पराओं में बांध कर रखना अत्यंत कठोर एवं अमानवीय कृत्य है तथा उनके प्रति अत्याचार व भेदभाव को बढ़ावा देने वाला है। समाज में एक तरफ बेटे को स्वच्छंद जीवन की स्वतंत्रता दूसरी ओर स्त्रियों को पुराने रीति-रिवाजों एवं परम्पराओं में बांध कर रखना स्त्रियों में बगावत की भावना उत्पन्न करती है तथा वह परिवार में निर्णय के विरुद्ध जाने के लिए मजबूर हो जाती है। अत: समय की मांग है कि स्त्रियों के प्रति समाज के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना चाहिए तथा निम्नलिखित सुझावों को अंगीकृत एवं क्रियान्वित कर समाज में स्त्रियों को समानता, स्वतंत्रता, एवं गरिमापूर्ण जीवन का मानवाधिकार सही अर्थों में उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

* * *

महिला अधिकार संरक्षण

(अमृतसर पुलिस के विशेष प्रयोग के संदर्भ में)

• *कुँवर विजय प्रताप सिंह*

स्वतंत्र भारत में नारी के उत्थान एवं उनके अधिकारों के संरक्षण के लिए वैधानिक तौर पर अनेक प्रयास किए गए लेकिन व्यावहारिक तौर पर उनके अनुपालन नहीं हो सकने के कारण आज भी आम महिला न्याय की मोहताज बनी हुई है। शाहबानो प्रकरण हो या रूप कुँवर प्रकरण या फिर प्रियदर्शिनी मट्टू रेप व मर्डर केस। हमारे ही समाज के दरिन्दों ने जिस कदर नारी को एक भोग की वस्तु समझकर उसका तिरस्कार किया है और हर रोज कर रहे हैं(वह एक सभ्य समाज के लिए कलंक है। रेप, मोलेस्टेशन, छेड़छाड़, उत्पीड़न, दहेज आदि घटनाओं ने नारी की स्थिति को झकझोर कर रख दिया है। इन समस्याओं से निपटने के लिए संगठनात्मक और वैयक्तिक तौर पर काफी प्रयास भी किए गए हैं। इसी कड़ी में अमृतसर पुलिस ने अपनी तरफ से प्रयास किए हैं जिसके सकारात्मक परिणाम सामने आए हैं।

सन् 2001 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या का लगभग 48 प्रतिशत अनुपात महिलाओं का है। अगर लिंग अनुपात की बात करें तो 1000 पुरुष पर सिर्फ 933 महिलाएँ हैं जो कि 1901 में 972 था। इससे साफ-साफ पता चलता है कि भारत में महिलाओं की स्थिति लिंगानुपात की दृष्टि से भी संतोषजनक नहीं है। पंजाब जैसे विकसित कहे जाने वाले राज्य में तो स्थिति और भी खराब है। यहाँ प्रति 1000 पुरुष पर महिलाओं की संख्या मात्र 876 है।

हमारे देश का अपराध-सर्वेक्षण यह प्रदर्शित करता है कि महिलाएँ न केवल सड़क पर बल्कि घर में भी सुरक्षित नहीं हैं। N.C.R.B. के 2006 के सर्वेक्षण के अनुसार महिलाओं के विरुद्ध हुए अपराधों में 32000 मर्डर, 19000 रेप, 7500 दहेज मृत्यु और 36,500 छेड़छाड़ की घटनाएँ शामिल हैं। इसके अतिरिक्त हजारों की संख्या में छेड़छाड़ और उत्पीड़न की घटनाएँ पुलिस के पास या तो दर्ज नहीं करायी जाती या दर्ज नहीं होती है। एक तरफ दिल्ली सबसे असुरक्षित शहर

• *उप-पुलिस महानिरीक्षक, (कार्यवाहक) पंजाब पुलिस मुख्यालय, चंडीगढ़*

के रूप में भारत में नंबर एक स्थान पर कायम है तो दूसरी तरफ पंजाब में भी महिला अपराध की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है।

1. महिला-अपराध एवं अमृतसर की स्थिति :

अमृतसर शहर उत्तर भारत क एक महत्वपूर्ण पर्यटन-स्थल के रूप में विकसित हो रहा है। यहाँ पर प्रतिदिन 3 लाख से ज्यादा व्यक्ति आते हैं। पुष्कर जैसे तीर्थ-स्थल पर अमेरिकन महिला के साथ छेड़छाड़ और गोआ में हाल ही में एक ब्रिटिश महिला पत्रकार के साथ हुए रेप ने भारत की 'अतिथि देवो भव' की गरिमा को चकनाचूर कर दिया है। इन घटनाओं को दृष्टिगत रखते हुए विभिन्न शहरों व जिलों की पुलिस ने अपने-अपने तरीके से कुछ-न-कुछ उपाय किए हैं क्योंकि यह पुलिस की प्राथमिक कार्य प्रणाली का अहम हिस्सा है।

अमृतसर पुलिस ने इस संबंध में कुछ नवीनतम प्रकल्प विकसित किए और कुछ पुराने प्रकल्पों को बदली हुई परिस्थितियों में नवीन रूप में लागू किया। इस दिशा में पी.आर.ओ. सिस्टम, महिला सहायता केन्द्र, परिवार-मंत्रणा केन्द्र, विशेष अन्वेषण प्रकोष्ठ आदि उल्लेखनीय हैं। इस क्रम में पुलिस को सामाजिक संस्थाओं जैसे रोटरी क्लब, अखिल भारतीय महिला कान्फरेन्स और विभिन्न स्कूल, कॉलेजों को भी शामिल किया गया जिससे इस प्रयास की सार्थकता में वृद्धि हुई।

2. अमृतसर शहर में महिला-अपराध की स्थिति :

इससे पहले कि पुलिस द्वारा उठाए कदमों पर विस्तार से गौर किया जाए शहर में महिला-अपराध की स्थिति को समझना जरूरी है। इसे निम्नलिखित सारणी की मदद से आसानी से समझा जा सकता है -

अमृतसर शहर में वर्ष 2005 से 2009 तक महिला अपराध की स्थिति :-

अपराध की प्रकृति	**2005**	**2006**	**2007**	**2008**	**2009**
रेप	5	13	21	15	15
हत्या	13	11	11	11	10
दहेज-मृत्यु	2	5	5	6	7
अपहरण	14	19	43	43	37
छेड़छाड़	6	6	22	25	15
इव टिजिंग	-	-	1	6	6
वैवाहिक उत्पीड़न	42	55	79	67	85
बदकारी	5	9	3	17	5
कन्या भ्रुण-हत्या	1	-	-	2	-
कुल	**68**	**117**	**185**	**192**	**170**

उपरोक्त सारणी से यह ज्ञात होता है कि अमृतसर शहर में हर तरह के अपराध जो कि महिलाओं से संबंधित है, घटित होते हैं। कई अपराध ऐसे भी हैं जो पुलिस तक रिपोर्ट नहीं होते जिसका एक कारण लोक-लज्जा है।

3. पी.आर.ओ. सिस्टम

अमृतसर पुलिस ने प्रत्येक थाने में महिला पुलिस अधिकारियों को बतौर पी.आर.ओ. नियुक्त किया जिनका काम थाने में आने वाले हरेक व्यक्ति की शिकायत सुनना और उस पर समुचित कार्रवाई सुनिश्चित करना है। यह व्यवस्था अप्रैल 2007 में लागू की गई। पब्लिक रिलेशन अफसर के रूप में सब-इंस्पेक्टर या सहायक सब-इंस्पेक्टर रैंक की महिला अधिकारियों की नियुक्ति हुई जिनकी सहायता के लिए तीन से लेकर पांच तक पुरुष और महिला कांस्टेबल तैनात किए गए। इनका मुख्य काम थाने में आने वाले हर शिकायती को सहज एवं सुगम न्याय प्रदान करने में मदद करना था। इनको मुकदमा दर्ज करने और उस पर कार्रवाई सुनिश्चित करने के अधिकार दिए गए। इस सिस्टम ने सदियों से चली आ रही मुंशी प्रथा को खत्म कर दिया और आम जनता को थाने में बेहिचक आने और रिपोर्ट लिखाने का एक माहौल तैयार किया। इसका सीधा फायदा महिलाओं को हुआ जो बेहिचक थाने में जाकर अपनी रिपोर्ट सुगमतापूर्वक दर्ज करा सकती थीं। इस व्यवस्था को जनसुलभ करने के लिए हर थाने के साथ अमृतसर रोटरी की एक महिला इकाई को जोड़ा गया। यह सिस्टम अमृतसर की जनता और शहर में आने वाले पर्यटकों के लिए विशेष तौर पर लाभदायक साबित हुआ।

4. महिला सहायता केन्द्र :-

महिला सहायता केन्द्र की स्थापना अप्रैल, 2009 में की गई जिसका मुख्य उद्देश्य आम महिलाओं को हर तरह की समस्या विशेषकर उत्पीड़न, छेड़छाड़, रैगिंग आदि घटनाओं में तुरंत सहायता उपलब्ध कराना था। यह केन्द्र पुलिस पोस्ट सर्किट हाउस अमृतसर के पास स्थापित किया गया जो कि शहर के बीचों-बीच है। इस प्रकोष्ठ में पर्याप्त संख्या में महिला पुलिस अधिकारियों की नियुक्ति की गई और इनको प्रभावी बनाने के लिए विशेष तौर पर वाहन एवं अन्य सुविधाएं प्रदान की गई। प्रतिदिन 20 से लेकर 25 तक शिकायतें इस प्रकोष्ठ में आने लगी। यहाँ एक विशेष फोन नंबर 1091 और एक मोबाइल फोन नंबर 9781101091 स्थापित किया गया जिस पर कोई भी महिला या अन्य व्यक्ति महिलाओं के खिलाफ हो रहे जुर्म की सूचना दे सकता था। इस केन्द्र की लोकप्रियता को देखते हुए एक हिंदी धारावाहिक में इस केन्द्र की गतिविधियों को दर्शाया गया।

5. परिवार-मंत्रणा केन्द्र

अमृतसर पुलिस ने वर्ष 2009 में कम्युनिटी पुलिस योजना के तहत इस प्रकोष्ठ का पुनर्गठन किया। इसका मुख्य उद्देश्य है पारिवारिक झगड़ों का सौहार्दपूर्ण माहौल में निपटारा करना। इस प्रकोष्ठ में विशेष तौर पर पति-पत्नी और इसी तरह के दूसरे झगड़ों का पारिवारिक माहौल में

निष्पादन होता है जिसका मुख्य उद्देश्य परिवार को टूटने से बचाना है। परिवार चूंकि समाज की मूलभूत इकाई होती है और परिवार के टूटने से समाज टूटता है और ऐसी स्थिति में हम एक स्वस्थ राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकते। अत: इस विचारधारा की परिधि में परिवार-मंत्रणा प्रकोष्ठ की भूमिका अत्यंत सराहनीय रही है। यहाँ तक कि पुलिस थानों में धारा 498 A के तहत दर्ज मुकदमों का भी शांतिपूर्वक निपटारा मध्यस्थता के जरिए इस प्रकोष्ठ के द्वारा सफलतापूर्वक कराया जाता है।

इस पूरे प्रयास में शहर की सामाजिक संस्थाओं का सराहनीय योगदान रहा है। सामाजिक संस्थाओं के सहयोग से इस प्रयास को नई दिशा एवं नई गति मिली। इन संस्थाओं को विशेष रूप से एक रूटीन के तहत उस प्रकोष्ठ के साथ जोड़ा गया जो कि निम्नलिखित सारणी से स्पष्ट है –

दिन	**संस्था**
सोमवार	अखिल भारतीय महिला कॉन्फरेन्स
मंगलवार	महिला शक्ति
बुधवार	अमृतसर रोटरी
गुरुवार	अखिल भारतीय मानवाधिकार संगठन
शुक्रवार	अमृतसर विकास मंच
शनिवार	अमृतसर बार एसोसिएशन

इस प्रकार प्रतिदिन इस प्रकोष्ठ में एक सामाजिक संस्था का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया गया जिससे इस प्रकोष्ठ की कार्य प्रणाली और इसके संस्थागत विकास में मदद मिली।

इसके अतिरिक्त विभिन्न स्कूलों एवं कॉलेजों में भी इस प्रकोष्ठ की सहायक संस्थाएँ खोलने का कार्य आरंभ हुआ। इस क्रम में निम्नलिखित स्कूलों ने सराहनीय योगदान दिया –

(i) डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, अमृतसर

(ii) भवन एस.एस. पब्लिक स्कूल, अमृतसर

इस तरीके से अमृतसर पुलिस ने पारिवारिक मंत्रणा के द्वारा झगड़े सुलझाकर एक सराहनीय कदम उठाया जिसकी समाज में हर स्तर पर सराहना की गई।

6. महिला-अपराध अन्वेषण प्रकोष्ठ :-

यह विशेष प्रकोष्ठ महिलाओं के विरूद्ध दर्ज मुकदमों के अनुसंधान के लिए पुनर्गठित किया गया। इस प्रकोष्ठ में विशेष रूप से प्रशिक्षित किए गए महिला पुलिस अधिकारियों की नियुक्ति की गई जिसका उद्देश्य महिला-अपराध से संबंधित मुकदमों का त्वरित एवं गुणवत्ता के साथ निपटारा करना था। इस प्रकोष्ठ में विशेष रूप से निम्नलिखित प्रकार के मुकदमों का निपटारा किया जाता है –

(1) विवाह-उत्पीड़न
(2) दहेज
(3) दहेज-मृत्यु
(4) बलात्कार
(5) छेड़छाड़ आदि।

इस प्रकोष्ठ की निगरानी जिला पुलिस प्रमुख द्वारा स्वयं की जाती है ताकि ऐसे घिनौने अपराधों को करने वाले व्यक्तियों को सख्त से सख्त सजा दिलायी जा सके। वैसे तो भारत के हर बड़े शहर या जिले में किसी न किसी रूप में इस तरह के प्रकोष्ठ काम करते हैं। लेकिन अमृतसर पुलिस ने स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप एवं एक प्रमुख पर्यटन स्थल के रूप में अमृतसर को महत्ता को मद्देनजर रखते हुए इस प्रकोष्ठ को पुनर्गठित किया।

7. स्नैचिंग : एक गंभीर अपराध

आजकल हर बड़े शहर में महिलाओं से पर्स छिनने और चेन झपटने की घटनाओं में निरंतर वृद्धि हो रही है। अमृतसर शहर भी इससे अछूता नहीं है। अत: पुलिस ने इस समस्या के हल के लिए विशेष दस्ते का गठन किया जिसका नाम क्राइम स्टॉपर्स रखा गया। इस छापामार दस्ते का मुख्य उद्देश्य सड़क पर महिलाओं व आम नागरिकों की सुरक्षा सुनिश्चित करना है। स्नैचिंग एक ऐसा अपराध है जो कि तुरंत ही समाज में दहशत का माहौल पैदा कर देता है। विशेषकर स्थिति तब और गंभीर हो जाती है जब पर्यटन के ख्याल से आयी हुई महिला का पर्स छीन लिया जाता है जिसमें उसके गहने, नगद व यात्रा-टिकट भी होता है। ऐसे गंभीर अपराध को रोकने के लिए पुलिस ने सकारात्मक कदम उठाये जिनके परिणामस्वरूप ऐसी घटनाओं में निरंतर गिरावट आती गई और सड़क पर आम महिला अपने आपको सुरक्षित महसूस करने लगी। इससे एक तरफ जनता को सुरक्षा मिली तो दूसरी तरफ आम जनता में पुलिस की छवि में काफी सुधार हुआ।

8. उपसंहार -

अमृतसर पुलिस द्वारा उठाए गए सामान्य किन्तु महत्वपूर्ण कदमों से शहर में महिलाओं की स्थिति में काफी सुधार हुआ। महिला-अधिकार-संरक्षण के क्षेत्र में एक नई जागृति आई। इस पूरे प्रकरण में विशेष बात यह रही कि सभी उपक्रमों में आम जनता एवं सामाजिक संस्थाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की गई जिससे इस अभियान को विशेष बल मिला। साथ ही अंग्रेजों के समय की चली आ रही व्यवस्था के स्थान पर एक ऐसी व्यवस्था कायम हुई जिसमें कि मानवीय पुट हर कदम पर मौजूद रहा। एक आम महिला अपने घर में और सड़क पर सुरक्षित महसूस करने लगी और अपने अधिकारों के प्रति जागृत हो गई। इससे एक नए माहौल का सूत्रपात हुआ। लेकिन आवश्यकता है इन सभी उपक्रमों को यथावत स्थापित करने की ताकि इसका संस्थागत विकास हो सके और आगे आने वाले समय में इससे महिलाओं को और भी सहायता मिल सके। साथ ही यहां के अच्छे प्रयोगों को देश के अन्य शहरों में भी लागू किया जा सकता है।

* * *

भारतीय शिक्षा का वर्तमान सन्दर्भ : दशा और दिशा

• प्रो० विद्याशंकर शुक्ल

भारत जैसे विकासशील देश में शिक्षा से व्यापक अपेक्षाएँ रखी गयी थीं और अब इक्कीसवीं सदी में जब अन्तरराष्ट्रीय परिदृश्य में नये कौशलों की मांग हो रही है तो उस प्रभाव से भी हमारा समाज अछूता नहीं हैं। भारत इस नई चुनौती को भी स्वीकार कर रहा है परन्तु भारतीय समाज अनेक स्तरों पर जीवित है जिसमें आर्थिक, सामाजिक और भौगोलिक स्तरभेद तथा विविधताएँ प्राप्त होती हैं। जैसा कि सर्वविदित है अभी भी देश से निरक्षरता का कलंक नहीं मिट सका है। परन्तु पाठशाला, गुरुकुल और मदरसे वाली संस्थाओं के देश में सदैव यह स्थिति नहीं रही। धर्मपाल (1983) के ऐतिहासिक अध्ययन से यह पता चलता है कि वर्ष 1800 में इंग्लैंड की अपेक्षा अधिक समृद्ध शैक्षिक परम्परा हमारे पास विद्यमान थी। अंग्रेजी शासन ने भारतीय उपनिवेश का न केवल आर्थिक दोहन किया अपितु शैक्षिक दृष्टि से भी पंगु बना दिया। योजनाबद्ध ढंग से ज्ञान की देशज परंपरा की उपेक्षा और मानसिक निर्भरता बढ़ाना अंग्रेजों की शिक्षा पद्धति का प्रमुख आशय और उद्देश्य था। स्वतंत्र भारत में शिक्षा की जाँच पड़ताल हेतु राधाकृष्णन, मुदलियार और कोठारी के नेतृत्व में स्थापित आयोगों के प्रतिवेदनों में भारतीय शिक्षा में अनेक कमियों और कठिनाइयों की ओर सतत ध्यान आकृष्ट कराया गया है। इसके बाद भी राष्ट्रीय शिक्षा नीति, राममूर्ति समिति और अब राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद की पहल भी हुई है।

संवैधानिक रूप से शिक्षा अब समवर्ती सूची में है। फलत: राज्यों के दायित्व के साथ केन्द्रीय सरकार की इसके आयोजन में भूमिका महत्वपूर्ण हो चली है। शिक्षा को संविधान संशोधन द्वारा मौलिक अधिकार का दर्जा मिलने से नई आशा बंधी है। निरक्षरता का समापन और प्राथमिक शिक्षा की प्राप्ति सबको सुलभ हो यह लक्ष्य प्राप्त करने के लिए सरकार प्रतिबद्ध है। वर्ष 2001 की जनगणना में महिलाओं की साक्षरता (शहर 72.99%, गाँव 46.58%) पुरुषों (शहर 86.42%, गांव 71.18%) से कम है। मात्रात्मक दृष्टि से अवश्य सुधार हुआ है परंतु गुणवत्ता की दृष्टि से

• *प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, केन्द्रीय हिंदी संस्थान, क्षेत्रीय केंद्र : शिलांग (मेघालय)*

स्थिति ठीक नहीं कही जा सकती है। स्कूलों में शिक्षा संचालित करने की प्रक्रिया अत्यंत विविधतापूर्ण है। शिक्षा का विचार करते समय उसकी 'प्रासंगिकता' और अध्ययन सामग्री का बच्चों पर 'भार' के प्रश्न आज विशेष ध्यान आकृष्ट कर रहे हैं।

भारत में स्कूली शिक्षा प्राइमरी, मिडिल और सेकेण्डरी स्तर को मिला कर कक्षा 1 से कक्षा 12 तक विस्तृत है। इसके अतिरिक्त अनौपचारिक शिक्षा की भी व्यवस्था है। सरकारी और गैर-सरकारी विद्यालयों को तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो काफी विसंगति दिखती है। डीपीईपी कार्यक्रम के अंतर्गत विद्यालयों में गुणात्मक सुधार का प्रयास हुआ जो अब सर्वशिक्षा अभियान में समाविष्ट हो गया है। गैर सरकारी विद्यालयों में छात्रों की अध्ययन आदतें और मानसिक स्वास्थ्य सरकारी विद्यालयों के छात्रों की अपेक्षा अच्छा पाया गया है (नागप्पा तथा वैंकटैया, 1999 वानी, 1995)। लड़कों और लड़कियों के लिए स्वतंत्र विद्यालयों के अतिरिक्त सहशिक्षा वाले विद्यालय भी हैं जिनमें छात्रों का निष्पादन अपेक्षाकृत अच्छा पाया गया है (क्षेत्रपाल, 1999)।

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय ने वैकल्पिक शिक्षा व्यवस्था के लिए पहल की जिसमें विद्यालयों से बाहर रहने वाले स्कूली आयु वर्ग के बच्चों को अवसर प्राप्त होता है। साथ ही शिक्षा को अधिकाधिक समावेशपूर्ण बनाने के लिए प्रयास आरंभ हुए हैं। विशिष्ट बच्चे, जो शारीरिक अशक्तता के कारण सामान्य शिक्षा सुविधाओं का लाभ नहीं उठा पाते, उनके लिए शिक्षा की ओर भी ध्यान देना आरंभ हुआ है।

यदि शिक्षा के संदर्भ पर विचार करें तो हमें कई प्रकार की विविधताएँ और विसंगतियाँ दिखती हैं। घर और विद्यालय के बीच भाषा और सांस्कृतिक भिन्नता का बच्चों की विद्यालय में उपलब्धि पर गुणात्मक प्रभाव पड़ता है (शेषाद्रि तथा रमामणि, 1995)। इसका एक पक्ष विद्यालय में प्रयुक्त शिक्षा का माध्यम भी है। अध्ययनों से पता चलता है हिंदी भाषी क्षेत्रों में हिंदी माध्यम के छात्रों की अपेक्षा अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के छात्रों से निम्न स्तर का निष्पादन प्रदर्शित करते हैं (तिवारी तथा श्रीवास्तव, 2004)। मातृभाषा और विद्यालय की भाषा का संबंध सूत्रों की शैक्षिक उपलब्धि की दृष्टि से विचारणीय है।

स्कूली शिक्षा को प्रभावी बनाने में अध्यापकों की विशिष्ट भूमिका होती है। उनकी भूमिका बहुआयामी है, परन्तु वास्तविक स्थिति संतोषप्रद नहीं है। "पब्लिक रिपोर्ट ऑन बेसिक एजुकेशन" (प्रोब, 1999) ने समय और प्रयास की दृष्टि से अध्यापन की गुणवत्ता में गंभीर गिरावट दर्ज की है। अध्यापकों में उत्तरदायी न होने की शिकायत के साथ विद्यालयों में आवश्यक सुविधाओं का अभाव, अध्यापक-छात्र का उच्च अनुपात तथा प्रशासकीय काम का बोझ अनेक तरह की कठिनाइयाँ पैदा करती हैं। आज के अर्थ प्रधान युग में अध्यापकीय जीवन भी क्रमशः तनावपूर्ण होता जा रहा है।

शैक्षिक नीति प्रशिक्षित अध्यापक रखने पर बल देती है। दुर्भाग्यवश अध्यापकों को तैयार करने की प्रक्रिया की गुणवत्ता स्थापित तथा सुरक्षित करना जटिल चुनौती बन चुका है। अध्यापक

प्रशिक्षक के महाविद्यालय गुणवत्ता को सुनिश्चित नहीं करते। सेवा काल के दौरान प्रशिक्षण की व्यवस्था पर्याप्त नहीं है। यथार्थ के धरातल पर प्रशिक्षण पूरी तरह प्रभावी नहीं सिद्ध हो रहा है। डीआईइटी की पहल से सुधार का प्रयास आरंभ हुआ है परंतु विशेष सफलता नहीं मिली है। राष्ट्रीय अध्यापक प्रशिक्षण परिषद ने 1995 में स्थापित होने के बाद अध्यापक प्रशिक्षण पर नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया है। उसके फलस्वरूप उसकी गुणवत्ता सुनिश्चित करने की दिशा में अच्छे परिणाम मिले हैं।

विद्यालय में चलने वाली शिक्षा प्रक्रिया ने अपनी कमियों की ओर विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट किया है। यशपाल समिति ने बच्चों के बस्ते के भार की चिन्ता सामने लाकर शिक्षा में सुधार के लिए आह्वान किया है। कक्षा में नवाचार का विशेष स्थान है। यदि सामान्यत: प्रचलित पद्धति को देखें तो स्मरण पर जोर, अध्यापकों में एक प्रकार की उच्चता और प्रभुत्व पर बल आम बात है। सकारात्मक बदलाव लाने की बात समय-समय पर की जाती रही है। विगत वर्षों में शैक्षिक प्रौद्योगिकी में बदलाव, विशेषत: संगणक के आने से आया है। साथ ही दूरदर्शन ने शैक्षिक चैनल आरंभ किया है। 'ज्ञान दर्शन' द्वारा शिक्षा प्रधान कार्यक्रम उपलब्ध कराये जा रहे हैं।

शिक्षा का क्षेत्र निश्चित रूप से विस्तृत हुआ है। उमसें पूर्व विद्यालयी शिक्षा भी सम्मिलित हो गयी है जो 0-6 वर्ष आयु वर्ग में आने वाले बच्चों हेतु है। विद्यालय के शैक्षिक जीवन की तैयारी के रूप में खेल प्रधान माध्यम से बच्चों के विकास का प्रयास किया जाता है। सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से पिछड़े बच्चों हेतु आईसीडीएस के कार्यक्रम के अन्तर्गत पोषाहार तथा संज्ञानात्मक उद्दीपन की व्यवस्था की गयी है। आंगनवाड़ी यदि अच्छी तरह चलती है तो बच्चों का विकास अच्छा होता है (सूद, 1999)।

विद्यालय में अध्ययन का बच्चें के बौद्धिक विकास पर विशेषत: जटिल मानसिक प्रक्रियाओं के विकास पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। दाश तथा मोहान्थी (1996) ने उड़ीसा के जनजातीय क्षेत्रों में स्कूल जाने वाले तथा न जाने वाले बच्चों की तुलना में विद्यालय का सकारात्मक प्रभाव पाया था। हालाँकि भिन्नता की मात्रा सीमित थी। विद्यालयों में छात्रों की उपलब्धि विद्यालयों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है और देश के विभिन्न भागों में पर्याप्त भिन्नता पायी गयी है (गौतम, 2002)। एक अध्ययन में जैन तथा अरोरा (1995) ने यह परिणाम पाया कि सुयोग्य अध्यापक और उनका विद्यालय में बना रहना बच्चे के निष्पादन को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। गोविन्दा तथा वर्गीज (1993) का अध्ययन जो मध्य प्रदेश में हुआ था उससे पता चलता है कि न्यूनतम शैक्षिक स्तर की दृष्टि से छात्रों की उपलब्धि-सीमित थी। विश्व बैंक (1997) के मूल्यांकन से यह स्पष्ट हुआ कि चौथी पांचवी कक्षा में बच्चे पाठ्यक्रम का आधे से भी कम भाग तैयार कर पाते हैं। यह स्थिति चिन्तनीय है।

विद्यालय के प्रसंग में छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य पर भी विचार आवश्यक है। कपूर ने अपने विश्लेषण में यह पाया कि प्रति हजार 50 से लेकर 150 बच्चों में मानसिक स्वास्थ्य की

समस्या विद्यमान रहती है। इनके कारण कई हैं : बच्चों का पालन पोषण का प्रकार, पारिवारिक अंत:क्रिया, मित्र मंडली, बच्चों की प्रकृति या स्वभाव (टेंपेरामेंट) तथा परिवेश से मिलने वाला समर्थन। बच्चों में समस्यात्मक व्यवहार उनके सामाजिक सक्षमता पर निर्भर करता है (सूद, 1997)। विद्यालयों की परीक्षा प्रणाली भी बच्चों के लिए तनाव का प्रमुख कारण बनती जा रही है

विगत वर्षों में मूल्य शिक्षा को लेकर विशेष रूचि दिखाई गयी है। विद्यालयों के पाठ्यक्रम प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से उत्सुकता, ईमानदारी, सच्चाई, समानता, स्वतंत्रता, परिश्रम तथा पर्यावरण रक्षा जैसे प्रश्नों को उठाते हैं (जुनेजा, 2001)। कहना न होगा कि शिक्षा का उद्देश्य मूलत: एक मूल्यसम्पन्न मनुष्य बनाना है अन्यथा वह पशु समान ही रहता है : - "विद्याविहीन: पशु:"।

आज के विश्व के सम्मुख उपस्थित प्रश्नों का उत्तर देने में नई पीढ़ी अधिक समर्थ बन सके इसके लिए मूल्यों पर ध्यान देना आवश्यक है। परन्तु मूल्यों का विकास जीवन में होने वाले अनुभवों से जुड़ा है, कोई पाठ्य विषय उसका स्थान नहीं ले सकता। विद्यालय में अध्यापकों का व्यवहार, छात्रों के साथ उनकी अंत:क्रिया और परिवेश पर निर्भर करता है। इस दिशा में विशेष प्रयास अपेक्षित हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि स्कूली शिक्षा की जड़ें सुदृढ़ हुई हैं, उसका विस्तार हुआ है परंतु उसे गुणात्मक रूप से समृद्ध करना आवश्यक है। सामाजिक-आर्थिक विविधता, क्षेत्रीय विविधता और बदलते वैश्विक परिदृश्य में इसे सुव्यवस्थित करने के लिए संसाधनों का निवेश और राजनैतिक इच्छाशक्ति आवश्यक है। इस प्रयास में देशज ज्ञान और संस्कृति की परंपरा के साथ संतुलन भी आवश्यक होगा।

* * *

मानव अधिकार और उपभोक्ता अधिकार

• डॉ शीतल कपूर

नवीन प्रौद्योगिकी एवं औद्योगिक विकास से युक्त वाणिज्यिक संस्कृति ने उपभोक्ताओं की स्थिति में मौलिक परिवर्तन तो ला दिया है। पर फिर भी हम देखते हैं कि आज के उपभोक्ताओं को विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है जैसे कि वस्तुओं का अपमिश्रण, निकृष्ट गुणवत्ता, अनुचित माप, सेवा एवं उपभोक्ताओं के प्रति शिष्टाचार में कमी तथा भ्रामक विज्ञापन आदि। उपभोक्ता के अधिकारों का हनन ही नहीं होता है अपितु उसके मानव अधिकारों का भी शोषण होता है।

हमारे भारत में उपभोक्ता की स्थिति अत्यधिक,दयनीय है। भारतीय उपभोक्ता धैर्य और सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति है। वह भाग्यवादी है। त्रुटिपूर्ण माल की खरीद और प्रदान की गई सेवा में कमी के लिए वह भाग्य को दोषी ठहराने में अधिक विश्वास रखता है या उसे पूर्वजन्म के पाप का फल मान लेता है। एक लम्बे समय से उपभोक्ता बड़ी कम्पनियों द्वारा ठगी का शिकार होता रहा है। 'बिका हुआ माल वापिस नहीं होगा', इस प्रकार की अनैतिक, अवैध और एकपक्षीय घोषणा विक्रेता द्वारा की जाती है। जबकि विकासशील देशों में जहाँ उपभोक्ता अपने अधिकारों के लिए जागरूक है वहाँ विक्रेता द्वारा ऐसा कहा जाता है कि ''यदि आप हमारे सामान से सन्तुष्ट नहीं हैं तो आप उसे हमारे पास एक माह के अंदर बदलने के लिए या अपना पैसा वापिस लेने के लिए ला सकते हैं। यह विकसित देशों में उपभोक्ताओं की जागरूकता के स्तर को स्पष्ट करता है। भारत में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 उपभोक्ता की सम्प्रभुता को वैधानिक मान्यता प्रदान करता है। इसमें उपभोक्ताओं के हितों के श्रेष्ठतर संरक्षण के लिए उपभोक्ता परिषदों की तथा उपभोक्ताओं के विवादों का निपटारा हेतु प्रतितोष अभिकरण की स्थापना का उपबंध किया गया है। अधिनियम न सिर्फ उपभोक्ता अधिकारों को निर्दिष्ट करता है बल्कि हानि या क्षति की दशा में उचित अनुतोष तथा प्रतितोष की भी व्यवस्था की गई है।

• *सहायक आचार्य, कमला नेहरू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय*

उपभोक्ता आन्दोलन का उद्भव एवं विकास

उपभोक्तावाद की धारणा उतनी ही प्राचीन है जितनी बाज़ार व्यवस्था । तकनीकी विकास, आय और शैक्षणिक स्तर में निरन्तर वृद्धि, उत्पादों में विविधता, विपणन गतिविधियों में बारीकी और संसाधनों एवं आवश्यक वस्तुओं में कमी ने उपभोक्ता आन्दोलन को अपरिहार्य बना दिया है। विश्व में विकासशील देश जैसे अमेरिका, निहोन (जापान), इंग्लैण्ड एवं यूरोप में उपभोक्ता हितों के प्रति जागरूकता का कारण उपभोक्ता आन्दोलन की सशक्तता है जबकि अविकसित एवं विकासशील देशों में उनकी कुछ मूलभूत सामाजिक एवं आर्थिक समस्याएं जैसे निर्धनता, अशिक्षा, क्रयशक्ति में कमी और उपभोक्ता अधिकारों के बारे में अज्ञानता आदि है।

उपभोक्ता आन्दोलन का वर्तमान स्वरूप उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में सरकारों द्वारा उठाये गये कदमों तथा समाज सुधारकों विशेषकर उपभोक्तावादियों के प्रयास ने उपभोक्ता आन्दोलन को तीव्र गति प्रदान की है। उपभोक्ता आन्दोलन के प्रति जनमत तैयार करने का श्रेय राल्फ नाडर को जाता है जिनकी किताब "unsafe at any speed" ने मोटरकार एवं टायर के निर्माताओं एवं व्यापारियों के विरूद्ध एकाकी संघर्ष आरम्भ किया । इसके बाद अमेरिका में उपभोक्ता कल्याण संगठनों का विकास हुआ। अन्य देश जैसे बेल्जियम, इटली, स्वीडन, डेनमार्क, नीदरलैण्ड, नार्वे, पोलैण्ड, आदि में भी उपभोक्ता आंदोलन का सूत्रपात हुआ।

अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति श्री जान एफ केनेडी ने 15 मार्च, 1962 को उपभोक्तावाद की महत्ता पर जोर देते हुए कांग्रेस के समक्ष कंज्यूमर्स बिल ऑफ राइट्स की रूपरेखा प्रस्तुत की। बिल ऑफ राइट्स में निम्नलिखित उपभोक्ता अधिकारों की आवश्यकता पर बल दिया गया था :-

1. सुरक्षा का अधिकार
2. सूचित किए जाने का अधिकार
3. चुनने का अधिकार
4. सुने जाने का अधिकार

9 अप्रैल, 1985 को संयुक्त राष्ट्र ने अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर उपभोक्ता नीति के विकास के लिए मार्गदर्शक सिद्धान्तों का विकास किया जो उपभोक्ता आन्दोलन की महत्वपूर्ण सफलता है। सयुंक्त राष्ट्र ने उपभोक्ता अधिकारों में चार और अधिकारों को सम्मिलित कर दिया ।

1. क्षतिपूर्ति का अधिकार
2. उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार
3. स्वस्थ पर्यावरण का अधिकार
4. आवश्यकताओं का अधिकार

भारत में उपभोक्ता आन्दोलन

भारत में उपभोक्ता संरक्षण की नीति नई नहीं है। वैदिककालीन साहित्य, स्मृतियों, महाभारत तथा कौटिल्य की पुस्तक 'अर्थ शास्त्र' में भी इसका उल्लेख मिलता है । जहाँ उचित मूल्य, स्पष्ट बाट एवं माप और उचित व्यापारिक लेन-देन के सम्बन्ध में उपभोक्ता हितों का संरक्षण सर्वोपरि माना गया है। सरकार उपभोक्ता हितों की संरक्षक है और विभिन्न कानूनों द्वारा उपभोक्ताओं के अधिकारों का संरक्षण किया जाता है। 24 दिसम्बर, 1986 को उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम पारित हुआ। भारत सरकार ने इस दिन को 'राष्ट्रीय उपभोक्ता दिवस' के रूप में मनाये जाने का निर्णय लिया है।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986

यह अधिनियम उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा का श्रेष्ठतर कदम है। इस अधिनियम की धारा 2 (1) (घ) के अनुसार उपभोक्ता का तात्पर्य किसी भी ऐसे व्यक्ति से है जो किसी ऐसे प्रतिफल के लिए सामान खरीदता है, जिसका भुगतान कर दिया गया है या भुगतान करने का वायदा किया गया है। किसी ऐसे प्रतिफल के लिए सेवाएं किराए पर लेता है या प्राप्त करता है जिसका भुगतान कर दिया गया है या भुगतान का वायदा किया गया है या आंशिक भुगतान कर दिया गया है। इस प्रकार उपभोक्ताओं में निम्नलिखित व्यक्ति शामिल हैं :

1. सामान का क्रेता अथवा सामान का खरीदार
2. सामान का उपयोगकर्ता
3. सेवाएँ किराए पर लेने वाला व्यक्ति
4. सेवाओं का लाभग्राही

अतः पुनः बिक्री के लिए सामान या सेवाएं खरीदने वाला व्यापारी या व्यवसायी 'उपभोक्ता' नहीं है। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम में किए गए संशोधन के अनुसार 2002 में ऐसे व्यक्तियों को उपभोक्ता की परिभाषा से निकाल दिया गया है, जो वाणिज्यिक उद्देश्य के लिए सामान या सेवाएं खरीदते हैं। तथापि वाणिज्यिक उद्देश्य में निम्नलिखित शामिल नहीं है:-

- यदि कोई व्यक्ति या परिवार, व्यावसायिक इस्तेमाल के लिए सामान खरीदता है तो उसे 'उपभोक्ता' माना जायेगा ।
- स्वः नियोजन के साधन द्वारा आजीविका अर्जित करने के उद्देश्य के लिए ली गई सेवाएँ।
- अधिनियम के अन्तर्गत उपभोक्ता विवादों के शीघ्र निस्तारण एवं प्रतितोष देने के लिये जिला, राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर अर्ध न्यायिक प्रतितोष अभिकरणों की स्थापना की गयी है। इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अन्तर्गत ज़िला फोरम ऐसे विवादों का निपटारा करेगी जहाँ प्रतिकर का मूल्य बीस लाख रूपये से अधिक नहीं होता। राज्य

आयोग 20 लाख से 1 करोड़ तक के परिवादों को हल करती है तथा 1 करोड़ से ऊपर के मामलों की सुनवाई राष्ट्रीय आयोग द्वारा की जाती है। ज़िला फोरम के आदेश से अगर कोई व्यक्ति सन्तुष्ट नहीं है तो वह राज्य आयोग में अपील दायर कर सकता है तथा अगर वह राज्य आयोग से भी असन्तुष्ट है तो राष्ट्रीय आयोग द्वारा दिये गये आदेश के विरूद्ध अपील के लिए उच्चतम न्यायालय में जा सकता है। 2010 तक 33 लाख केस उपभोक्ता अदालतों में दायर हुए जिसमें से लगभग 90 प्रतिशत सुलझाए गए हैं।

मानव अधिकार और उपभोक्ता अधिकार

जब-जब बड़ी कंपनियाँ अधिक मुनाफा कमाने हेतु चालू माल या नकली माल बेचती हैं, या सेवाएँ जैसे चिकित्सा, बैंकिंग, बीमा, डाक सेवा, रेलवे, हवाई यात्रा में कमी करती हैं तो व्यक्ति के उपभोक्ता अधिकार का ही नहीं बल्कि उसके मानवीय अधिकार का भी हनन होता है। कई बार लोग विज्ञापनों के बहकावे में आकर बिना सोचे-समझे बैंक लोन, क्रेडिट कार्ड, डेबिट कार्ड इत्यादि ले लेते हैं और बाद में उन बैंकों और ऋण देने वाली कंपनियों के चंगुल में फंस जाते हैं। कई किस्से सामने आए हैं जहाँ पर बैंकों ने रूपये वसूली के लिए लोगों के घर गुंडों को भी भेजा है, जो कानूनी तौर पर गलत है। इसी कर्जे में डूबे लोगों ने ऋण न उतार पाने की हालत में आत्महत्या भी की है। इसीलिए उपभोक्ताओं को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने की बहुत जरूरत है। अधिकारों के अन्तर्गत निम्नलिखित उपभोक्ता अधिकारों का उल्लेख किया गया है जिसका संरक्षण एवं सवंर्धन अधिनियम का मुख्य उद्देश्य है:-

1. **सुरक्षा का अधिकार**:- उपभोक्ता जीवन एवं सम्पत्ति के लिए हानिकर एवं खतरनाक माल एवं सेवाओं के विपणन के सम्बन्ध में सुरक्षा का अधिकार रखता है।
2. **सूचना का अधिकार**:- माल या सेवाओं की गुणवत्ता, मात्रा वजन और कीमत के बारे में उत्पादक द्वारा सूचित किये जाने का अधिकार प्राप्त है ताकि अनुचित व्यापारिक व्यवहार से उपभोक्ताओं को सुरक्षा दी जा सके।
3. **चुनने का अधिकार**:- जहाँ कहीं संभव हो, प्रतियोगितात्मक कीमत पर सामान और सेवाओं की किस्म उपभोक्ता प्राप्त कर सकता है।
4. **सुनवाई का अधिकार**:- उपभोक्ता की शिकायतों की सुनवाई तथा प्रतितोष प्राप्ति के लिए उपयुक्त फोरमों का संगठन किया गया है।
5. **शिकायत हेतु कानूनी निवारण प्राप्त करने का अधिकार**:-

   अनुचित या प्रतिरोधात्मक व्यापार पद्धति के प्रति या शोषण के प्रति उपभोक्ता कानूनी निवारण प्राप्त कर सकता है।
6. **शिक्षा का अधिकार**:- उपभोक्ता आंदोलन की सार्थकता उपभोक्ता शिक्षा के अधिकार पर निर्भर करती है। जब तक उपभोक्ताओं को अपने हितों के बारे में बोध नहीं होगा, आन्दोलन दिशाहीन तथा व्यर्थ होगा।

विकासशील देशों के लिए दो महत्वपूर्ण अधिकार जोड़ दिए गए हैं जो निम्नलिखित हैं:-

- मौलिक आवश्यकताओं का अधिकार
- एक स्वस्थ और स्थायी पर्यावरण का अधिकार

भारत सरकार ने उपभोक्ता की दिन-प्रतिदिन की समस्याओं पर ध्यान आकर्षित करने के लिए 'जागो ग्राहक जागो' नामक एक विस्तृत अभियान आरम्भ किया है। राष्ट्रीय उपभोक्ता हेल्पलाइन भी चलाई जा रही है जो पूरे देश से उपभोक्ता की शिकायतें सुनती है। इसका टोलमुक्त नम्बर है 1800-11-4000 जिसे सोमवार से शनिवार प्रात: 9.30 बजे से सांय 5.30 बजे के बीच बी. एस. एन. एल / एम. टी. एन. एल से मिलाया जा सकता है। यह उत्पादों और सेवाओं के एक विस्तृत रेंज में वैकल्पिक विवाद निपटान पद्धति के बारे में सूचना और परामर्श उपलब्ध कराती है।

निष्कर्ष:- 'केवट एम्पटर' अर्थात् उत्पादों के बारे में क्रेता को सावधान रहने की आवश्यकता है कि रणनीति के स्थान पर अब 'केवट वेंडीटर' अर्थात् विक्रेता या विपणनकर्ता को उपभोक्ता की आवश्यकताओं के बारे में जानकारी रखने की आवश्यकता है। विपणनकर्ता केवल तभी सफल रह सकता है जब उपभोक्ता उसके उत्पादों को खरीदें। नैतिकतापूर्ण खपत पूरे विश्व में उपभोक्ताओं और व्यवसायियों के लिए एक वास्तविकता बन गई है। खरीद सम्बन्धी प्रत्येक निर्णय का पर्यावरण उपभोक्ता के स्वास्थ्य और ऐसे वर्करों पर प्रभाव पड़ता है, जो उत्पादों का विनिर्माण करते हैं। कम्पनियों को उपभोक्ताओं के साथ दीर्घकालिक सम्बन्ध बनाने की कुंजी श्रेष्ठ ग्राहक मूल्य और संतुष्टि सृजित करनी चाहिए। इस प्रकार जिस बात की अब आवश्यकता है, वह है एक गतिशील उपभोक्ता आंदोलन, जो लोगों के बहुत निकट है और गरीब लोगों, महिलाओं और ग्रामीण लोगों के लिए अनुकूल हो। जैसाकि महात्मा गाँधी ने कहा था, ''उपभोक्ता या ग्राहक हमारे पास आने वाला सबसे महत्वपूर्ण आगन्तुक है। वह हमारे ऊपर निर्भर नहीं है, हम उस पर निर्भर हैं। वह हमारे व्यवसाय में बाहरी व्यक्ति नहीं है बल्कि हमारे व्यवसाय का हिस्सा है। हम उसकी सेवा करके उन पर अहसान नहीं कर रहे बल्कि वह हमें सेवा का अवसर देकर हम पर अहसान कर रहा है।''

टिप्पणियां एवं संदर्भ

1. संयुक्त राष्ट्र संघ मानवाधिकारों की घोषणा, 10 दिसम्बर 1948 की धारा 19 की उपधारा 19 टी. मेरन, ह्यूमन राईट्स एण्ड ह्यूमेनेटेरियन नॉर्म्स एण्ड कस्टमरी लॉ, ऑक्सफोर्ड, क्लेरेंडन प्रेस, 1989
2. 10 दिसम्बर 1948 का मानवाधिकारों का घोषणा पत्र जिसमें 30 बिन्दु समाहित थे।
3. ज्यां द्रेज एवं अमर्त्य सेन ''इण्डिया डेवलपमेण्ट एण्ड पार्टीसिपेशन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 371, 2002

4. अरूण पाण्डे जानने का हक एवं हमारा लोकतन्त्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2000, पृ. 44

5. नीलाभ मिश्र, पीपुल्स राईट टू इनफॉरमेशन मूवमेन्ट, लेसन फ्रॉम राजस्थान, ह्यूमन रिसोर्स डेवलपमेन्ट सेन्टर (एचआरडीसी) 2003, पृ.

6. अरूणा रॉय, 'राईट टू इनफॉरमेशन : द जर्नी बिगेन्स', नेशनल हैराल्ड न्यू देहली, 25.6. 2006

7. भंवर मेघवंशी, 'ग्रामीण भारत के लिए वरदान रोजगार गारण्टी', डायमण्ड इण्डिया, जून–जुलाई 2009, पृष्ठ 2 उपयुक्त, पृ. 3

* * *

मानवाधिकार एवं वंचित वर्गों का संघर्ष

(राजस्थान में सूचना के अधिकार के प्रयोग एवं सामाजिक अंकेक्षण में सामुदायिक प्रयासों का एक अध्ययन)

• *डॉ. रूपा मंगलानी*

आज किसी देश के सभ्य एवं सुसस्कृत होने की कसौटी यह नहीं है कि वह कितना सम्पन्न एवं शक्तिशाली है। अब कसौटी यह है कि वहां व्यक्ति की गरिमा और मानवाधिकारों का कितना सम्मान होता है। मानवाधिकारों का महत्वपूर्ण आयाम 'गुड गवर्नेंस' अर्थात् सुशासन है। सुशासन का एक अहम पक्ष यह है कि समाज के वंचित वर्गों तक उसका लाभ कितना और किस रूप में पहुंचा है। सुशासन की सफलता की सबसे बड़ी कसौटी यह है कि विकास के पायदान में सबसे अन्तिम सीढ़ी पर खड़े व्यक्ति तक विकास के लाभ कितने पहुंच पाये। सुशासन को अर्जित करने का एक मुख्य अभियन्त्र 'सूचना का अधिकार' है- जिसे दुनिया के राष्ट्रों के शीर्ष संगठन संयुक्त राष्ट्र संघ के सार्वभौम घोषणा प्रपत्र में मूल मानवाधिकार माना गया है। यहां यह जानना उपयुक्त होगा कि भारत में वंचित वर्गों द्वारा मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए सुशासन के विविध मानकों सूचना के अधिकार, सामाजिक अंकेक्षण एवं राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी कानून आदि के माध्यम से खुद को कितना सशक्त किया है।

मानवाधिकार निहितार्थ एवं विकास

यद्यपि मानवाधिकारों की कोई सर्वसम्मत परिभाषा नहीं है तथापि 'मानव अधिकार' ऐसे न्यूनतम अधिकार माने जाते हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यक रूप से प्राप्त होने चाहिये क्योंकि वह मानव समुदाय का सदस्य है। मानव अधिकारों की धारणा मानव गरिमा के साथ जुड़ी है। अत: जो अधिकार मानव गरिमा को बनाये रखने के लिये आवश्यक हैं उन्हें मानव अधिकार कहा जाता है। मानवाधिकार का आदर्श इस उक्ति पर आधारित है कि ''मनुष्य ही सभी चीजों की कसौटी है।''

• *व्याख्याता एवं रिसर्च अवार्डी, राजनीति विज्ञान, विकास अध्ययन संस्थान, जयपुर (राजस्थान)*

मानवाधिकार पद की उत्पत्ति एवं प्रचलन द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय चार्टरों और अभिसमयों से हुआ है, किन्तु मानव अधिकारों की संकल्पना उतनी ही पुरानी है जितनी प्राकृतिक विधि पर आधारित प्राकृतिक अधिकारों का सिद्धान्त। इतिहास साक्षी है कि यह अवधारणा सत्ता के निरंकुश आचरण एवं मनमानेपन को रोकने के उपकरण के रूप में विकसित हुई। प्रारंभ में यह राज्य के भीतर ही यह सामान्यजन के लिए नहीं बल्कि वर्ग विशेष के अधिकारों तक ही सीमित थी। इसे सामान्य व्यक्तियों के अधिकारों का स्वरूप शनैःशनैः ही प्राप्त हुआ। इंग्लैण्ड में 13वीं सदी का मैग्नाकार्टा मूलतः सामन्तों के विशेषाधिकारों का संरक्षण करता है किन्तु 1689 के बिल ऑफ राइट्स से सभी नागरिकों के न्यूनतम अधिकारों का वर्णन किया गया। मानवाधिकार की अवधारणा के विकास के महत्वपूर्ण चरण 1776 की अमेरिकी क्रान्ति थी जिसमें "जीवन, स्वतंत्रता एवं खुशी की तलाश" के अहरणीय अधिकारों की मांग की गयी। मानवाधिकारों की अवधारणा को क्रान्तिकारी रूप मिला फ्रांस की क्रान्ति से जब पहली बार 'मानव के अधिकारों की घोषणा' हुई तथा घोषित किया गया कि "मनुष्य स्वतंत्र जन्म लेते हैं और उनके अधिकार समान हैं तथा किसी राजनीतिक संघ का उद्देश्य स्वतंत्रता, सम्पत्ति, सुरक्षा और दमन के मानवाधिकारों की पुष्टि है।" व्यक्ति के मानवाधिकारों की रक्षा के लिए अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास की प्रथम मिसाल 19वीं सदी में मिलती है जब इंग्लैण्ड, फ्रांस, डेनमार्क में दास व्यापार की समाप्ति के लिए कानून बनाये गये। मानवाधिकारों की विषयवस्तु समृद्ध हुई। राष्ट्र संघ (लीग आफ नेशन्स) द्वारा मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए बहुमूल्य कार्य किये गये। दोनों विश्वयुद्धों के बीच के काल में इटली एवं जर्मनी में फासीवाद एवं नाजीवाद के उद्भव न लोकतंत्र एवं मानवाधिकारों के लिए चुनौती प्रस्तुत की।

वैश्विक स्तर पर हिटलर के नेतृत्व में जर्मनी में व्यापक मानवाधिकार दमन के दौरान ही वैश्विक स्तर पर मानवाधिकार के अस्तित्व की महत्ता स्पष्ट हुई। द्वितीय महायुद्ध के दौरान सर्वप्रथम अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने जनवरी 1941 में चार मूलभूत स्वतन्त्रताओं-भय से मुक्ति, क्षुधा से मुक्ति, अभिव्यक्ति की आज़ादी एवं उपासना की आजादी की घोषणा की।

25 जून, 1945 को अंगीकृत संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में स्पष्ट किया गया कि अन्य बातों के साथ संयुक्त राष्ट्र संघ का उद्देश्य "मूल मानव अधिकारों के प्रति निष्ठा को पुनः अभिपुष्ट करना होगा" चार्टर में अभिव्यक्त मानवाधिकारों के संरक्षण संबंधी आदर्शों को बाद में विविध अभिकरणों एवं अंगों द्वारा विकसित किया गया है।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा व्यापक विचार विमर्श के पश्चात् 10 दिसम्बर 1948 को मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा में मनुष्य के अहरणीय अधिकारों को जारी किया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा जारी मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा 1948, सिविल तथा राजनैतिक अधिकार प्रसंविदाएं 1960, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकार प्रसंविदा 1966 एवं वैकल्पिक प्रोटोकोल मिलकर अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार पत्र कहलाते हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा स्थापित संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग (1946), सामाजिक विकास आयोग, स्त्री प्रास्थिति आयोग, अपराध निवारण, दण्ड न्याय आयोग, मानवाधिकार उच्चायुक्त एवं अन्य अन्तरराष्ट्रीय संगठन यथा एमनेस्टी इन्टरनेशनल मानवाधिकार केन्द्र मानवाधिकार के क्षेत्र में कार्यरत संगठन है। मानवाधिकारों पर प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय जैसे यूरोपीय अभिसमय 1950, अमेरिकी अभिसमय 1969, अफ्रीकी चार्टर 1981 तथा अन्य प्रादेशिक व्यवस्थाएं की गयी हैं।

मानवाधिकार एवं सुशासन

मानवाधिकारों का अहम् पक्ष मानव गरिमा की प्रतिष्ठा की स्थापना है। अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकार का सबसे बड़ा पैमाना यह है कि बिना किसी भेद के सम्पूर्ण मानव जाति को मौलिक अधिकारों की प्राप्ति हो सके। विकास की धारा में पिछड़े हुए वंचित वर्गों को मुख्य धारा में लाने के लिए दुनिया एवं देश के मानवाधिकार प्रपत्र में संवेदनशीलता पाई जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिज्ञापत्रों, राष्ट्रों के कानूनों एवं सरकारों की नीतियों में सदैव वंचित वर्गों को मुख्य धारा में लाने के लिए प्रयास किये जाते हैं। भारत भी इस नीति से अछूता नहीं है। वंचित वर्गों का अभिप्राय यह है कि ऐसे वर्ग जो सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक दृष्टि से पिछड़ गये हों। भारत में अनुसूचित जाति, जनजातियों, महिलाओं एवं अन्य पिछड़ा वर्ग को वंचित वर्गों की श्रेणी में रखा जाता है। मानवाधिकारों की सुरक्षा तभी सुनिश्चित की जा सकती है जब मानव सुरक्षा के विविध मानकों को सुनिश्चित किया जाए। मानव सुरक्षा के संबंध में गांधीवादी चिन्तन का सांगोपांग विश्लेषण किया जाए तो यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि महात्मा गांधी ने अपने चिन्तन में सुरक्षा के संबंध में पृथक से कोई विचार नहीं रखे किन्तु फिर भी उनके अहिंसात्मक विचार दर्शन में समग्र रूप से सुरक्षा एवं वैश्विक शांति के संबंध में गहरी दृष्टि निहित है। 21वीं शताब्दी की चौखट पार कर चुके विश्व एवं भारत में गांधीवादी चिन्तन की प्रासंगिकता एवं महत्व को समझने के लिए यह नितान्त अनिवार्य है कि मानव सुरक्षा के बुनियादी मुद्दों पर गांधीवादी दृष्टिकोण को जाना, समझा एवं अपनाया जाए। लोकतंत्र एवं विकास के पहलू मानव सुरक्षा के साथ गहराई के साथ जुड़े हैं। ये सच है कि सफल लोकतंत्र एवं समग्र विकास की सफलता की कसौटी मानव सुरक्षा को सुनिश्चित कर ही प्राप्त की जा सकती है। व्यक्ति के अस्तित्व पर संकट एवं मानवाधिकारों को सुनिश्चित करने के विमर्श के आज के युग में यह सर्वाधिक आवश्यक है कि गांधीवादी दृष्टिकोण एवं मानव सुरक्षा के विविध पहलुओं पर विचार किया जाए। मानव सुरक्षा पर गांधीवादी दृष्टिकोण का एक पक्ष समुदाय के द्वारा अपने अधिकारों के संघर्ष एवं स्व अस्तित्व के लिए लड़ी गई अहिंसक एवं विवेकवान रणनीतियों की सफलता एवं संभावना पर विचार किया जाए। समुदायों का यह अहिंसक संघर्ष दरअसल व्यक्ति गरिमा के साथ जुड़ा मुद्दा है। मानव अधिकारों का एक महत्वपूर्ण आयाम सुशासन है। सुशासन को अर्जित करने का एक मुख्य अभियन्त्र 'सूचना का अधिकार है,

भारत में दलितों की संख्या पाकिस्तान की कुल आबादी से भी ज्यादा है। अनुसूचित जातियां भारत की आबादी का लगभग 16.48 प्रतिशत है। यानी 16 करोड़ से भी अधिक लोग।

समाज में उनका योगदान् श्रम, कला व संस्कृति के संदर्भ में भारी है। पर इसके अनुपात में देश के संसाधनों या धन में उनका हिस्सा नगण्य है।

देश की आबादी का छठे भाग से भी कुछ ज्यादा होने के बावजूद देश की भूमि के छठे भाग के वे मालिक नहीं हैं। उनके ही अंश मात्र ही जमीन पर उनका अधिकार है। यद्यपि भारतीय संविधान में मानव अधिकारों को परिभाषित नहीं किया गया है तथापि भारतीय संविधान में न केवल मानव अधिकारों को मान्यता दी है वरन् इन्हें कार्यान्वित भी किया है।

भारत संयुक्त राष्ट्र संघ का मौलिक सदस्य था। 10 दिसम्बर, 1948 को संयुक्त राष्ट्र महासभा में मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा के पारित होने के पक्ष में भारत ने मतदान किया। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में अभिव्यक्त हम भारत के लोग प्रजातान्त्रिक, गणतन्त्र स्वतन्त्रता, समानता, न्याय, बन्धुत्व, व्यक्ति की गरिमा आदि शब्दों में मानवाधिकार के उच्च आदर्शों को ही अभिव्यक्त किया गया है। संविधान के भाग 3 में व्यक्ति/नागरिकों को प्राप्त मूल अधिकार, भाग 4 में नीति निर्देशक तत्व एवं भारत भारत में समय-समय पर निर्मित कानून मानववाद एवं नागरिकों के अधिकारों के परिचायक है। मानवाधिकार का मुद्दा एक देश के नागरिक अधिकारों से ही नहीं जुड़ा बल्कि राष्ट्र के लोकतान्त्रिक ढांचे एवं शासनिक व्यवस्था से भी जुड़ा है। जिन राष्ट्रों में मानवाधिकारों की सुदृढ़ स्थिति है वहां लोकतान्त्रिक मूल्यों को व्यवहार में भी प्राप्त किया जा सकता है।

मानवाधिकारों का एक आयाम सुशासन भी है। सुशासन को परिभाषित चाहे भिन्न-भिन्न रूपों में किया गया हो किन्तु इसका मूल मन्तव्य एक ऐसा शासन है जो सहभागी, पारदर्शी एवं जवाबदेह हो। यह न केवल विधि के शासन की स्थापना करता है वरन् ऐसी सक्रिय व्यवस्था है जिसमें राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक प्राथमिकताएं व्यवस्था के अन्तिम पायदान पर खड़े व्यक्ति को लाभ पहुंचाती है।

सूचना का अधिकार सुशासन के मुख्य मानकों विधि का शासन, पारदर्शिता, जवाबदेही एवं कुशल शासन व्यवस्था को अर्जित करने का भी एक उपादान है। अत: जिन्दा रहना, संसूचित जीवन जीना आधारभूत मानवाधिकार, सुशासन एवं शान्ति के लिए प्रयास है। बीसवीं सदी की उत्तरार्ध वाली संवैधानिक लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में तथा मानव अधिकारों के विविध ऐतिहासिक दस्तावेजों में सूचना के अधिकार को मौलिक मानव अधिकारों के रूप में स्वीकृत किया गया है। 10 दिसम्बर, 1948 के "मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा के प्रपत्र के अनुच्छेद 19 के अनुसार : "हर व्यक्ति को विचार और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का अधिकार है। बिना किसी हस्तक्षेप के विचार निर्मित करना और उसे व्यक्त करना इस अधिकार में शामिल है।"

सूचना के अधिकार की कानूनी हैसियत मूलभूत मानव अधिकार की है क्योंकि इसका व्यक्ति के जीवन से परोक्ष या अपरोक्ष रूप से सम्बन्ध है। भारत के वंचित वर्गों ने लोक कल्याण के लिए बनाये गये विविध कानूनों का प्रयोग करते हुए स्वयं को सक्षम किया है। अपने मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए जन लामबंदी के ऐसे उदाहरण पारदर्शिता, सुशासन की योजनाओं, सूचना के

अधिकार के प्रयोग एवं नरेगा जैसी योजनाओं में लाभान्वित होने के लिए किये जाने वाले प्रयासों में मौजूद है।

राजस्थान में सूचना का अधिकार - नरेगा एवं वंचित वर्गो का संघर्ष

भौगोलिक दृष्टि से देश का सबसे बड़ा राज्य राजस्थान अपने 35 में से 11 जिलों में प्रसारित रेगिस्तान देश के जल संसाधन का मात्र एक प्रतिशत, अनावृष्टि, अल्पवृष्टि के कारण भौगोलिक अभिषापों से ग्रस्त है वहीं दूसरी ओर सामन्तवादी, राजतन्त्रात्मक पृष्ठभूमि के कारण पिछड़ा प्रदेश रहा। राज्य में एक करोड़ 10 लाख अनुसूचित एवं 85 लाख जनजाति सहित लगभग 2 करोड़ की आबादी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक दृष्टि से विकास की मुख्यधारा में आने के लिए संघर्षरत रही है।

राजस्थान के वंचित वर्ग जिनमें अनुसूचित जाति, जनजाति, महिलाएं शामिल हैं पिछले डेढ़ दशक में अपने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक अधिकारों के लिए संघर्ष की जो मौलिक शैली अपनाई है वह अनूठी है। राज्य में सूचना के अधिकार को कानूनी हक की प्राप्ति के लिए जो 10 वर्षो का संघर्ष चला उसमें तथा सूचना के अधिकार के कानून के निर्माण एवं कार्यान्वयन के बाद राज्य के वंचित वर्ग के युवाओं ने जिस प्रकार इस अधिकार का प्रयोग किया है वह मानवाधिकारों के संघर्ष का नवीन प्रतिमान है। देश में वर्ष 2006 में चरणबद्ध तरीके से लागू राष्ट्रीय ग्रामीण नरेगा जिसे अब महात्मा गांधी रोजगार गारण्टी कानून योजना के नाम से जाना जाता है और जिसे अब अप्रैल 2008 तक सम्पूर्ण देश के तमाम जिलों में लागू कर दिया गया है-- ने राज्य में वंचित वर्गों की रोजी रोटी के चिन्ताजनक मसलों को ही हल नहीं किया बल्कि उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति में परिवर्तन कर सामाजिक चेतना का प्रसार किया है।

राजस्थान में सूचना के अधिकार के कार्यान्वयन एवं राष्ट्रीय ग्रामीण गारण्टी योजना के कार्यान्वयन के विविध पहलुओं की वंचित वर्ग पर पड़ने वाले प्रभाव एवं भूमिका का अध्ययन किया जाये तो स्पष्ट होता है कि वंचित वर्गो के विकास के लिए इन कानूनों का प्रयोग कर अपना एवं अपने समुदाय का क्षमता निर्माण किया है।

जानने का हक एवं क्षमता-निर्माण

भारत में सूचना के अधिकार के लिए तय किया गया यह सफर इतना आसान नहीं रहा। सबसे अनूठी मिसाल राजस्थान की है जहां सूचना के अधिकार की मांग जमीन से उठी तथा लोगों को बुनियादी जरूरतों के साथ ताकत पाकर फल-फूली है। राजस्थान सूचना के अधिकार को कानूनी जामा पहनाने के लिए अग्रणी राज्य रहा। चौंकाने वाली सच्चाई यह है कि राजस्थान में यह मांग पढ़े-लिखे लोगों, अधिकारों के लिए सदैव जागरूक रहने वाले तथाकथित इलीट-सिविल सोसायटी ने नहीं बल्कि पिछड़े इलाके के बेनाम मजदूरों एवं किसानों ने उठायी जिन्हें लोकतन्त्र,

प्रशासनिक पारदर्शिता और जवाबदेही जैसी बौद्धिक अवधारणाओं का कोई ज्ञान नहीं था। भारतीय प्रशासनिक सेवा की नौकरी से त्यागपत्र देकर समाज सेवा में आयी अरुणा राय एवं उनके साथियों ने जब मध्य राजस्थान के अकालग्रस्त गांव देव डूंगरी में न्यूनतम मजदूरी की मांग के लिए मजदूर किसान शक्ति संगठन की स्थापना की तब ज्ञात हुआ कि विकास कार्यक्रमों में संचालित सरकारी योजनाओं में अतिगोपनीयता की आड़ में निर्धन मजदूरों का सूचना के अधिकार को हक हड़प लिया जाता है।

मजदूर किसान शक्ति संगठन ने 1994-95 में पंचायत स्तर पर हुए निर्माण एवं विकास कार्यो की जांच के लिए जब एक के बाद एक जनसुनवाइयों का आयोजन किया तो सरकारी घोटालों की पोल खुलती। फर्जी मस्टर रोल, फर्जी बिल, फर्जी निर्माण कार्य, फर्जी नीलामी, राशन कार्ड, टेबिल कुर्सी, दरी-बाल्टी और बुखार कम करने की गोलियों तक में घपला। भ्रष्टाचार के खिलाफ संघर्ष के दौरान सगठन के जमीन से जुड़े अनुभवों से यह स्पष्ट हुआ कि जरूरत एक-एक के सूचना के अधिकार की है जिसका उपयोग कर सरकारी विकास कार्यक्रमों से सम्बन्धित रिकार्डो, बिलों, वाउचरों, मास्टर रोल की फोटोकॉपी को आवश्यक खर्चा जमा कर प्राप्त कर सके। संगठन ने 'हमारा पैसा हमारा हिसाब' का नारा दिया। संगठन के आन्दोलन को देखते हुए मुख्यमन्त्री ने अप्रैल, 1995 में पंचायत स्तर पर सूचना के अधिकार की घोषणा की। किन्तु एक वर्ष तक घोषणा लागू न होने पर मजदूर किसान शक्ति संगठन ने 1996 में 40 एवं 53 दिन का धरना ब्यावर एवं जयपुर में दिया। सत्ताधीशों एवं नौकरशाही के अनेक अवरोधों एवं आधारहीन तर्कों के बाद अंततः जनवरी 2001 में राजस्थान के नागरिकों को सरकारी कामकाज में सूचना का अधिकार दिया गया। मजदूर किसान शक्ति संगठन द्वारा नैशनल कैम्पेन फॉर पीपुल्स राइट टू इन्फॉरमेशन समूह के माध्यम से केन्द्र सरकार को सूचना के अधिकार का एक ठोस विधेयक का प्रारूप भी तैयार कर दिया गया। 26 जनवरी, 2001 को राज्य का राज्य कानून लागू हुआ वहीं 12 अक्टूबर, 2005 को राष्ट्रीय सूचना का अधिकार कानून लागू हुआ। राष्ट्रीय सूचना के अधिकार कानून लागू होने के उपरान्त 4 वर्षो का आकलन करने पर ज्ञात होता है कि राज्य राजधानी से लेकर दूर-दराज के ग्रामीण इलाकों में वंचित वर्गो, असंगठित मजदूरों, भूमिहीन किसानों, अकाल राहत में काम करने वाले मजदूरों एवं लघु एवं सीमांत कृषकों, बी.पी.एल. वर्ग ने इसका प्रयोग किया है।

सूचना का अधिकार आन्दोलन जहां विश्व के अनेक देशों में अपने आधार तत्वों में शासन, लोकतन्त्र, कार्यकुशलता, पारदर्शिता की अवधारणाओं से जुड़ा है। वहीं राजस्थान में सूचना के अधिकार के आन्दोलन के मूल आधारतत्व गरीब और अधिकांशतः निरक्षर ग्रामीणों ने तय किये हैं। इसकी आवश्यकता की पहचान राज्य में तब कर ली गयी थी जब ऐसे अधिकार की पहचान की आम जनमानस में कोई चर्चा नहीं थी। दुनिया भर में सूचना के अधिकार की मांग की गयी किन्तु रोजी रोटी एवं व्यक्ति कि जीवन से जोड़ने को लामबन्द करने की मजदूर किसान शक्ति संगठन की यह अपने आप में अनोखी मिसाल है। आज राजस्थान में ग्रामीण स्तर पर भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष के नैतिक बल देने में यह संगठन इतना समर्थ हुआ है कि जनसुनवाई में उजागर होने पर भ्रष्टाचार

करने वाले व्यक्ति स्वयं गबन किया पैसा लौटाते हैं '**चोरीवाड़ो घणो हो गया रे - कोई तो मुँह को खोलो रे**' नारों के साथ संगठन की राज्यव्यापी जनसुनवाइयां–राहत निर्माण कार्यो, सार्वजनिक वितरण प्रणालियों की अव्यवस्था पर जारी है। सूचना के अधिकार के माध्यम से जन को चाक–चौबन्द करने की मुहिम जारी है।

युवा वर्ग का संघर्ष

राजस्थान में सूचना के अधिकार के प्रयोग की विशेष बात यह है कि सूचना के अधिकार अभियान के लिए कार्यरत जागरूक नागरिक संगठनों से वंचित वर्ग के युवाओं की भूमिका अग्रणी रही। राज्य के विविध जिलों जैसे जयपुर जिले में कार्यरत जनाधिकार संगठन सिकोईडीकोन के युवा कार्यकर्ता, बीकानेर जिले की नोखा पंचायत समिति में कार्यरत रावत राम, राजसमन्द जिले के सागवाड़ा, भीम, देवडूंगरी में कार्यरत खीमाराम, कृष्णा, सुशीला आदि ऐसे चिरपरिचित नाम है जिन्होंने सामुदायिक मुद्दों, वंचित वर्गो के लिए जानने के हक की यात्रा के आगे बढ़ाया है। सूचना के अधिकार के लिए संघर्ष के दौरान इन युवाओं की इस अभियान में भागीदारी, कानून निर्माण के लिए एवं कानून के सशक्त प्रयोग के लिए आयोजित की जाने वाली सभाओं आम सभाओं, जनसुनवाई, सामाजिक अंकेक्षणों, कठपुतली, नुक्कड़ नाटक के माध्यम से जागरूक अभियानों में इस इन युवाओं की भागीदारी ने वंचित वर्गो में मानवाधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए आशावादी भरोसे की मिसाल प्रस्तुत की है। आज ग्रामीण स्तर पर गांव के विकास के लिए विविध मसलों– शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, मध्याह्न भोजन योजना, विधवा पेन्शन, रोजगार, सार्वजनिक वितरण प्रणाली के मुद्दों पर इन युवाओं के सूचना के अधिकार के प्रयोग जागरूकता अभियानों में हिस्सेदारी, अपने लेखों से अलग जगाने के प्रयास न केवल वंचित वर्ग के समुदाय को मार्गदर्शन देते हैं बल्कि सूचना के अधिकार के रचनात्मक प्रयोग की मंशा को भी बढ़ावा देते हैं।

धरनों में चिंतन

राजस्थान में सूचना के अधिकार अभियान में वंचित वर्गो की हिस्सेदार का अनोखा पक्ष यह भी है कि इस वर्ग के प्रतिनिधित्वकर्ता के रूप में युवाओं ने सूचना के अधिकार के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए जागरूकता अभियानों को सांस्कृतिक रूप दिया है। स्वरचित लोक गीतों, कठपुतली नृत्यों नाटकों के साथ–साथ लघु पत्रिकाओं के प्रकाशन एवं लेखों तक में इस वर्ग की भूमिका है। आम जीवन में व्यवस्था की विकृतियों से पीड़ित जनमानस ने अपनी पीड़ा को अभिव्यक्ति देने के लिए अनेक लोकगीत रचे गये। राज्य के अनेक जिलों में ग्रामीण राजस्थान की जनता में बेहद लोकप्रिय में गीत व्यवस्था से अपनी मांग एक विशिष्ट शैली में रखते हैं। इन गीतों में आक्रोश, आशा, एकजुटता, संगठनों द्वारा रचे गये संगठन के प्रति आस्था, मातृभूमि के प्रति प्रेम, सुधार की उमंग सभी रंग समाहित हैं।

रोजगार गारण्टी कानून से वंचित वर्गों का क्षमता-निर्माण

राजस्थान में वंचित वर्गों के संघर्ष का एक अन्य पहलू राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी कानून में कार्यरत वंचित वर्गों द्वारा अपने जीवन सामाजिक स्तर में बदलाव के लिए प्रयास की जद्दोजहद है। उल्लेखनीय है कि देश के सर्वाधिक भौगोलिक प्रतिशत वाले राज्य राजस्थान के साठ साल के इतिहास में पचपन बार अकाल पड़ा है। अतीत के अनुभवों को देखें तो पहले पूरे देश के लिए अकाल राहत कार्यों से ढाई सौ करोड़ रुपये मिलते थे लेकिन नरेगा योजना में केवल इसी वित्तीय वर्ष में अब तक आठ हजार चार सौ करोड़ रुपये मिल चुके हैं। इस दृष्टि से एक जिले में दौ सौ, तीन सौ करोड़ एवं औसतन एक ग्राम पंचायत में एक करोड़ रुपया। इस अपार धनराशि में राज्य के ग्रामीण ढाँचे में क्रान्तिकारी बदलाव आया हो तथा इससे नरेगा के रूप में कार्य कर रही महिलाओं की स्थिति पूरी तरह सुधरी हो ऐसा कहना अनुचित होगा। भारत सरकार में ग्रामीण विकास सचिव रीटा शर्मा के अनुसार राजस्थान में देश भर में हो रहे नरेगा बजट का पांचवां हिस्सा व्यय हो रहा है। इस योजना पर प्रशासनिक व्यय चार से बढ़ाकर छह प्रतिशत कर दिया है।

यदि आंकड़ों के इतर राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना के कार्यान्वयन के बाद राजस्थान के वंचित वर्गों के बदलाव की स्थिति का अध्ययन किया जाये तो बुनियादी बदलाव के अनेक अनोखे आयाम स्पष्ट होते हैं। राज्य में रोजगार गारण्टी के तहत सामाजिक समरसता बढ़ाने की दिशा में अनेक कारगर उपाय किये हैं। उल्लेखनीय है कि नरेगा योजना में कार्य राज्य में 5-5 लोगों के समूह में दिया जाता है, इसलिए जाति, रंग और धर्म की संकीर्णताओं से परे श्रमिक अपनी पसंद के समूह बनाते हैं और दिनभर काम करते हैं। अनेक कार्यस्थलों पर दलित समुदाय की महिलाओं को पानी पिलाने के काम में नियोजन, कार्य अन्तराल में साथ योजना ने उस समतावादी ढाँचे को तैयार किया है जिसे सदियों के प्रचलित छूआछूत ने असम्भव बना रखा था। यद्यपि यह शुरुआत मात्र है और इस मुहिम को आगे ले जाना होगा। इस कानून में कार्यस्थल पर समुचित सुविधाएं, पानी, टेन्ट, दवा, क्रेश, औजार तेज करने की सुविधाएं मानव गरिमा के ऐसे प्रतीक है जो राज्य के लोक कल्याणकारी होने का साक्ष्य उपस्थित करती है।

रोजगार गारण्टी में कानूनी रूप से पहली बार मजदूरों के हक सुनिश्चित हुए हैं, अकाल राहत की तरह वह याचक नहीं बल्कि अधिकारी है। उसे जॉब कार्ड बनवाने का हक मिल गया है, वह काम प्राप्त करने का हकदार बन गया है। अब मजदूर प्रपत्र 6 में मजदूर काम के लिए आवेदन दे सकते हैं, उन्हें 15 दिन के भीतर 5 किलोमीटर की परिधि में रोजगार मुहैया कराने के प्रावधानों का राज्य के कुछ इलाकों में महत्वपूर्ण बदलाव नजर आता है। राजस्थान के विविध इलाकों में बदलाव की ऐसी दर्जनों कहानियां मौजूद हैं, जहां ग्रामीण रोजगार गारण्टी कानून ने वंचित वर्ग को राहत का जीवन जीने का अवसर दिया है। ऐसे ही कुछ दृष्टान्तों में अजमेर जिले की लोटियाणा गांव की एक कंजर महिला अणछी बाई कहती है, रोजगार गारण्टी कानून ने हमारा भीख मांगना छुड़ा दिया है। अब हम इज्जत से रोटी कमा करके खा सकते हैं।'' बाड़मेर के कालबेलिया समाज

और भीलवाड़ा के बागरिया समाज की औरतों ने भी अब रोजी-रोटी के लिए हाथ फैलाने की जगह मेहनत का रास्ता अपनाया है। क्या रोजी-रोटी व्यापक समुदाय के जीवन में क्रान्तिकारी बदलाव ला सकती है, यह शोध का विषय है। यह सत्य है कि रोजगार गारण्टी में देश के अनेक हिस्सों में वित्तीय अनियमितताओं के प्रकरण सामने आये हैं। राजस्थान भी इससे अछूता नहीं है लेकिन यह भी सत्य है कि भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के लिए ऐसे मैकेनिज्म को विकसित करना होगा। राज्य में सामाजिक अंकेक्षण पद्धति का व्यवस्थित विकास करने के साथ सूचना के अधिकार के प्रयोग से नरेगा में व्याप्त अव्यवस्थाओं पर नियन्त्रण का प्रयास किया जाता है।

बदलाव की बुनियाद रखती महिला मैट

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी कानून के विविध आयामों की चर्चा के साथ-साथ एक महत्वपूर्ण और गहरा आयाम यह भी है कि क्या पिछले चार वर्षों में देश के ग्रामीण क्षेत्रों में इस बहुचर्चित योजना से परम्परावादी ग्रामीण ढांचे में महिलाओं की स्थिति, रोजी-रोटी, सामाजिक-आर्थिक आधार में कोई परिवर्तन आया है? आशा, मन्जू, लक्ष्मी, कंचन, सुरज्ञानी और इसरून बानो के नाम राजस्थान की असंख्य महिला मेट में से ऐसे नाम है जिन्हें इन दिनों काम की तमाम व्यवस्थाओं, नई शब्दावलियों, काम-काज में कायदे कानूनों की जानकारी है। यदि राजस्थान में महिलाओं की परम्परागत स्थिति का आकलन करें तो यहां ऐतिहासिक दृष्टि से ही सामाजिक परिस्थिति में महिलाओं की स्थिति विकास के सोपानों में पिछड़ी रही है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था, महिला विरोधी रूढ़ियां, निरक्षरता, अन्धविश्वास एवं कुपोषण की नकारात्मक प्रवृत्तियों के कारण महिलाओं विशेषत: ग्रामीण महिलाओं की स्थिति हमेशा से ही विकास के अन्तिम पायदान पर पिछड़ेपन की रही है।

यद्यपि 70 एवं 80 के दशक के राज्य के महिला आन्दोलन ने अनेक कुरीतियों के खिलाफ आवाज उठायी लेकिन राजस्थान की ग्रामीण ललनाओं ने सदैव प्राकृतिक अभिशाप के साथ-साथ सामाजिक कुरीतियों को झेला है। चार वर्ष पूर्व जब फरवरी, 2006 में राज्य में नरेगा में महिलाओं को रोजगार का मौका मिला एवं इसका विस्तार राज्य के विविध अंचलों में हुआ तो स्थितियों में धीमा लेकिन एक मजबूत बदलाव इंगित होता है।

राजस्थान सरकार के ग्रामीण विकास सचिव के अनुसार राज्य में नरेगा योजना में कार्य करने वालों में सर्वाधिक प्रतिशत महिलाओं का है। राज्य में नरेगा में काम करने वालों में महिलाओं का प्रतिशत 68 एवं पुरुषों का प्रतिशत 32 है। वस्तुत: नरेगा योजना में महिला कामकाजियों का प्रतिशत बढ़ाने के लिए 25 जून, 2008 को जारी किये गये आदेशों में नरेगा कार्यों में 50 प्रतिशत महिलाओं की सहभागिता को सुनिश्चित करने का प्रयास भी किया गया है। उक्त व्यापक आँकड़ों के मद्देनजर यदि नरेगा में कार्यरत महिलाओं की स्थिति का आकलन किया जाये तो तस्वीर के दो पहलू सामने आते हैं।

सकारात्मक परिवर्तन को देखा जाये तो राजस्थान के ग्रामीण परिदृश्य में खास बदलाव दिखायी देता है। घर की चौखट से बाहर बमुश्किल कदम रखने वाली ग्रामीण महिलाएं आज अलसुबह समूहों में नरेगा में मजदूरी के लिए जाती दिखेंगी। मिस्त्री, मजदूर, मेट, अकुशल--अर्धकुशल मजदूर की तथाकथित पदवियों पर काम करती इन ग्रामीण महिलाओं के पास काम मिलने का सन्तोष है। पहले घर की खेती या ठेके की खेती में काम करने वाली ग्रामीण महिला बेनामी मजदूर के रूप में काम करती थी। यह एक कड़वी सच्चाई है कि अब तक निर्माण संबंधी कार्यों पर महिलाओं को केवल 'बेलदारी' का काम सौंपा जाता था। उन्हें निर्माण मजदूर की हैसियत भी प्राप्त नहीं थी। वह तो मौके पर बेमन से रखा गया सहायक थी जिससे बिना मान्यता के जमकर काम लिया जाता था और हमेशा कम मजदूरी पकड़ा दी जाती थी। महिला श्रमिक एवं पुरुष श्रमिक की भुगतान दर में भेदभाव एक सामान्य स्वीकृत मौखिक नियम था लेकिन इस विषय परम्परा में अब बदलाव आया है। नरेगा में कार्यरत मेड के रूप में महिला को अर्धकुशल मजदूर का दर्जा एवं नियम मजदूरी दी जाती है। मेट के रूप में कार्यरत महिला जब मौके पर पुरुष एवं महिलाओं के समूह बनाकर काम का आवंटन करती है तथा काम पूरा हो जाने पर काम का आकलन और मस्टररोल की पूर्ति करती है तो अनजाने ही सही लेकिन गहराई से उस परम्परावादी मान्यता पर प्रहार होता है जहाँ आदेश देने के सारे काम- काज पुरुष हाथों में और आदेश को मानने के सारे काम--काज महिलाओं के हिस्से आते थे।

नरेगा में काम करती इन ग्रामीण महिलाओं के जीवन से जुड़ा एक और महत्वपूर्ण बदलाव आया है इनके हाथ में इनकी मजदूरी को खर्च करने का अधिकार। महिला के नाम से डाकघर या बैंक में खाता उसके हस्ताक्षर से पैसे निकालने का अधिकार और उस परिश्रम की कमाई पर उसकी हकदारी इन ग्रामीण महिलाओं को सुखद अहसास देती है। ''पहले टाबरां में छोटा बीमार होता था तो उसे दवाई दिलवाते थे अब छोरी को भी दवा दिला सकूं'' जैसे महिला कामगारों के वक्तव्य या हर दिन की जरूरतों के लिए बिना किसी निर्भरता के अपनी मजदूरी से खर्चा चलाने की राहत बहुत बड़ी राहत है।

लेकिन तस्वीर के इस उजले पक्ष के साथ--साथ चुनौतियों का ऐसा दौर और प्रवृत्तियाँ भी मौजूद है जो नरेगा में काम करने वाली ग्रामीण महिलाओं ने झेले हैं। शुरुआत में इनके काम की परिस्थितियाँ और अनुभव आसान नहीं थे। किसे कितना काम देना है, कार्यस्थल पर विपरीत परिस्थितियाँ, सामन्तवादी परिवेश, तकनीकी काम-काज के अनुभव का अभाव, पर्यवेक्षण के कौशल की कमी, घर-परिवार की जिम्मेदारी के साथ बाहर की दुनिया से तालमेल स्थानीय सरपंच, सचिव जेएइएन, रोजगार सहायक से तालमेल, निश्चित मानदण्डों के अनुसार काम करवाना जैसे असंख्य अवरोध मौजूद थे और मौजूद हैं लेकिन फिर भी धीरे-धीरे काम करते हुए ग्रामीण महिला कामगार सीख रही हैं और अपने अनुभवों से आगे बढ़ रही हैं।

अजमेर जिले की सिलोरा पंचायत समिति की विधवा महिला सुरज्ञानी अपने अनुभव से कहती है कि काम मिला है तो कौशल और करने का तरीका भी सीख रहे हैं। कार्य के दौरान प्रारंभ

में प्रक्रियात्मक एवं मनोवैज्ञानिक दबाव को झेलने वाली महिलाओं के अनुभव से यह सामने आया है कि महिलाओं को नरेगा परियोजना में चयन के लिए पारदर्शिता की आवश्यकता है। चयनित महिलाओं का एक बड़ा वर्ग ऐसा था जिसे गाँव के प्रभावशाली एवं राजनीतिक वर्ग का समर्थन प्राप्त था। वर्तमान समय में नरेगा में चयन का अधिकार कार्यक्रम अधिकारी को दिया गया है। लेकिन यह सच है कि गाँव के स्तर पर सर्वाधिक जरूरतमंद एवं वंचित वर्ग तक इस योजना के लाभ पहुँचने में एक लम्बा वक्त लगेगा।

काम के दौरान छूआछूत एवं जातिगत बन्धनों को तोड़ने में भी वक्त लगेगा। अजमेर जिले की हरमाड़ा पंचायत समिति में नरेगा योजना में कार्यरत मेट सीमा रैगर स्वीकार करती हैं कि जाति एवं ऊँच-नीच का अन्तर इतनी जल्दी नहीं जाता। यदि राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना में मौजूदा नकारात्मक प्रवृत्तियों से मुक्ति पा ली जाये तो इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि इस योजना में कार्यरत महिला कामगारों को अपने व्यक्तिगत एवं सामाजिक ढाँचे में पिछड़ी स्थिति से मुक्ति का अवसर मिल पायेगा। तकनीकी कुशलता से सम्पन्न महिला कारीगर, नियोजक और प्रेरक के रूप में सक्रिय हो पायेंगी।

बेशक ग्रामीण महिलाओं का यह आगाज़, व्यवस्था और उनके स्वयं के जीवन में बदलाव की अलख जगा पायेगा।

सामाजिक बदलाव का एक सफल प्रयास : विजयपुरा पंचायत

राजस्थान के राजसमन्द जिले की देवगढ़ पंचायत समिति की विजयपुरा ग्राम पंचायत एक ऐसी पंचायत है जिसने वंचित वर्गों के संघर्ष की सफल मिसाल प्रस्तुत की है। राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 8 पर स्थित विजयपुरा पंचायत, मध्य राजस्थान के राजसमन्द जिले की देवगढ़ पंचायत समिति की सबसे निकटवर्ती एवं प्रतिष्ठापूर्ण ग्राम पंचायत के सरपंच कालूराम दलित होने के बावजूद सामान्य सीट से निर्वाचित हुए। सम्पूर्ण चुनाव प्रक्रिया में पूर्ण पारदर्शिता रखते हुए जनता के घोषणा-पत्र के साथ चुनाव जीते। इस जनता घोषणा-पत्र की विशेषताएं थी- 2000 रुपये के चुनाव खर्च की सीमा, बिना भेदभाव के गांव की चौपाल पर निर्णय, हर स्तर पर सूचना का अधिकार एवं पारदर्शिता की सुनिश्चितता।

कालूराम ने अपने निर्वाचन क्षेत्र में मात्र 800 रुपये खर्च कर चुनाव जीता तथा पंचायत को जनता की भागीदारी के साथ साफ-सुथरी एवं खुली चलाने की प्राथमिकता पर कायम रहे। इस युवा सरपंच कालूराम सालवी ने सरपंच पद पर जीतने के बाद अपने पहले छह माह के कार्यकाल में अनूठे प्रयोग किए हैं जिनमें अपने छमाही कार्यकाल में विकास कार्यों का लेखा-जोखा जनता को सौंपा। पंचायत क्षेत्र में जगह-जगह बोर्ड लगाकर लिखवाया कि पंचायत की सूचनाएं सभी के लिए खुली हैं। प्रथम छमाही में स्वत: सामाजिक अंकेक्षण के जरिए पंचायत का सारा लेखा-जोखा प्रस्तुत किया। इस जनता जांच की पृष्ठभूमि में कालूराम का कहना है कि चुनाव के बाद जो काम हुआ

उसके मस्टररोल, बिल, वाऊचर, स्वीकृतियां आदि के कागज खुले हैं, इन्हें कोई भी देख सकता है, प्रतिलिपियां ले सकता है।

कालूराम ने अपने गांव में सार्वजनिक हथवाड़ी पर औरतों के बैठने की जागरूकता पैदा की जिसका सुखद परिणाम यह हुआ है कि महिलाओं ने ग्राम सभा की बैठकों में हिस्सेदारी की है। आज गांव में दलित मिस्त्री और गैर कुशलता से कार्य करने के कारण सामंतवादी पितृसत्तात्मक ढांचा टूट रहा है।

सोशल ऑडिट के दौरान पर्यावरण संरक्षण, शिक्षा प्रसार, सामुदायिक भवन निर्माण, चैकडैम, नाडी, ऐनीकट बनाने के प्रस्ताव पारित हुए। इस पंचायत से राजस्थान में पहली बार सूचना के अधिकार कानून की धारा 4 के अनुपालन हेतु सूचना पट्ट लगाए गए।

''न्याय समानता हो आधार, ऐसा रचेंगे हम ससार'' के नियम पर कार्यरत वंचित वर्गों के लिए कालूराम की मिसाल मानवाधिकारों में वंचित समुदाय के संघर्ष की मिसाल है।

सारत: राजस्थान में वंचित वर्गों का मानवाधिकारों के संघर्ष के लिए उपरोक्त सभी दृष्टान्त यह सिद्ध करते हैं कि जनतन्त्र में जन को गरिमा से जीने के लिए मौजूदा कानूनों एवं सुधारों का रचनात्मक प्रयोग किया जाता है। भौगोलिक एवं प्राकृतिक आपदाओं, सामान्तवादी पृष्ठभूमि, विकास के लक्ष्यों को अर्जित करने की चुनौती, सामाजिक ढांचे में गहरे मौजूद कुरीतियों के बावजूद राज्य की मिट्टी में जनान्दोलनों में सफलता-असफलता की संघर्षपूर्ण गाथाओं ने यहां के नागरिक को सक्रिय बनाये रखा है। सहभागी लोकतान्त्रिक शासन एवं सुशासन के लिए पारदर्शिता की अनिवार्यता की समझ जनाधिकार संगठनों के स्तर पर भी बन चुकी थी। वंचित वर्गों के सफलता के इन प्रयोगों को विस्तार देना होगा। कात्यानी ने लिखा है कि :

''एक साजिश रची जाये, बारूदी सुरंगे बिछाकर
उड़ा दी जाये चुप्पी की दुनिया।''

टिप्पणियां एवं संदर्भ

i संयुक्त राष्ट्र संघ मानवाधिकारों की घोषणा, 10 दिसम्बर 1948 की धारा 19 की उपधारा 19

ii टी. मेरन, ह्यूमन राईट्स एण्ड ह्यूमेनेटेरियन नॉर्म्स एस कस्टमरी लॉ, ऑक्सफोर्ड, क्लेरेडन प्रेस, 1989

iii 10 दिसम्बर 1948 का मानवाधिकारों का घोषणा पत्र जिसमें 30 बिन्दु समाहित थे।

iv ज्यां द्रेज एवं अमर्त्य सेन ''इण्डिया डेवलेपमेण्ट एण्ड पार्टीसिपेशन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 371, 2002

v अरूण पाण्डे जानने का हक एवं हमारा लोकतन्त्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2000, पृ. 44

vi नीलाभ मिश्र, पीपुल्स राईट टू इनफॉरमेशन मूवमेन्ट, लेसन फ्रॉम राजस्थान, ह्यूमन रिसोर्स डेवलपमेन्ट सेन्टर (एचआरडीसी) 2003, पृ.

vii अरुणा रॉय, 'राईट टू इनफॉरमेशन : द जर्नी बिगेन्स', नेशनल हैराल्ड न्यू देहली, 25.6.2006

viii भंवर मेघवंशी, 'ग्रामीण भारत के लिए वरदान रोजगार गारण्टी', डायमण्ड इण्डिया, जून–जुलाई 2009, पृष्ठ 2

ix उपयुक्त, पृ. 3

x इंदिरा गांधी पंचायती राज संस्थान, नरेगा प्रतिवेदन, मार्च 2009, जयपुर

* * *

आतंकवाद तथा मानव अधिकार

• डॉ. अजय भूपेन्द्र जायसवाल

मानव अधिकार मानव की स्वतंत्रता के पुनीत अधिकार हैं। इनको विधि की अनुमति के बिना प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता है। मानव अधिकार मानव जीवन, स्वतंत्रता, समता, गरिमा, सौहार्य और न्यायिक अभिधारणाओं को उजागर करने के साधन हैं। मानव अधिकारों से सामाजिक वातावरण में सौहार्द, बन्धुता और समरसता की भावना को प्रोत्साहन मिलता है।

आतंकवाद, मानव अधिकारों द्वारा उत्पन्न सौहार्द, बन्धुत्व और समरसता को नष्ट करता है। सभ्य समाज में शान्तिप्रिय मानव इस प्रकार की बाधाओं का सामना समाज के नियंत्रणात्मक मानकों के माध्यम से करना चाहते हैं। लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था में विधि सम्मत शासन नियंत्रणात्मक मानकों का परिचायक है। विधि की सर्वोच्चता मानव की गरिमा, सुरक्षा, स्वतंत्रता, न्याय और समता के लिए समाज संचालन की बाधाओं को दूर करके उपादानों का संकलित और लोकतंत्रात्मक शासन द्वारा मान्यता प्राप्त कारगर उपाय है। ये उपाय मानवाधिकारों की संरक्षण के मूलमंत्र हैं।

इक्कीसवीं सदी के विश्व समुदाय के चहुँमुखी विकास ने मानव के व्यक्तित्व साधक समाज को जन्म दिया है। परन्तु मानवता आतंकवाद की छाया में दूषित वातावरण का सामना कर रही है। समाज विरोधी समुदाय, संगठन और देश आतंकवाद का सहारा लेकर सभ्य समाज के क्रियाकलापों और मानव को प्रभावित कर रहे है। कमोवेश विश्व के समस्त देश आतंकवाद से परोक्ष तथा प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हैं।

आतंकवाद अर्थात टेरोरिज़्म लैटिन शब्द 'टेरर' से व्युत्पन्न हुआ है। जिसका तात्पर्य भय है। आतंकवाद द्वारा लोगों को बाहुबल, शस्त्रबल अथवा धनबल से आतंकित किया जाता है। आतंकित करने का कार्य एकल, संगठित अथवा राज्य की अप्रत्यक्ष शक्ति द्वारा समाज के किसी वर्ग, देश की निर्वाचित सरकार तथा सम्पूर्ण समुदाय के विरुद्ध किया जाता है। आतंकवादी

• प्रवक्ता विधि-विभाग, वी.एस.एस.डी. कालेज कानपुर, (उ०प्र०)

गतिविधियाँ आतंकवादी हिंसा फैलाने, भय कारित करने और सत्ता परिवर्तन करने के लिये की जाती हैं।

आतंकवाद का सुव्यवस्थित अर्थ चैम्बर्स ट्वेंटी फर्स्ट सेन्चुरी डिक्शनरी में इस प्रकार दिया गया है: - ''आतंकवाद व्यवस्थित और संगठित हिंसा और अभित्रास का प्रयोग है, जिसके द्वारा सरकार अथवा समुदाय आदि से एक निश्चित तौर पर कार्य करने अथवा निश्चित मांगें पूरी करने को कहा जाता है।'' आतंकवादियों का लक्ष्य शान्तिपूर्ण मैत्रीभाव वाले लोगों में अशांति फैलाना, अभित्रास कारित करना अथवा हत्या करना होता है।

अन्तरराष्ट्रीय आतंकवाद की समस्या 1972 से ही महासभा के विचाराधीन रही है। महासभा ने 23 सितम्बर, 1972 को निम्नलिखित मद को कार्यसूची में सम्मिलित करने की सिफारिश की थी और उसे छठी समिति के समक्ष प्रस्तुत किया था।

अन्तरराष्ट्रीय आतंकवाद, जो संपूर्ण मानवता को संकट में डालता है या निर्दोष के जीवन को समाप्त करता है, या मूल स्वतन्त्रताओं को खतरे में डालता है।

12 सितम्बर, 2001 और 28 सितम्बर 2001 को संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद् ने आतंकवाद को समाप्त करने के लिए सार्थक प्रस्ताव पारित किया। इस प्रस्ताव में निम्नलिखित सिद्धान्त सुनिश्चित किया गया:-

1. प्रत्येक राज्य का कर्तव्य है कि वह दूसरे राज्यों के विरुद्ध आतंकवाद को संगठित करने, उकसाने, उसकी सहायता और उसमें सहभागीदारी करने से अपने को अलग रखेगा।
2. आतंकवादी गतिविधियों के लिए वित्तीय सहायता पर रोक लगाई जाएगी।
3. राज्य अपने क्षेत्र की सीमाओं के भीतर आतंकवाद को समाप्त करने के लिए सक्रिय कार्यवाही करेगा और सीमा पार के आतंकवाद का निवारण करेगा तथा आतंकवादी को न्याय दिलाना सुनिश्चित करेगा।
4. आतंकवाद को समाप्त करने के लिए अंतरराष्ट्रीय उपायों के अन्वेषण और प्रभावी अनुशासन में सहयोग करेगा।

सितम्बर-2001 के प्रस्ताव के अनुसार आतंकवाद विरोधी समिति का गठन किया गया। इस समिति ने सभी पक्षकार राज्यों को आतंकवाद समाप्त करने के सम्बन्ध में विधि बनाने का सुझाव दिया, फलत: अधिकांश देशों ने आतंकवाद के दमन के लिए कानून बनाए।

भारत में आतंकवाद के निवारण के लिए आतंकवाद निवारण अधिनियम 2002 बनाया गया। इस अधिनियम में आतंकवाद की परिभाषा काफी विस्तृत है।

1. किसी व्यक्ति अथवा अवैध संगठन द्वारा आतंकवादी कार्य करना।

2. देश की एकता, अखण्डता, सुरक्षा अथवा प्रभुसत्ता को खतरा पहुंचाना।
3. जनता या जनता के किसी वर्ग में आतंक फैलाना, खतरनाक साधनों से उन्हें मारना अथवा क्षति पहुंचाना या आतंकित करना।
4. भारत सरकार, राज्य सरकार अथवा उसके अभिकरण द्वारा प्रयोग की जाने वाली किसी सम्पत्ति को नुकसान पहुंचाना या सरकार या किसी अन्य व्यक्ति को कोई कार्य करने या करने से विरत रहने के लिए विवश करने की बाबत व्यक्ति को निरुद्ध करना या उसे मारने की धमकी देना।
5. किसी अवैध संगठन का सदस्य बनना अथवा उसकी सहायता करना।
6. अवैध संगठन के लिए धन संगृहीत करना।

विश्व स्तर पर आतंकवादियों द्वारा निर्दोषों की हत्या, मौलिक स्वतंत्रताओं और मानव गरिमा का उल्लंघन किए जाने पर भारत ने आतंकवाद को समाप्त करने के लिए तथा राज्यों के मध्य क्षेत्राधिकार की एकता और सुरक्षा को संरक्षित किए जाने के लिए अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद पर संयुक्त राष्ट्र को व्यापक अभिसमय का दस्तावेज प्रस्तुत किया है। इसमें 27 अनुच्छेद तथा 3 अनुलग्नक सम्मिलित हैं। अनुच्छेद 1 परिभाषा से संबंधित है। अनुच्छेद 2 के अन्तर्गत किसी व्यक्ति की मृत्यु अथवा शारीरिक क्षति पहुंचाना अथवा राज्य या सरकार के संसाधनों को क्षति पहुंचाना, इन कार्यों में सहायता करना, दुष्प्रेरण करना और सुविधा प्रदान करना आदि को अपराध माना गया है। अनुच्छेद 3 के अनुसार यह अभिसमय राज्यों के आन्तरिक आतंकवाद के संबंध में लागू नहीं होगा। अनुच्छेद 4, 5 तथा 6 के अंतर्गत यह कहा गया है कि प्रत्येक पक्षकार राज्य आतंकवाद को समाप्त करने के लिए विधि बनाने, आवश्यक साधनों का उपयोग करने आदि का उपबंध करेगा। अनुच्छेद 7 में कहा गया है कि यदि कोई व्यक्ति किसी आतंकवादी गतिविधियों में संलग्न है तो उसको शरण देने से पहले पक्षकार राज्य समुचित उपाय करेगा। अनुच्छेद 8 के अनुसार पक्षकार राज्य अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आतंकवाद को समाप्त करने के लिए सहयोग करेंगे।

अनुच्छेद 9 में बताया गया है कि पक्षकार राज्य अपने देश के विधिक उपबंधों के अधीन रहते हुए आतंकवाद को समाप्त करने के लिए दायित्वाधीन व्यक्ति का दायित्व निर्धारित करेंगे। अनुच्छेद 10 के अधीन आतंकवादी गतिविधियों में लिप्त व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाई किये जाने का उपबंध है। अनुच्छेद 11 में यह उपबंध है कि संबद्ध राज्य उसके विरुद्ध कार्यवाई करेगा। अनुच्छेद 12 में आतंकवादी व्यक्ति के मानवाधिकारों की संरक्षा का उपबंध किया गया है। अनुच्छेद 13 में यह उपबंध है कि राज्य एक-दूसरे के साथ मिलकर आतंकवाद को समाप्त करने की कार्यवाई करेंगे। अनुच्छेद 14 में राजनैतिक अपराधों का उल्लेख है।

अनुच्छेद 15 निर्वचन से संबंधित है। अनुच्छेद 16 में एक राज्य द्वारा किसी व्यक्ति को निरुद्ध किए जाने पर दूसरे देश के राज्य द्वारा अन्वेषण आदि में साक्ष्य या पूछताछ के लिए उसकी आवश्यकता होने पर उसको निर्धारित शर्तों के अन्तर्गत स्थानांतरित किए जाने के उपबंधों

का उल्लेख है। अनुच्छेद 17 में अपराधी के प्रत्यर्पण संबंधी उपबंध हैं। अनुच्छेद 18 में यह कहा गया है कि किसी भी राज्य पर इस अभिसमय के कारण अंतरराष्ट्रीय मानवीय विधि और संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में प्राप्त उसके अधिकारों और दायित्वों पर प्रभाव नहीं पड़ेगा। अनुच्छेद 19 में कहा गया है राज्य द्वारा अपराधी के नियोजन की रिपोर्ट महासभा के महासचिव को दी जाएगी। अनुच्छेद 20 में यह उपबंध है कि पक्षकार राज्य अभिसमय के उपबंधों को लागू करने के लिए प्रत्येक राज्य की सम्प्रभुता, एकता और अखण्डता को बनाए रखने के लिए उसके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे।

अनुच्छेद 21 में यह कहा गया है कि इस अभिसमय से राज्य के अंतरराष्ट्रीय विधि के अन्य दायित्वों और अधिकारों पर प्रभाव नहीं पड़ेगा। अनुच्छेद 22 के अनुसार राज्य की आंतरिक अधिकारिता और कार्यों पर प्रभाव नहीं पड़ेगा। अनुच्छेद 23 में यह उपबंध है कि अभिसमय के निर्वचन संबंधी विवाद को मध्यस्थ द्वारा विनिश्चित किया जाएगा। अनुच्छेद 24, 25, 26 एवं 27 अभिसमय पर हस्ताक्षर उसके प्रवर्तन, अधिसूचित किए जाने और सत्यापित प्रतियों से संबंधित हैं।

अभिसमय के अनुलग्नक प्रथम में आतंकवाद समाप्त करने के अभिसमयों, घोषणा और संधि का विवरण है। अनुलग्नक द्वितीय पारस्परिक विविध सहायता की प्रक्रिया से संबंधित है। अनुलग्नक तृतीय में प्रत्यर्पण प्रक्रिया का उल्लेख है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा अभी तक इस अभिसमय को पारित करवाने और हस्ताक्षर की कार्यवाही सुनिश्चित नहीं की गई है।

आतंकवाद निवारण के लिए विश्व समुदाय द्वारा किये जा रहे प्रयासों के समक्ष मानवाधिकार के रक्षा का बड़ा सवाल खड़ा हो रहा है। आतंकवादियों के न्याय पाने के अधिकार और उपलब्ध मानवाधिकारों का संरक्षण उनको मिलना चाहिए या नहीं। मानव अधिकार मानव को मानव होने के नाते प्राप्त होता है, लेकिन जो मानवता के शत्रु है, जो अपने सनक के सामने मानवता का कोई मूल्य नहीं समझते जो बालक, वृद्‌ध, नारी, घायल, बीमार की हत्या करना, सड़क, अस्पताल, होटल में जन सामान्य को बंधक बनाते हैं क्या उन्हें मानव की श्रेणी में इस कारण रखा जा सकता है कि वह मानव की तरह दृश्यमान है, परन्तु उनका मस्तिष्क मानवीय संवेदना से शून्य है यह एक विचारणीय प्रश्न है।

मानव अधिकार मानव समुदाय को गरिमा शान्ति सुरक्षा के साथ जीवन जीने के लिए है। आतंकवादी मानव अधिकारों का कभी भी सम्मान नहीं करते हैं। वे मानव अधिकार के मूल चिन्तन की ही हत्या करना चाहते हैं, वे अपने राजनीतिक या धार्मिक एजेण्डा के आगे विश्व समुदाय की विविधता और उसकी मधुरता को नष्ट करना चाहते हैं। वे विश्व के उस सौन्दर्य को नष्ट करना चाहते हैं जो मानव समुदाय की विविधता के कारण हैं। मानव अधिकार विविधता को सुरक्षा प्रदान करता है। ये विविधता विश्व समुदाय की पारस्परिक निर्भरता है। इसके बिना विश्व समुदाय की कल्पना करना मुश्किल है।

आतंकवादियों के मानवाधिकार की बात करने से मानवाधिकार के दर्शन को बड़ा गहरा आघात पहुंच सकता है, यदि सुरक्षा और इंसानियत की भावना को समूल नाश करने वाले आतंकवादियों को मानवाधिकार उपलब्ध कराने का प्रयास किया जायेगा, तो लोगों के मानवाधिकार का क्या होगा।

आतंकवादी, मानव अधिकार तथा मानवता दोनों के ही सबसे बड़े शत्रु हैं। इन्हें किसी भी तरह का आश्रय देना या उनके मानव अधिकारों के बारे में सोचना न्यायोचित एवं तर्क संगत प्रतीत नहीं होता।

* * *

साम्प्रदायिक सदभाव तथा मानव अधिकार

• डॉ0 रेखा द्विवेदी

भारतवर्ष का संविधान संपूर्ण विश्व के किसी भी देश के संविधान की तुलना में सबसे ज्यादा मानव अधिकारों को महत्व देता है क्योंकि यह संविधान लगभग उसी समय बना था जब 1948 में पूरे विश्व में मानवाधिकारों की घोषणा की गयी थी।

मानवाधिकार वे अधिकार हैं जो कि मानव को सिर्फ मानव होने की वजह से मिलते हैं। इन अधिकारों के लिए उसका कुछ और होना आवश्यक नहीं है। इसके लिए न तो यह आवश्यक है कि वह किसी विशेष जाति, धर्म, वर्ग, राष्ट्र, प्रान्त या रंग का हो या फिर उसमें कोई विशेष योग्यता ही हो। सदियों से जिस तरह से भारतीय समाज का निर्माण हुआ है वह जिस तरह से चलता आ रहा है उस पर कई एक बड़े-बड़े प्रश्न चिह्न खड़े हो रहे हैं। विश्व स्तर पर जिस तरह से भारतवर्ष को महात्मा गाँधी के अहिंसावादी रूप के लिए जाना जाता है, उसी तरह जाति प्रथा, सती प्रथा, बाल विवाह, विधवा विवाह न होना जैसी कुरीतियों एवं सामाजिक असंगतियों के लिए भी जाना जाता है जिनके माध्यम से मानवाधिकारों का सीधे-सीधे हनन होता रहा है। समाज एक परिवर्तनशील इकाई है अत: समय-समय पर इसमें भी परिवर्तन होते रहे हैं।

1947 में भारतवर्ष की आज़ादी के बाद जब कानून बना था तब दबे-कुचले एवं पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए विशेष कानून एवं विशेष अधिकार भी दिए गये। इनमें से कुछ मूलभूत अधिकार हैं जिन्हें हम मानवाधिकार की संज्ञा दे सकते हैं। अनुच्छेद 15 के अनुसार –

• *निदेशक, राष्ट्रीय साम्प्रदायिक सद्भाव प्रतिष्ठान, दिल्ली*

धर्म, जाति, लिंग, नस्ल या फिर जन्म-स्थान के आधार पर कोई भेदभाव न करना :

- धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग या जन्म- स्थान के आधार पर राज्य किसी के साथ भेदभाव नही कर सकता।
- इस अनुच्छेद के अनुसार औरतों और बच्चों के लिए कुछ भी विशेष करने का बेरोक-टोक पूरा अधिकार राज्य सरकार को होगा।
- अनुच्छेद 29 के भाग दो के अनुसार राज्य सरकार सामाजिक एवं शैक्षिक तौर पर पिछड़े हुए लोगों, जनजातियों तथा पिछड़ी हुई जातियों के उत्थान के लिए साधिकार विशेष व्यवस्था कर सकता है।

जहाँ एक ओर "धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग या जन्म-स्थान के आधार पर कोई भेदभाव नहीं कर सकता, वहीं अनुच्छेद 29 के भाग दो के अनुसार राज्य सरकार सामाजिक एवं शैक्षिक तौर पर पिछड़ी हुई जातियों के उत्थान के लिए साधिकार विशेष व्यवस्था कर सकता है। मूलभूत अधिकार मानवों के हित के लिए हैं। यदि अनुच्छेद 15 (1) लें तो राज्य किसी भी नागरिक के साथ भेदभाव नहीं कर सकता। राज्य और मूलभूत अधिकार तो नये हैं परन्तु भारतवर्ष में रहने वाला मनुष्य जिस समाज में सदियों से रहता आया है वह चाहे सताने वाले हों और चाहे सताये जाने वाले मानसिक रूप से इतने गुलाम हो चुके हैं कि उन तक नियम पहुँचते ही नहीं। फिर चाहे वह मूलभूत अधिकार हों या मानवाधिकार। राज्य सिर्फ उनकी ही मदद करने में समर्थ है जो स्वयं की मदद कर सकते हैं। राज्य यदि मेडिकल कालेज, इंजीनियरिंग कॉलेज में दाखिले के लिए स्थान आरक्षित करता है और नौकरियों में आरक्षण देता है तो वह उन्हें ही मिलता है जो कि पहले से ही अच्छी स्थिति में हैं। उनका क्या जो इतने अँधेरों में घिरे हैं जिन तक कोई रोशनी की किरण पहुँचती ही नहीं है और शिक्षा रूपी मशाल उनके पास कहीं दूर दूर तक नहीं है जिसकी रोशनी में वह कुछ देख सके और जान सके कि उनके अधिकार क्या हैं। यह देश का वह तबका है जो अधिकार जैसा शब्द जानता ही नहीं है, बस कर्तव्य जानता है। वह चाहे मूलभूत अधिकार हों या फिर मानवाधिकार सब उनके पेट की आग में जलकर राख हो जाते हैं। उनकी भोजन और वस्त्र जैसी आवश्यकताएँ पूरी नहीं होती। शिक्षा और स्वास्थ्य के मुद्दे तो कहीं है ही नहीं। उनकी स्थिति कुछ ऐसी है:-

- उनका भोजन ज्यादातर पोषक नहीं होता। यहाँ तक कि गोबर से गेहूँ निकालकर उनकी रोटी बनाकर खाते भी उन्हें देखा गया है।
- घरों के नाम पर झोंपड़े। न कोई ड्रेनेज सिस्टम न सफाई, न मौसम की बेरहमी से बचाव की कोई व्यवस्था। देश के अनेक हिस्सों में आई बाढ़ इसका ज्वलंत उदाहरण माना जा सकता है।
- पानी की जो व्यवस्था है वह इन्सानों के जीने लायक नहीं कही जा सकती।
- शिक्षा तो उनके लिए स्वप्न जैसी है।

जब ऐसे लोग अपनी जीवन शैली में सुधार के लिए शहरों की तरफ भागते हैं तो वहाँ ठेकेदार इनका शोषण करते हैं। मजदूरी के जितने पैसों पर यह दस्तखत करते हैं इन्हें उससे कम देकर भगा दिया जाता है। यहाँ उनकी बची खुची अस्मिता भी समाप्त हो जाती है। जो इन्हें खुले माहौल में रहने की आदत होती है उससे भी वंचित होकर यह गन्दी झुग्गी झोपड़ियों में रहने को मज़बूर हो जाते हैं। एक ओर जहाँ उनके मानवाधिकारों का संरक्षण नहीं होता है, वहीं दूसरी ओर उन्हीं के संपन्न जाति भाईयों एवं बंधुओं को पीढ़ी-दर-पीढ़ी सारे अधिकार प्राप्त होते रहते हैं फिर जार्ज आरवेल लिखित पुस्तक एनिमल फार्म जैसा इनका हाल हो जाता है। पहले जहाँ अन्य उच्च जातियाँ उनका शोषण करती थीं, वहीं अब उन्हीं के बन्धु-बांधव उनका शोषण करने लगते हैं।

इसका एक अन्य पक्ष यह भी है जैसा कि थामस फ्रीड मैन ने अपनी पुस्तक "द वर्ल्ड इज लैट" में लिखा है कि "कोलम्बस भारत खोजने निकला था और उसने अमेरिका खोज लिया और वह स्वयं भारत खोजने आये थे और अमेरिका पहुँच गये" जहाँ सारा विश्व एक हो रहा है जहाँ चीन की बनी वस्तुएँ पूरा विश्व खरीद रहा है। अमेरिका का काम भारत में बैठे युवा कर रहे हैं, वहीं इस देश में सांप्रदायिक कलह हमारा पीछा नहीं छोड़ रही। कलह अस्मिताओं को लेकर है या फिर रोजी- रोटी का सवाल है या नेताओं का वोट बैंक है या फिर सब कुछ मिला जुला। परंतु जो कुछ भी है वह न मानव के लिए अच्छा है न समाज के लिए न विश्व के लिए। भारत के उत्तर-पूर्वी भाग में बाहर से आये लोगों को जिस प्रकार प्रताड़ित किया जाता है वह इसी सांमती प्रथा की निशानी है तथा आज की ओछी राजनीति का प्रमाण है। राजनेता ही सब कुछ नहीं करते वह तो बस लोगों के भीतर दबे आक्रोश को अपने लाभ के लिए भ्रमित कर परोक्ष रूप से दिशानिर्देश देते हैं।

मूलभूत अधिकारों के नाम पर राज्य जो भी सुविधायें देता है उनका समुचित व सही उपयोग नहीं हो पाता है। बाइबिल के अनुसार "जिसके पास जो है उसे वह और दिया जाएगा"ऐसा लगता है कि जो भी अधिकार हैं उनमें से कुछ ऐसे हैं कि जिसके पास जो है उसे ही वह दिया जा रहा है। जहाँ कहीं भी जो भी अल्पसंख्यक एवं बेकसूर हैं उन्हें ऐसे अपराधों की सजा भोगनी पड़ती है जो उन्होंने किया ही नहीं। अमानवीय कृत्य यदा-कदा सब जगह और सब कालों में होते आए हैं और जिसके परिणाम स्वरूप मानवाधिकारों का हनन होता रहता है। हर एक मनुष्य प्रतिष्ठा और अधिकारों से बराबर है। सभी मनुष्य विवेक और अभिज्ञता से सम्पन्न हैं और सभी को एक दूसरे के साथ भ्रातृत्व भाव रखने की आवश्यकता है।

डॉ० आलोक टंडन ने "विकल्प और विमर्श" नामक अपनी पुस्तक में लिखा है।

संप्रति भारतीय समाज जिस दौर से गुजर रहा है उसमें जब देखो तब जहाँ-तहाँ बम ब्लास्ट हो रहे हैं। कब, कौन, कहाँ और कैसे बेमौत मार दिया जाये उसे पता नहीं रहता। बढ़ती जनसंख्या, वोट बैंक की राजनीति, युवा वर्ग के लिए काम की कमी, धर्म, जाति सब कुछ जैसे छिन्न-भिन्न हो रहा है। ऐसे में यदि हम मानव अधिकारों से बढ़कर मनुष्य के कर्तव्यों की बात करें तो इस

परिप्रेक्ष्य में यह उचित जान पड़ता है। इसी विषय में डॉ0 आलोक टंडन का यह उद्धरण प्रासंगिक प्रतीत होता है "मानव अधिकार की अवधारणा में अधिकार पहले है और कर्तव्य बाद में, जबकि प्राचीन परम्पराओं वाले भारत देश में कर्तव्य को प्राथमिकता दी गयी है।" धर्मवीर भारती जी के शब्दों को उधार लेकर कहें तो -

"मरण नहीं ओ व्याध
मात्र रूपांतरण है वह
सबका दायित्व लिया मैंने अपने ऊपर
अपना दायित्व सौंप जाता हूँ मैं सबको।"

* * *

मानवाधिकार एवं खाद्य सुरक्षा एक अध्ययन

• *जितेन्द्र कुमार गौतम*

सामान्य अर्थों में खाद्य सुरक्षा से अभिप्राय "देश के सभी नागरिकों को उनकी शारीरिक आवश्यकतानुसार पर्याप्त मात्रा में प्रत्येक समय भोजन की उपलब्धता से है।" विश्व विकास रिपोर्ट ने खाद्य सुरक्षा की परिभाषा सभी व्यक्तियों के लिये सभी समय पर एक सक्रिय एवं स्वस्थ जीवन के लिये पर्याप्त भोजन की उपलब्धि के रूप में की है। जबकि विश्व खाद्य एवं कृषि संस्था के अनुसार सभी व्यक्तियों को सही समय पर उनके लिये आवश्यक बुनियादी भोजन के लिये भौतिक एवं आर्थिक दोनों रूपों से उपलब्धि के आश्वासन को खाद्य सुरक्षा माना गया है। इन परिभाषाओं से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं :-

- खाद्य सुरक्षा के लिये किसी देश की समग्र जनसंख्या को खाद्यान्न की भौतिक उपलब्धि आवश्यक है।
- सभी को पर्याप्त खाद्यान्न उपलब्ध कराने के लिये यह जरूरी है कि लोगों के पास पर्याप्त क्रयशक्ति हो ताकि वे अपनी जरूरत के लिये खाद्य पदार्थ हासिल कर सकें।
- स्वस्थ जीवन के लिये उपलब्ध खाद्य, गुणवत्ता और मात्रा दोनों रूप में पर्याप्त होने चाहिएं ताकि वे पोषण संबंधी आवश्यकता को पूरा कर सकें।
- प्रत्येक समय विश्वसनीय और पोषण की दृष्टि से खाद्यान्न का पर्याप्त संभरण दीर्घकालिक आधार पर उपलब्ध होना चाहिए।

खाद्य समस्या की स्थिति

विश्व की जनसंख्या के बढ़ने के कारण लोगों की क्षमता तथा खाद्यान्नों की सापेक्षित पूर्ति कम होती जा रही है। फलत: इस समय पूरे विश्व में लगभग 84 करोड़ लोग भुखमरी और कुपोषण के शिकार हैं। विश्व में शहरी जनसंख्या प्रतिवर्ष 6 करोड़ की दर से बढ़ रही है, जिसके कारण खाद्य वितरण एक बड़ी चुनौती बनता जा रहा है।

• *जितेन्द्र कुमार गौतम (पुस्तकालयाध्यक्ष), क्लासिक कालेज आफ लॉ, बदायूं रोड, बरेली, (उ0प्र0)*

सोमालिया, सूडान, रवांडा और इथियोपिया में लाखों लोग भूखमरी के कारण मर चुके हैं। विश्व खाद्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार उन विकासशील देशों की स्थिति और खराब है, जहां खाद्यान्न उत्पादन और वितरण दोनों तुलनात्मक रूप से काफी निम्नस्तरीय हैं। जहां तक भारत का प्रश्न है, 1960 के दशक से प्रारंभ हुई हरित क्रांति की पहुंच अभी तक मात्र 30 प्रतिशत खेतों तक ही हो पायी है।

1974 में रोम (इटली) में विश्व खाद्य एवं कृषि संगठन द्वारा आयोजित विश्व खाद्य सम्मेलन में विश्व के कुल खाद्य भंडार के स्तर में लगातार होने वाली कमी पर गंभीर चिंता व्यक्त की गयी थी। इस सम्मेलन में 1984 को लक्ष्य वर्ष इस प्रकार घोषित किया गया था कि इस वर्ष के पश्चात कोई भी व्यक्ति भूखा न रहे तथा विश्व का कोई भी व्यक्ति शारीरिक या मानसिक कुपोषण से प्रभावित न हो। इसके पश्चात् विभिन्न देशों द्वारा इस दिशा में तेजी से कदम उठाया गया, जिसके फलस्वरूप कई विकासशील देशों में कृषि उत्पादन में काफी वृद्धि हुई।

विकासशील देशों की 33 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रही है। यद्यपि पूरे विश्व में खाद्यान्न की कुल आवश्यक मात्रा उपलब्ध है, परन्तु खाद्यान्न का असमान वितरण इस समस्या को जटिल बना देता है। यदि प्रति कैलोरी उपलब्धता की दृष्टि से देखा जाये तो आज विश्व के प्रत्येक व्यक्ति के लिये 2500 कैलोरी अधिक है। परन्तु मुख्य समस्या असमान वितरण तथा लोगों की क्रय शक्ति के अभाव की है। इसके कारण आज विश्व के लगभग 84 करोड़ लोग पर्याप्त दैनिक भोजन नहीं कर पाते हैं। दक्षिण एशिया की लगभग 30 प्रतिशत जनसंख्या कुपोषण की शिकार है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के एक आकलन के अनुसार विश्व की लगभग 10 करोड़ जनसंख्या किसी न किसी रूप में कुपोषण की शिकार है जबकि 9 करोड़ लोग गरीबी, बीमारी एवं कम आयु में मृत्यु जैसे कारणों से ग्रसित हैं। विकासशील देशों में प्रति वर्ष 1.5 करोड़ बच्चे कुपोषण तथा 50 हजार अन्य पर्यावरणीय बीमारियों के कारण मौत के शिकार हो जाते हैं।

विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार विश्व में मात्र 33 देश ऐसे हैं, जहां प्रति व्यक्ति 3000 या उससे अधिक कैलोरी खाद्यान्न उपलब्ध होता है।

खाद्य समस्या के कारण

विकासशील देशों में विश्व की 74 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। ये देश कुपोषण के साथ-साथ खाद्यान्नों के अभाव की स्थिति से गुजर रहे हैं। इनमें से कुछ देश वर्षों से अकाल एवं भुखमरी से ग्रस्त हैं। विकासशील देशों में खाद्यान्न समस्या का मुख्य कारण जनसंख्या विस्फोट, निम्न उत्पादकता, कृषि में विविधता का अभाव, वितरण संबंधी असमानता, पारगमन क्षति, बीमारी के कारण फसलों की बर्बादी, कृषि के आधुनिकीकरण का अभाव, भूमि वितरण में असंतुलन आदि है।

विकाशसील देशों में प्रति हेक्टेयर उत्पादन काफी कम है तथा भूमि पर जनसंख्या का अत्यधिक दबाव होने के कारण लोगों की आवश्यकता पूरी नहीं हो पाती है, जिससे खाद्य समस्या उत्पन्न हो जाती है। यहां कृषि में विविधता का भी अभाव है। प्राय: अधिकांश खेतों में एक फसली संयोजन पाया जाता है, जिससे उत्पादन कम होता है। फलत: खाद्यान्न की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

विकासशील देशों में कृषि अत्यंत पिछड़ी हुई अवस्था में है। कृषि में आधुनिक तरीकों का प्रयोग नहीं किया जाता है तथा फसलों में अनेकों प्रकार की बीमारियां फैल जाती हैं। कृषक ज्ञान के अभाव में कभी-कभी अधिक मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग कर देते हैं, जिससे उत्पादित खाद्यान्नों में रासायनिक तत्वों की बहुलता हो जाती है। इन दूषित खाद्यान्नों का सेवन करने से कई तरह की बीमारियां फैलती हैं। फसलों का एक बड़ा भाग भी बीमारियों के कारण नष्ट हो जाता है।

खाद्य समस्या का एक राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय कारण वितरण संबंधी असमानता है जिससे गरीब विकासशील देशों में जनसंख्या का अधिकांश भाग अपनी आय का बहुत कम हिस्सा ही पोषक तत्वों में लगा पाता है। इससे लोगों में प्रोटीन, विटामिन आदि की कमी बनी रहती है। विकासशील देशों में रख-रखाव, प्रोसेसिंग तथा पैकिंग एवं रेफ्रिजरेशन की सुविधा में कमी तथा पिछड़ी प्रौद्योगिकी होने के कारण बहुत अधिक खाद्यान्नों की बर्बादी हो जाती है।

खाद्य सुरक्षा हेतु संचालित विभिन्न योजनायें

क्र.सं.	योजना/कार्यक्रम का नाम	प्रारंभ होने का वर्ष	प्रमुख उद्देश्य	अन्य विवरण
1.	मध्याह्न भोजन योजना	1995-96	स्कूली बच्चों को नियमित रूप से नि:शुल्क खाद्यान्न प्रतिमाह उपलब्ध कराना।	प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत बच्चों को प्रतिमाह नि:शुल्क गेहूं/चावल उपलब्ध कराया जा रहा है।
2.	सोशल सेटीमेंट योजना	1995-96	आंगनवाड़ी केन्द्रों के माध्यम से बच्चों हेतु पोषक आहार उपलब्ध कराना।	4.62 लाख सार्वजनिक वितरण प्रणाली की दुकानों से 30 हजार करोड़ रूपये का अनाज आधी दरों पर दिया जा रहा है। जुलाई 2001 से 10 किलो के स्थान पर 25 किलो अनाज प्रति परिवार प्रतिमाह कर दिया गया और एक अप्रैल 2002 से इसे बढ़ाकर 25 से 30 कि0ग्रा0 प्रति परिवार प्रतिमाह कर दिया गया।
3.	समन्वित बाल विकास योजना के अन्तर्गत पोषण कार्यक्रम	1998-99	बच्चों के उचित पोषण हेतु गरीब परिवारों को सस्ती दरों पर खाद्यान्न उपलब्ध कराना।	गरीबी रेखा के नीचे के परिवारों को बी0पी0एल0 दरों पर अनाज उपलब्ध कराया जा रहा है।
4.	अन्नपूर्णा योजना	1999-2000	निराश्रित वृद्धों के लिये प्रतिमाह 10 कि0ग्रा0 खाद्यान्न मुफ्त दिया जाना।	राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन के अंतर्गत अनाच्छादित व्यक्तियों को 10 किलो प्रति व्यक्ति अनाज नि:शुल्क रूप से उपलब्ध कराया जाता है।
5.	अंत्योदय अन्न योजना	2000-2001	अत्यंत गरीब परिवारों को अत्यंत सस्ती दरों पर प्रतिमाह खाद्यान्न उपलब्ध कराना।	इस योजना के अंतर्गत प्रति परिवार प्रति माह 25 किग्रा0 गेहूं/चावल एक करोड़ गरीबों को 2/3 रूपये प्रतिमाह के हिसाब से उपलब्ध कराया जा रहा है।

क्र.सं.	योजना/कार्यक्रम का नाम	प्रारंभ होने का वर्ष	प्रमुख उद्देश्य	अन्य विवरण
6.	संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना	2001-2002	रोजगार के साथ खाद्य सुरक्षा हेतु प्रत्येक कामगार को नकद राशि के अलावा प्रतिदिन 5 कि॰ग्रा॰ अनाज उपलब्ध कराया जाना।	15 अगस्त 2001 को प्रधानमंत्री द्वारा घोषित इस योजना के अंतर्गत केन्द्र द्वारा राज्यों को 50 लाख टन अनाज नि:शुल्क दिया जा रहा है।
7.	काम के बदले अनाज योजना	2001-2002	सूखा और बाढ़ से प्रभावित क्षेत्रों के लोगों हेतु काम के बदले खाद्यान्न उपलब्ध कराना।	सूखा और बाढ़ प्रभावित राज्यों हेतु केंद्र सरकार द्वारा 2,425 करोड़ रूपये मूल्य का 24.42 लाख टन अनाज राज्य सरकारों को नि:शुल्क प्रदान किया गया है।

भारत में खाद्य समस्या

देश के सभी नागरिकों को समुचित मात्रा में गुणवत्तायुक्त खाद्यान्न/भोजन सदैव उपलब्ध रहे, इसको सुनिश्चित करने का नैतिक दायित्व प्रमुख रूप से सरकार का होता है। लेकिन अभी भी देश के कई भागों में कभी-कभी खाद्यान्न की अनुपलब्धता से अनेक लोगों को भुखमरी का सामना करना पड़ता है। जैसे पश्चिमी उड़ीसा में नुआपाड़ा, कालाहांडी, बोलनगीर, कोरापुट, रामगढ़ आदि ऐसे जिले हैं जहां पूरे वर्ष औसत ग्रामीणों और आदिवासियों को दो वक्त की रोटी भी नसीब नहीं हो पाती है। भूख से मरने की घटना सिर्फ उड़ीसा में ही नहीं, बल्कि देश के धनी प्रदेश महाराष्ट्र तक में हुई है। आंध्र प्रदेश भी इसका अपवाद नहीं है जो साइबर स्टेट कहा जाता है।

खाद्य सुरक्षा तथा भारतीय सार्वजनिक वितरण प्रणाली

भारतीय सार्वजनिक वितरण प्रणाली को हालांकि अब 60 वर्ष से अधिक हो चुके हैं, खाद्यान्नों की खरीद, भंडारण और वितरण के लिए बुनियादी ढांचा तथा इसके वर्तमान रूप में इस प्रणाली की शुरुआत 1965 में भारतीय खाद्य निगम की स्थापना से ही मानी जा सकती है। इसके लिए फूड कॉरपोरेशन आफ इंडिया एक्ट, 1964 संसद के एक अधिनियम के रूप में लाया गया था। देश की खाद्य नीति के हिस्से के रूप में इस संगठन के सुझाए गए तीन उद्देश्य इस प्रकार थे :-

- लाभकारी कीमतें उपलब्ध कराकर किसानों और उत्पादकों के हितों की रक्षा करना।
- समाज के विशेषकर कमजोर वर्ग के लोगों को वाजिब कीमतों पर खाद्यान्न उपलब्ध कराना।
- सूखा, बाढ़ तथा तूफान आदि जैसी दैवी आपदाओं के कारण उत्पन्न स्थितियों का सामना करने के लिए खाद्यान्न का सुरक्षित भंडार बनाकर रखते हुए खाद्य सुरक्षा उपलब्ध कराना।

खाद्यान्न उत्पादन की स्थिति

देश में वर्तमान में उपलब्ध खाद्यान्न भंडार और खाद्यान्नों के वार्षिक उत्पादन के आंकड़ों को देखकर प्रतीत होता है कि देश में खाद्यान्नों का उत्पादन और इसकी उपलब्धता हमारी वर्तमान

आवश्यकता से अधिक ही है और देश खाद्यान्न के मामले में पूरी तरह आत्मनिर्भर हो गया है। लेकिन वास्तविकता ऐसी नहीं है।

खाद्य एवं पोषण सुरक्षा की अवधारणा

विगत दशकों में शनैः शनैः खाद्य एवं पोषण सुरक्षा की अवधारणा विकसित हुई, जिसका संबंध न सिर्फ खाद्यान्न उत्पादन तंत्र से है अपितु खाद्यान्न की उपलब्धता से भी है। इसका संबंध ऐसी स्थिति से है जब व्यक्ति पोषण की दृष्टि, मात्रा एवं गुणवत्ता में उपयुक्त आहार ग्रहण करता है तथा मुक्त पदार्थ जैविक दृष्टि से स्वास्थ्यवधक तथा जीवनदायी होता है। खाद्य सुरक्षा के व्यापक रूप से स्वीकृत परिभाषा के दो भाग हैं :-

- प्रत्येक व्यक्ति को भौतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरणीय रूप से संतुलित आहार प्राप्त हो, जिसमें सूक्ष्म तथा स्पष्ट पौष्टिक तत्व विद्यमान हों। जिसके अंतर्गत स्वच्छ पेयजल, स्वच्छता, पर्यावरणीय स्वच्छता, प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा तथा शिक्षा आते हैं। ये स्वस्थ जीवन प्रदान करने में सहायक होते हैं।
- पारिस्थितिकी मित्र विधियों द्वारा अनुकूल उत्पादन तकनीकी की मदद से खाद्यान्न प्रसंस्कृत किया जाता है। जो फसल, पशुपालन, वानिकी तथा मत्स्य पालन के प्राकृतिक संसाधन आधार को तेज एवं संरक्षित करता है।

उपलब्धियां एवं चुनौतियां

स्वतंत्रता के पश्चात् के प्रारंभिक वर्षों में अधिकाधिक खाद्यान्न उत्पादन करने तथा वहन करने योग्य मूल्य पर उसके प्रभावी वितरण पर जोर दिया गया। आज देश में 3 करोड़ टन के खाद्यान्न का सुरक्षित भंडार है। अनुप्रयुक्त शोध, उन्नत तकनीकी, पर्याप्त सुरक्षित खाद्य भंडार, जन वितरण प्रणाली के माध्यम से उचित वितरण तथा संतुलित कृषि उत्पाद मूल्य के सहारे उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि की जा सकी है। इसके साथ-साथ कई रोजगार सृजन कार्यक्रमों का भी इस उपलब्धि में योगदान है। इनमें काम के बदले अनाज कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, स्वरोजगार हेतु ग्रामीण युवकों को प्रशिक्षण, जवाहर रोजगार योजना, एकीकृत बाल विकास योजना, ग्रामीण महिला एवं बाल विकास, क्षेत्र विकास के विशेष कार्यक्रम जैसे मरुभूमि विकास कार्यक्रम, गहन कृषि विकास कार्यक्रम, कमांड क्षेत्र विकास कार्यक्रम, प्रमुख हैं।

इन उपलब्धियों के बावजूद भारत की खाद्य सुरक्षा को चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है क्योंकि भारत की जनसंख्या प्रतिवर्ष 1.8 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है। जनसंख्या की इस द्रुत वृद्धि के अनुरूप खाद्यान्न का उत्पादन हो सका। इसका मुख्य कारण हरित क्रांति के पश्चात् भारतीय कृषि में विज्ञान एवं तकनींकी के व्यापक उपयोग से अपेक्षित उत्पादन किया जा सका। किंतु अब हरित क्रांति का असर कम होता जा रहा है। ऐसा अनुमान किया जा रहा है कि वर्ष 2030 तक 4 करोड़ टन खाद्यान्न का आयात करना पड़ेगा। ऐसी शर्मनाक स्थिति स्वतंत्रता पूर्व के भारत

में भी नहीं थी। परिस्थिति को ठीक से समझने के लिए वर्तमान खाद्यान्न की स्थिति तथा वर्ष 2030 तक की अनुमानित आवश्यकता पर ध्यान देना आवश्यक है।

अंकुश एवं अवसर

अब निवेश में कमी के कारण कमजोर आधारभूत संरचना में कई अंकुश उत्पन्न हुए हैं, किंतु इससे अवसरों में बढ़ोतरी आई है। वर्तमान फसल उत्पादन के आधार पर देश में खाद्यान्न चुनौती का सामना करने की संभावना है। भारत में अधिकांश फसल उत्पादन विश्व के औसत से कम है। इससे इस बात के संकेत मिलते हैं कि देश में फसल उत्पादन की क्षमता बढ़ाई जाए। यदि सही पद्धति अपनाई जाए तो विशेषज्ञों की राय में उपलब्ध संसाधन से देश में 25 करोड़ टन अतिरिक्त अन्न का उत्पाद किया जा सकता है। इसके लिए निवेश में वृद्धि, उत्पादकता में बढ़ोत्तरी, उचित जल प्रबंधन, पर्यावरण अनुकूल फसल पद्धति, मिट्टी की गुणवत्ता में वृद्धि तथा संरक्षित क्षेत्र की उत्पादकता को बढ़ाना होगा। जिन क्षेत्रों की संभावनाओं का पूर्ण दोहन नहीं किया गया है, उनके दोहन के लिए उपयुक्त प्रबंधन पद्धति अपनानी चाहिए।

खाद्य सुरक्षा हेतु संचालित योजनाएं एवं खाद्य सब्सिडी पर व्यय

देश में सभी स्तरों पर खाद्य सुरक्षा की व्यवस्था और कुपोषण से मुक्ति दिलाने जैसे अहम उद्देश्यों को लेकर पिछले कई वर्षों से सरकार द्वारा विभिन्न कार्यक्रमों और योजनाओं को संचालित किया गया। वर्तमान में इस व्यवस्था के अंतर्गत देश भर में 8 करोड़ से अधिक बच्चे लाभान्वित हो रहे हैं। सोशल सेटीनेंट योजना (1995-96) के माध्यम से देश भर में संचालित आंगनवाड़ी केंद्रों द्वारा बच्चों हेतु पोषक आहार प्रदान किये जाने की व्यवस्था की गयी है। देश भर में विभिन्न प्रदेश सरकारों द्वारा चयनित गरीबों को आधी दरों पर खाद्यान्न उपलब्ध कराने की लक्षित खाद्यान्न प्रणाली वितरण प्रणाली (1997-98) की महत्त्वाकांक्षी योजना के अंतर्गत देश भर में फैली 4.62 लाख सार्वजनिक वितरण की दुकानों से 30 हजार करोड़ रुपये मूल्य का अनाज सरकार द्वारा आधी दरों पर उपलब्ध कराया जा रहा है। इसके अंतर्गत पूर्व में प्रति परिवार 10 किलो खाद्यान्न प्रतिमाह दिया जाता था, लेकिन जुलाई 2001 में केंद्र सरकार द्वारा लिय गये एक महत्वपूर्ण निर्णय के अनुसार यह अब 25 किलोग्राम प्रति परिवार प्रतिमाह उपलब्ध कराया जाता है।

खाद्य सुरक्षा के संबंध में योजना आयोग की रिपोर्ट

भारत सरकार द्वारा पिछले कई वर्षों से खाद्य सुरक्षा व्यवस्था को अधिक मजबूत बनाने के लिए इस मद में अनुदान की मात्रा को अबाध गति से बढ़ाया जा रहा है, लेकिन बढ़ते हुए अनुदानों के बावजूद यह न केवल पूरी तरह अप्रभावी और निष्फल रही है बल्कि किसानों के लिए घातक भी सिद्ध हो रही है। पिछले कई वर्षों से देश में खाद्यान्नों के उत्पादन में कोई विशेष वृद्धि न होने के बावजूद भी अनाजों के बाजारों में मन्दी का वातावरण बना हुआ है। इसी कारण वर्तमान में

सरकारी गोदामों में खाद्यान्न भंडार की मात्रा बढ़ते-बढ़ते 6.09 करोड़ टन (3.76 करोड़ टन गेहूं तथा 2.33 करोड़ टन चावल) तक पहुंच गयी है। यह मात्रा बफर स्टाक की निर्धारित सीमा से 4.36 करोड़ अधिक है लेकिन राजस्थान, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश जैसे कई राज्यों में भुखमरी और कुपोषण से लाखों व्यक्ति प्रतिवर्ष अकाल मौत का शिकार हो रहे हैं। उल्लेखनीय है कि इसमें से काफी मात्रा में खाद्यान्न तो सात वर्ष तक पुराना है जो जब खाने योग्य भी नहीं रह गया है। दूसरे अधिक दिनों तक भंडारण किये जाने के कारण इसका मूल्य काफी बढ़ जाता है क्योंकि वर्तमान में इसके भंडारण और सुरक्षा पर लगभग 2 रुपए प्रति किलोग्राम प्रतिवर्ष तक सरकार को खर्च करना पड़ रहा है।

खाद्य सुरक्षा के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय का मत एवं निर्देश

पिछले कुछ दिनों से देश में पर्याप्त खाद्यान्न भंडारण के बावजूद कई राज्यों में भुखमरी की स्थिति से चिंतित कुछ लोगों द्वारा सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा भी खटखटाया गया जिससे देश में उपलब्ध खाद्यान्न को बर्बाद होने से भी बचाने का रास्ता निकाला जा सके तथा भुखमरी से पीड़ित लोगों के लिये समुचित मात्रा में खाद्यान्न की उपलब्धता कराना संभव हो सके। 'पीपुल्स' यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज द्वारा दायर एक याचिका पर 20 अगस्त 2001 को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस स्थिति में सुधार लाने हेतु सरकार को कुछ निर्देश भी जारी किये गये। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा देश के विभिन्न राज्यों में भूखमरी की स्थिति पर कुछ टिप्पणियां भी की गयी हैं। इन प्रमुख टिप्पणियों और निर्देशों का विवरण संक्षेप में निम्न प्रकार है :-

- सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कहा गया है कि यह सरकार की जिम्मेदारी है कि वह यह सुनिश्चित करे कि सभी भूखों को भोजन मिले तथा अकारण खाद्यान्नों की बर्बादी नहीं हो।
- सर्वोच्च न्यायालय का मत रहा है कि सरकार को यदि खाद्यान्न मुफ्त में भी देना पड़े तो भूखमरी से पीड़ित लोगों को दिया जाना चाहिए क्योंकि क्रय साधन न होने के कारण किसी को भूखा मरने के लिये नहीं छोड़ा जाना चाहिए।
- सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह टिप्पणी की गई कि भारतीय खाद्य निगम के भंडारों में खाद्यान्न बहुतायात में होने के बावजूद देश के कई राज्यों में भूखमरी से हो रही मौतें अत्यंत चिंता का विषय हैं।
- सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सरकार को निर्देश जारी किये गये कि भूखमरी की स्थिति का सामना कर रहे क्षेत्रों में बंद पड़ी राशन की दुकानों को एक सप्ताह के अंदर खोलना सुनिश्चित किया जाये।
- न्यायालय द्वारा यह भी निर्देश दिया गया कि अकाल संबंधी कानूनों के निर्देशों के अनुरूप सरकार की प्राथमिकता, वृद्धों, विकलांगों, अनाथ तथा अभावग्रस्त व्यक्तियों, गर्भवती

तथा दूध पिलाने वाली माताओं, जिनके कुपोषित होने की संभावनाएं अधिक रहती हैं, को खाद्यान्न उपलब्ध कराने की व्यवस्था होनी चाहिए।

- खाद्यान्नों के अभाव की बनावटी स्थिति पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कहा गया कि देश में पर्याप्त खाद्यान्न होने के बावजूद नौकरशाही द्वारा अभाव की स्थिति उत्पन्न किया जाना सरकार के लिये शर्मनाक है।
- न्यायालय ने खाद्यान्नों के वितरण के लिये राज्यों तथा केंद्र सरकार के मध्य आवश्यक तंत्र विकसित करने के लिये निर्देश जारी किये। इस कार्य हेतु दो सप्ताह की समय सीमा का भी निर्धारण किया गया।

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गयी टिप्पणियों के संदर्भ में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वर्तमान खाद्य असुरक्षा के संबंध में वास्तविकता यह है कि देश में व्यवस्थापिका की अक्षमता तथा वितरण प्रणाली में दोष के कारण एक तरफ खाद्यान्नों का भंडारण समुचित ढंग से नहीं हो पाने के कारणा लाखों टन गेहूं और चावल खुले आसमान के नीचे सड़ रहा है, वहीं देश के अनेक भागों में लोग भुखमरी और कुपोषण के शिकार हो रहे हैं। इस स्थिति से निपटने के लिये तुरंत उपाय किये जाने के साथ-साथ एक दीर्घकालिक रणनीति भी तय किये जाने की आवश्यकता है ताकि भविष्य में ऐसी स्थितियां पैदा नहीं हों।

दसवीं योजना (2002-07) में खाद्य सुरक्षा हेतु प्रस्तावित रणनीति

देश की दसवीं पंचवर्षीय योजना के प्रस्ताव में खाद्य सुरक्षा को अहम् मुद्दा बनाते हुये इसको प्रभावी बनाने हेतु सरकार द्वारा निम्नांकित कदम उठाने पर जोर दिया गया है :-

- देश में खाद्य सुरक्षा तथा खाद्यान्नों के बितरण पर विशेष बल देना।
- दसवीं योजना के अंत (वर्ष 2007) तक देश को पूरी तरह भूखमरी से मुक्त कराने का लक्ष्य निर्धारित करना।
- प्रत्येक स्तर पर खाद्यान्नों की उपलब्धता बनाये रखने तथा परिवार स्तर पर इसे उपलब्ध कराने पर विशेष बल देना।
- गरीबों तथा कुपोषण के शिकार परिवारों को खाद्य सुरक्षा के दायरे में लाने तथा उन्हें खाद्यान्न उपलब्ध कराने पर विशेष बल देना।
- ग्रामीण क्षेत्रों तथा अकाल पीड़ित क्षेत्रों में श्रम दिवसों का सृजन कर वहां सभी को खाद्यान्न उपलब्ध कराने की समुचित व्यवस्था करना।
- प्राकृतिक आपदाओं, भूकंप, बाढ़ तथा सूखा आदि की स्थिति में पीड़ित परिवारों को खाद्यान्न उपलब्ध कराने हेतु संबंधित एजेंसियों को हर समय तैयार रखने हेतु पक्की व्यवस्था सुनिश्चित करना।

सुधारात्मक उपाय

पर्यावरण अनुकूल कृषि तकनीकी :- जनसंख्या वृद्धि की दर से खाद्यान्न उत्पादन की दर अधिक करके आदर्श खाद्यान्न उपलब्धता प्राप्त की जा सकती है। खाद्य एवं पोषण सुरक्षा की चिंता को देखते हुए पर्यावरण अनुकूल तकनीकी का प्रसार आवश्यक हो गया है। इसके लिए पारंपरिक तकनीकी के साथ आणविक, जैव, अंतरिक्ष, दूर संवेदी, भू-स्थैतिकी, पद्धति विश्लेषण तथा सूचना प्रौद्योगिकी का सामाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय रूप से उचित उपयोग होना चाहिए। सीमित भूमि, जल तथा ऊर्जा स्रोतों के उपयोग से तथा नई पर्यावरण अनुकूल तकनीकी की मदद से अधिक अन्न और कृषि उत्पाद प्राप्त किये जा सकते है। ऐसा हमारे प्राकृतिक संसाधनों को क्षति पहुंचाए बिना धारणीय पद्धति से किया जा सकता है। आने वाले वर्षो में कृषि विकास में उत्पादन बढ़ाने तथा प्राकृतिक संसाधन के दोहरे उद्देश्य की पूर्ति की दृष्टि से प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

भारत एवं विविधतापूर्ण कृषि :- भारत में 70 प्रतिशत से अधिक आबादी कृषि एवं पशुपालन, दुग्ध उद्योग, मुर्गीपालन, वानिकी, मत्स्य पालन जैसी संबद्ध गतिविधियों तथा कृषि आधारित उद्योगों पर जीवकोपार्जन के लिए निर्भर है। अतएव खाद्यान्न एवं पोषण सुरक्षा के लिए इस क्षेत्र का उत्थान करना आवश्यक है। उत्पादकता, ग्रामीण आमदनी तथा रोजगार के अवसर में वृद्धि करने के लिए गहन एवं विविधतापूर्ण कृषि पद्धति अपनाने की आवश्यकता है। यह समय की मांग है कि प्रति इकाई उपयुक्त संसाधन से अत्यधिक विविधतापूर्ण उत्पाद प्राप्त किया जाए। हमारे पास अन्य विकल्प मौजूद नहीं है। हम बढ़ रही जनसंख्या के लिए खाद्यान्न का आयात करने में भी सक्षम नहीं है क्योंकि विकसित देश पर्यावरणीय संकट से बचने के लिए अपने कृषि उत्पाद को बढ़ाने के लिए नए तरीके ढूंढ़ने से बचना चाहते हैं। आयात का प्रतिकूल सामाजिक-आर्थिक असर पड़ता है। अतएव एक मात्र विकल्प है कि प्रति इकाई भूमि, जल, ऊर्जा, श्रम तथा पूंजी में उत्पादकता में वृद्धि की जाए।

कटाई के बाद प्रबंधन :- कटाई के बाद दो बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। संरक्षण एवं प्रसंस्करण तकनीकी की मदद से कृषि उत्पाद को क्षतिग्रस्त होने से बचाया जाए तथा उसके मूल्य से संवर्धन का प्रयास किया जाए। उत्पादन तकनीकी और कटाई बाद तकनीकी के बीच समन्वय के अभाव में सुखाने, प्रसंस्कृत करने तथा भंडारण के दौरान उत्पाद क्षतिग्रस्त होता है। क्षतिग्रस्त होने योग्य पदार्थ फल, सब्जी इत्यादि पर विशेषरूप से ध्यान देने की आवश्यकता है। वर्तमान और भविष्य के परिदृश्यों के विश्लेषण को कम करने के लिए तकनीकी में दोष तथा तकनीकी के विकास, सुरक्षित भंडारण तथा परिवहन पर ध्यान देने की आवश्यकता है। इससे सस्ते दर पर खाद्यान्न की आपूर्ति हो सकती है। कटाई बाद फसल को क्षतिग्रस्त होने से बचाने के लिए तथा मूल्य संवर्धन के लिए कटाई बाद प्रबंधन पद्धति को सुदृढ़ तथा सरल बनाने हेतु हर संभव प्रयास करना चाहिए।

सरकार की नीति :- भविष्य में खाद्य एवं पोषण असुरक्षा से निबटने के लिए सरकार की इच्छाशक्ति, नीतिगत सहयोग, उचित मूल्य प्रोत्साहन, बेहतर संस्थागत आधारभूत संरचना, तकनीकी हस्तांतरण के लिए समन्वय, निरीक्षण एवं मूल्यांकन के बीच तालमेल की अत्यधिक आवश्यकता है। इसके साथ ही इन क्षेत्रों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

प्रोटीन, कैलोरी कुपोषण को दूर करने के लिए लक्ष्य आधारित जन वितरण प्रणाली को शीघ्रता से उचित रीति पूर्वक कार्यान्वित करने की आवश्यकता है। लक्ष्य आधारित जन वितरण प्रणाली में गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे लोगों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए तथा संपन्न लोगों को इसमें सब्सिडी नहीं दी जानी चाहिए। वास्तविक रूप से जन वितरण प्रणाली के माध्यम से न सिर्फ कम खाद्यान्न वितरित किया जाता है अपितु अन्न खाद्यान्न की गुणवत्ता भी बहुत कम रहती है।

निष्कर्ष

चूंकि खाद्यान्न सुरक्षा चुनौती आर्थिक, सामाजिक तथा पारिस्थितिकी प्रकृति की है। अतएव खाद्यान्न उपलब्धता सिर्फ आर्थिक दृष्टि से ही न हो अपितु आर्थिक, सामाजिक एवं पारिस्थितिकी रूप से उचित एवं धारणीय कृषि पद्धति पर आधारित होनी चाहिए। खाद्य एवं पोषण सुरक्षा के लिए शोध पर बल दिया जाना चाहिए। गरीबी उन्मूलन, पोषण आधारित कृषि उत्पादन तथा बाजार और व्यापार में संवधन के लिए रणनीति बनाने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। यदि ऐसा संभव हुआ तो मानव अधिकारों के संरक्षण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम हो सकता है।

* * *

सामाजिक न्याय की धुरी स्त्री अधिकारिता

• *अंजली सिन्हा*

डार्विन का शक्तिशाली की उत्तरजीविता का सिद्धात वस्तुत: पशु जगत का सिद्धांत है। लेकिन मनुष्य चूंकि मूलत: पशु ही है, इसलिए डार्विन के आगमन से काफी पहले, आदिमकाल से इस सिद्धांत का अनुपालन होता आया है। शिक्षा और अन्य अर्जित संस्कारों की वजह से भले ही उसमें किंचित मनुष्यता आ गई हो, इसके बावजूद बुनियादी रूप से आज भी उसमें उतनी ही पशुता मौजूद है जितनी आदिम व्यवस्था में रही होगी। इसीलिए जो शक्ति-सम्पन्न है, वह आज भी शिरोधार्य है। वैश्विक स्तर पर जो देश शक्तिशाली है वह कमजोर राष्ट्रों की कीमत पर अपनी उत्तरजीविता सुनिश्चित करता है, पुरुष अपने शारीरिक बल की बदौलत स्त्रियों पर अपना प्रभुत्व जताता है।

लेकिन स्त्रियां शांतिप्रिय, सहिष्णु और सहृदय होती हैं और वैसे ही घर-परिवार एवं समाज की रचना करती हैं। भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में स्त्रियों को प्रेम, बलिदान और विनम्रता की प्रतिमूर्ति बना कर पेश किया जाता है, सराहना की जाती है। लेकिन व्यवहार में पुरुष वर्चस्व वाली यही संस्कृति उससे उसके समस्त अधिकार छीन अपनी अनुगामिनी बनाता रहा है। जहां कहीं किसी स्त्री ने इस साज़िश को नकारते हुए अपनी स्वतंत्र सत्ता को आजमाना चाहा, उसे अपमानित करने, मान-मर्दन करने और समाज से बहिष्कृत करने की पाशविक विधि प्रयोग में लाई गई।

आश्चर्य है कि जिस सांस्कृतिक परंपरा में स्त्रियों को दुर्गा, लक्ष्मी और सरस्वती के रूप में शक्ति के प्राय: सभी रूपों - शरीर बल, धन बल और ज्ञान बल की अधिष्ठात्री माना गया, कालांतर में उनमें इतनी हीन भावना भर दी गई कि स्त्री रूप में जन्म लेने मात्र से वे गहरे अपराध बोध से ग्रसित हो गई और बालिका भ्रूण हत्या जैसे जघन्य कृत्य की अनुमति देने के लिए विवश हुई। लेकिन इसे रेखांकित करना आवश्यक है कि भ्रूण हत्या, गर्भपात और जन्म के उपरांत बालिकाओं के प्रति बरते जाने वाले भेदभाव के पीछे स्त्रियों की सहज स्वीकृति नहीं, वरन उनकी परवशता-विवशता है जो

• *लेखिका स्त्री-विषयक मामलों की जानी मानी पत्रकार हैं।*

उनकी कमजोर आर्थिक स्थिति, अशिक्षा अथवा अल्प और अनुपार्जक शिक्षा तथा सामाजिक व्यवस्था के कारण हर निर्णय के लिए पुरुषों की मुंहदेखी से उपजती है।

लेकिन यहां हमारा अभिष्ट इसके पीछे के सामाजिक-ऐतिहासिक कारणों की पड़ताल करने के बजाय उन्हें अधिकार-संपन्न बनाने के प्रयासों का विश्लेषण करने से है।

यह सही है कि स्वतंत्रता के बाद भारतीय स्त्री की स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ और संवैधानिक दृष्टि से स्त्री-पुरुष की समानता स्वीकार कर ली गई है, उन्हें अधिकार संपन्न बनाने के लिए अनेक कानून बनाए गए और विभिन्न कार्यक्रम चलाए गए हैं। इन प्रावधानों के कारण स्त्रियां बड़े पैमाने पर प्रगति पथ पर आगे बढ़ चलीं। स्त्री-केंद्रित कार्यक्रमों और नीतियों की बदौलत औरतों का शैक्षणिक स्तर बढ़ा, उनकी जागरुकता बढ़ी और अपने होने को सिद्ध करने की इच्छा मजबूत हुई। लेकिन यह परिवर्तन प्राय: शहरी और खाते-पीते मध्यवर्ग तक ही सीमित रहा। बृहत्तर स्त्री समाज, खासकर गांवों और जनजातीय अंचलों के स्त्री समाज की हैसियत आज भी कमजोर बनी हुई है। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोज़गार, आर्थिक भागीदारी आदि मामलों में उनकी स्थिति आज भी पुरुषों के मुकाबले कमतर है।

राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए 150 वर्ष पहले हुए प्रथम क्रांति के इर्द-गिर्द उसी कालखंड में एक सामाजिक क्रांति भी घटित हो रही थी जो समाज के समस्त वंचित तबकों को समान हक और अधिकार दिए जाने की पैरोकार थी। इसी क्रांति के प्रतिफलन के रूप में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद स्त्रियों को प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के समकक्ष अधिकार देने, उन्हें सामाजिक और आर्थिक नज़रिए से पुरुषों के बराबर लाने की नीति अपनाई गई। भारत के संविधान में स्त्री-अधिकारों, गौरव और सम्मान की रक्षा के लिए समुचित प्रावधान किए गए। इनके लिए अनुच्छेद 14, 15(3), 16(1), 16(2), 19(1), (6), 39(क), (ड), 42, 44, 51(क) की व्यवस्था की गई और उनमें स्त्री अधिकारों की व्याख्या और विस्तार का मार्गदर्शक सिद्धांत निरूपित किया गया। इनके साथ ही स्त्री अधिकारों को और व्यापक बनाने हेतु अनेक कानून भी बनाए गए। संविधान के अनुच्छेदों, विभिन्न कानूनी, नीतिगत प्रावधानों का विवरण बॉक्स 1 में प्रस्तुत है।

बॉक्स - 1

स्त्री अधिकार सुनिश्चित करने वाले संवैधानिक, कानूनी और नीतिगत प्रावधान

संवैधानिक प्रावधान

महिला-पुरुष समानता की प्रतिबद्धता नीति-निर्माण के सर्वोच्च स्तर पर अर्थात् भारत के संविधान में भली-भांति स्थापित है। महिलाओं के लिए बनाए गए कुछ महत्वपूर्ण संवैधानिक उपबंध इस प्रकार हैं :

- अनुच्छेद 14 – राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में समान अधिकार एवं अवसर
- अनुच्छेद 15 – लिंग के आधार पर भेदभाव निषिद्ध
- अनुच्छेद 15 (3) – महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक भेदभाव का अधिकार
- अनुच्छेद 39 – आजीविका के समान साधन तथा समान कार्य के लिए समान वेतन
- अनुच्छेद 42 – कार्य की न्यायोचित एवं मानवीय दशाएं तथा प्रसूति सुविधाएं
- अनुच्छेद 51 – (क) और (ङ) – महिलाओं के प्रति अपमानजनक प्रथाओं के त्याग का मौलिक दायित्व

राष्ट्रीय महिला सबलीकरण नीति, 2001 में यह परिकल्पना की गई है कि महिला उन्मुखी दृष्टिकोण को बजट में एक क्रियात्मक कार्यनीति के रूप में शामिल किया जाए।

इन उपबंधों को कानूनी ढांचे के द्वारा लागू एवं समर्थ बनाया जाता है। ऐसे कुछ कानून इस प्रकार हैं :

महिला विशिष्ट कानून

- अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम, 1956
- प्रसूति सुविधा अधिनियम, 1961
- दहेज निषेध अधिनियम, 1961
- स्त्री अशिष्ट रूपण (निषेध) अधिनियम, 1986
- सती प्रथा (निवारण) अधिनियम, 1987
- घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005

आर्थिक कानून

कारखाना अधिनियम, 1958 (न्यूनतम मज़दूरी अधिनियम, 1948 (समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 (कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 (बागान श्रम अधिनियम, 1951 (बंधित श्रम पद्धति (उत्पादन) अधिनियम, 1976

संरक्षण कानून

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के संगत उपबंध (भारतीय दंड संहिता के विशेष उपबंध) विधि व्यवसायी (महिला) अधिनियम, 1923 (प्रसवपूर्व निदान तकनीक (विनियमन और दुरुपयोग निवारण) अधिनियम, 1994

सामाजिक कानून

कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 (भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 (गर्भ का चिकित्सीय समापन अधिनियम, 1971 (बाल विवाह अवरोध अधिनियम, 1929 (हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 (हिंदू उत्तराधिकार, 1956 (वर्ष 2005 में यथा संशोधित) (भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1969।

लोकतंत्र को मजबूत बनाने में जितनी गहरी भूमिका वांछित और प्राय: उपेक्षित बहुसंख्यक आबादी की है उतनी शायद नागर समाज जिसे हम सिविल सोसायटी कहते हैं, की भी नहीं।

जनतंत्र में इस तबके की गहरी आस्था है और इसके जरिए वह सत्ता में अपनी भागीदारी देखता है। इस तबके में आर्थिक, सामाजिक, लैंगिक तीनों दृष्टियों से समाज के सबसे कमजोर वर्ग शामिल हैं। इसलिए विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के साथ-साथ मीडिया जैसे जनतंत्र के विभिन्न प्रतिष्ठानों की यह जिम्मेदारी बनती है कि विकास और अधिकार संपन्न बनाने की किसी भी कोशिश में इन तत्वों को वरीयता दे। इस परिदृश्य में यह देखना आवश्यक होगा कि मानव अधिकारों के विचार के प्रसार, पोषण और संवर्धन में हिंदी मीडिया अपनी भूमिका का निर्वहन किस प्रकार कर रहा है। मीडिया का मूल चरित्र भी मानव अधिकारों के सरोकार का है। दुनियाभर में जनतांत्रिक सरकारों की उपस्थिति ने मीडिया को और अपेक्षित जमीन उपलब्ध कराई है जो मानव अधिकारों के संरक्षण और संवर्धन के लिए, संवर्धन की उसकी पैरवी का आधार बन सके।

कुछ समय पूर्व भोपाल के एक मुस्लिम युवक और हिंदू युवती ने प्रेम विवाह किया किंतु इसके लिए उन्हें भाग कर मुम्बई जाना पड़ा ताकि कट्टरपंथिया की निगाह से बच सकें। अपनी जान-माल की रक्षा के लिए उन्हें मीडिया का सहारा लेना पड़ा। स्वेच्छा से विवाह करने का अधिकार हमें संविधान देता है। देश की धर्मनिरपेक्ष व समतामूलक सरकार अंतर धार्मिक और अंतर जातीय विवाह हेतु आर्थिक सहायता सहित विभिन्न प्रोत्साहन देती है ताकि समाज से धर्म जाति आधारित भेदभाव समाप्त किए जा सकें इसलिए धर्म, जाति और वर्ग के आधार पर ऐसे विवाह में बाधा नहीं खड़ी की जा सकती। बावजूद इसके कुछ लोगों ने इस घटना की ऐसी व्याख्या की मानों हिंदुत्व के सामने घोर संकट आ खड़ा है। समाचार चैनलों पर दिनभर यह खबर अलग-अलग बयान के साथ और अलग-अलग कोण से दिखायो जातो रहो। इसका सकारात्मक परिणाम यह हुआ कि नवविवाहित दम्पति को दर्शकों की सहानुभूति और व्यवस्था का संरक्षण हासिल हुआ। जाति और

धर्म से ऊपर उठ कर जीवन साथी चुनने के नागरिकों के मौलिक अधिकार को ताकत मिली। पिछले महीनों में उत्तर भारत में ऑनर किलिंग की अनेक घटनाएं घटित हुई हैं। स्वतंत्र चेतना संपन्न युवाओं और स्त्रियों को समाज-बहिष्कृत करने, और तो और उनकी जान ले लेने में हरियाणा और उत्तर प्रदेश सबसे आगे हैं। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली और पंजाब भी इस सोच और कुकृत्य से बहुत अलग नहीं रहे।

न केवल स्त्री अधिकारिता, वरन समग्रत: मानव अधिकारों के संदर्भ में बात करें तो मीडिया का मूल चरित्र ही मानव अधिकारों के पैरोकार का है। उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी में दुनियाभर के अधिकांश देशों में जनतांत्रिक व्यवस्था के अभ्युदय और गुलाम देशों में आजादी की कसमसाहट ने संचार माध्यमों को जरूरी स्वतंत्रता और वह अपेक्षित जमीन उपलब्ध कराई जहां से समाचार पत्र-पत्रिकाएं तथा आगे चल कर इनके साथ-साथ इलेक्ट्रानिक माध्यम भी मानव अधिकारों के पैरोकार की अपनी भूमिका का निर्वहन कर सकें। इन सब का मकसद लोगों को संस्कारित करना और उन्हें अधिकार-चेतन बनाना रहा।

अत: इस आलोक में स्त्री अधिकारिता की संकल्पना को मजबूत करने के लिए मीडियाकर्मियों को भारत में मानवाधिकारों की संकल्पना को सही परिप्रेक्ष्य में और पौराणिक संदर्भों के साथ प्रस्तुत करने का बीड़ा उठाना होगा। यह कार्य जितना आवश्यक है उतने ही खतरे भी इसमें सन्निहित हैं। परंपरा में मौजूद मानवाधिकारों का विश्लेषण करते-करते उन्हें धर्म के महिमामंडन की ओर बहक जाने से बचना होगा, निरपेक्ष रह कर सही-गलत का निर्वचन करना होगा तथा आधुनिक दृष्टि के साथ उनका समामेलन करना होगा ताकि पाठकों-श्रोताओं-दर्शकों के सम्मुख सम्यक तस्वीर पेश की जा सके।

मानवाधिकारों के सैद्धांतिक पहलुओं को प्रचारित करने से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण नित घट रही घटनाओं, मानवाधिकार हनन के मामलों, अधिकारों के संरक्षण के लिए बनाई गई सरकारी नीतियों-कार्यक्रमों को सामने लाना तथा उनके पक्ष-विपक्ष का विश्लेषण करना है। वस्तुत: मानवाधिकारों के दायरे में जीवन के प्राय: सभी क्षेत्र आते हैं। हमारी सामाजिक, राजनीतिक, नागरिक और आर्थिक व्यवस्था के मानवीय लक्ष्य मानवाधिकार ही निर्धारित करते हैं। इसलिए सार्वजनिक तथा सामाजिक स्तर पर घटने वाली प्रत्येक घटना, शासन तंत्र द्वारा किए जाने वाला प्रत्येक निर्णय, नीति और कार्यक्रम मानवाधिकारों के दायरे में आते हैं। इस संदर्भ में यह एक सुखद तथ्य है कि हमारे संचार माध्यम मानवाधिकारों के इस क्षेत्र विस्तार और इसमें अंतर्निहित संभावनाओं से अवगत हैं। फलस्वरूप मानवाधिकार संबंधी मुद्दों को व्यापक कवरेज भी मिल रहा है। रोज़गार गारंटी कार्यक्रम तथा सूचना के अधिकार की चर्चा यहां उपयुक्त होगी। ये दोनों ही आज कानून का रूप ले चुके हैं। इसी तरह महिलाओं को संसद एवं विधानसभाओं की एक तिहाई सीटों पर आरक्षण दिलाने सहित महिला अधिकारों के हनन के तमाम मामलों को मीडिया ने प्रमुखता दी है। महिलाओं पर घर में होने वाली हिंसा निरोधी कानून तथा उसके आलोक में दर्ज शिकायतों को भी अखबारों ने उठाया है। इनमें से पहले दो को वैधानिक मान्यता दिलाने के लिए जिन लोगों और स्वयंसेवी

संगठनों ने वर्षों मेहनत की, उन्हें भी हमारा मीडिया, खासकर हिंदी और भाषायी मीडिया लगातार कवरेज और शक्ति प्रदान करता रहा। हालांकि कुछ खास समूहों ने जिनमें कुछ अंग्रेजी के समाचारपत्र भी शामिल हैं, अपने विशेष एजेंडे के तहत इन अधिनियमों-कार्यक्रमों पर आपत्तियां भी उठाईं, लेकिन वे आपत्तियां मानव अधिकारों को दृष्टिगत कर नहीं, बल्कि संकुचित वैचारिक मान्यताओं के तहत की गई थीं।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में संचार माध्यमों को ताकत स्वाधीनता आंदोलन से मिलती है जहां न केवल उनकी जड़ें स्थित हैं, बल्कि जहां से उनका उद्गम भी हुआ। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों से ही समाचार पत्र-पत्रिकाओं का स्वयंसेवी संगठनों से भी गहरा नाता बना रहा जो स्वाधीनता के बड़े और व्यापक मानवाधिकार लड़ाई के भीतर विभिन्न सामाजिक सुधारों, लड़ाइयों, मसलन सती प्रथा का उन्मूलन, वर्ण आधारित छुआछूत और भेदभाव के समापन सहित नागरिक जीवन में विभिन्न मानवाधिकार आंदोलन की जमीन तैयार कर रहे थे। पत्र-पत्रिकाएं इन छोटी-बड़ी लड़ाइयों का संदेशवाहक थीं। इनके संपादक और प्रकाशक स्वयं इन संघर्षों से और व्यापक स्तर पर आजादी की लड़ाई से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े थे। राजा राम मोहन राय से लेकर भारतेंदु हरिश्चन्द्र, महात्मा गांधी, गणेश शंकर विद्यार्थी, भगत सिंह आदि सभी इनमें शामिल रहे। इस पृष्ठभूमि से निकले संचार माध्यम आज भी स्वयंसेवी संगठनों के साथ रचनात्मक सहकार बनाए हुए हैं और मानवाधिकारों की लड़ाई को परिप्रेक्ष्य और प्रसार दे रहे हैं। यही वजह है कि आज जब पड़ोसी देशों सहित तीसरी दुनिया के अधिकांश देशों में मानवाधिकारकर्मी और समाचारपत्र प्राय: बिखरे हुए हैं और उनमें रचनात्मक सहयोग का अपेक्षत: अभाव है, भारत के मीडियाकर्मी और मानवाधिकारकर्मी अतीत से हासिल प्रेरणा और प्रमाणरूपी शक्ति की बदौलत अधिकार संबंधी विभिन्न मुद्दों के बारे में नागरिकों को जागरुक करने और जनमत बनाने के काम को सफलतापूर्वक अंजाम दे रहे हैं।

मानवाधिकारों का दायरा काफी व्यापक है। इसलिए हनन के मामले भी कमोबेश प्राय: उन सब क्षेत्रों में गोचर होते हैं। लेकिन इस प्रसंग में जो दो चार क्षेत्र सर्वाधिक ध्यान आकर्षित करते हैं उनमें महिलाओं के अधिकार हनन का मामला सर्वप्रमुख है। हालांकि इंटरनेशनल वूमेंस मीडिया फाउंडेशन द्वारा 2001 में कराए गए एक अध्ययन के अनुसार मीडिया के क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं का हिस्सा विश्व में 41 प्रतिशत है। महिलाओं के अधिकार हनन के मामलों को मीडिया प्रमुखता से उठाता है, बावजूद इसके अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें मीडिया की भूमिका भी संदिग्ध नज़र आती है। मुक्त बाजार व्यवस्था के तहत विगत वर्षो में तमाम व्यावसायिक प्रकल्पों की तरह मीडिया को नियंत्रित करने वाले घरानों का भी निगमीकरण और वैश्वीकरण हुआ है। विश्व बाजार व्यवस्था में मीडिया के पश्चिमी चाल-ढाल से प्रभावित घराने नारी सौंदर्य के पश्चिमी मानदंडों को ही सौंदर्य का मानक बनाने पर तुले हैं। इस क्रम में भारत सहित तीसरी दुनिया के अधिकतर देशों के देसी सौंदर्य प्रतिमान न केवल धूमिल हुए हैं बल्कि पश्चिमी मानकों से अलग पड़ने वाली स्त्रियों को भदेस और हास्यास्पद बना कर पेश करने की प्रवृत्ति बढ़ी है। इसी तरह पहनावे और चाल-ढाल में भी पश्चिमी नजरिये को तरजीह दी जा रही है। इसके तहत बात-बेबात महिलाओं की अर्धनग्न तस्वीरें छापना,

विज्ञापनों में बिना वजह नारी देह का इस्तेमाल करना आम हो गया है। अब सिगरेट हो या शराब, कार हो या साइकिल उनके विज्ञापन के लिए नारी छवि और देह की प्रस्तुति आवश्यक सी बना दी गई है। और तो और, हंसी तो तब आती है जब पुरुषों के परफ्यूम के विज्ञापन भी महिलाओं से कराए जाते हैं।

वस्तुत: दुनियाभर की मीडिया में स्त्री देह को एक वस्तु की तरह इस्तेमाल किया जाता है। भारत के संचार माध्यम इसका अपवाद नहीं हैं। रोज़ाना आपको इसके साक्ष्य मिलेंगे। लेकिन इस स्थिति के पीछे वजह क्या है? संचार माध्यमों में काम करने वाली जिन 41 प्रतिशत महिलाओं का आंकड़ा ऊपर पेश किया गया है, एशिया में वही हिस्सा, यूनेस्को के एक प्रकाशन 'एन अनफिनिश्ड स्टोरी : जेंडर पैटर्न इन मीडिया एम्प्लायमेंट, 1995 के अनुसार घट कर महज 21 प्रतिशत रह जाता है। भारत के संदर्भ में तो यह हिस्सेदारी 12 प्रतिशत पर ही सिमटी हुई है। यानी भारतीय मीडिया में केवल बारह प्रतिशत महिलाएं ही कार्यरत हैं। ये महिलाएं भी किन पदों पर काम करती हैं? जानना दिलचस्प होगा कि इंटरनेशनल वूमेंस मीडिया फाउंडेशन द्वारा महिला पत्रकारों के बीच कराए गए एक सर्वेक्षण में एशिया क्षेत्र में भाग लेने वाली 79 प्रतिशत प्रतिभागियों ने कहा कि उनकी कंपनी में 10 शीर्ष निर्णय लेने वाले व्यक्तियों में एक भी महिला नहीं है। (स्रोत : लीडिंग इन ए डिफरेंट लैंग्वेज : विल वूमेन चेंज द न्यूज़ मीडिया 2001) इस पुरुष एकाधिकार के परिणाम छुपे नहीं हैं तमाम सदाशयता के बावजूद प्रकाशन संस्थानों की मीडिया नीति में व्याप्त पुरुषवादी दृष्टि प्रत्यक्ष परोक्ष रूप से सामने आती रहती हैं। दो दशक पुराना पटना का बॉबी कांड हो अथवा रांची का सुषमा कुजूर कांड, मिस जम्मू प्रकरण हो अथवा श्रीनगर सेक्स स्कैंडल, बलात्कार का कोई भी मामला हो उनमें पीड़ित महिला के नाम और तस्वीर को पेश करने की प्रवृत्ति कम होने की बजाय बढ़ती ही जाती है। भारतीय प्रेस परिषद द्वारा निर्धारित आचार संहिता में ऐसा न करने के स्पष्ट निर्देश के बावजूद ऐसी घटनाएं घटती रहती हैं। ऐसा वस्तुत: नारी देह को वस्तु मानने की पूंजीवादी दृष्टि तथा बाजार में अधिकाधिक सफल होने के व्यावसायिक दबाव के कारण ही होता है।

सवाल उठता है कि इसका विकल्प क्या है? मीडिया में स्त्री अधिकारिता को कैसे मजबूत किया जा सकता है? उत्तर आसान है किंतु उस पर अमल करना उतना आसान नहीं। क्योंकि यह मीडिया – इलेक्ट्रानिक और प्रिंट दोनों – की दृष्टि में बदलाव की मांग करता है। जरूरी है कि मीडिया में शीर्ष पदों पर निर्णय लेने और नीतियां बनाने के लिए जिम्मेदार पदों पर दृष्टि संपन्न और विवेक चेतना संपन्न स्त्रियां आएं जो स्त्रियों के बारे में स्त्री सशक्तीकरण की दृष्टि से, उन्हें अधिकार संपन्न बनाने की दृष्टि से आवश्यक निर्णय लें, मुनाफा कमाने और स्वामियों की जेब भरने की दृष्टि से नहीं। लेकिन पूंजी संचालित और कॉरपोरेट घरानों द्वारा नियंत्रित मीडिया घरानों में क्या ऐसा संभव है?

* * *

मानव अधिकार और एच0आई0वी0/एड्स

• डॉ० अशोक कुमार

मानव कल्याण के संबंध में वैश्विक दृष्टिकोण का विकास प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति में सर्वाधिक रूप से विद्यमान रहा है। वसुधैवकुटुम्बकम, ''सर्वे भवन्तु सुखिन:'' जैसी मानवतावादी विचारधाराओं का प्रादुर्भाव भी सबसे पहले भारत में हुआ, जो कि आगे चलकर अंतरराष्ट्रीय शान्ति एवं विकास का केन्द्रीय आधार बना। इन्हीं जीवनमूल्यों के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु 24 अक्टूबर 1948 में संयुक्त राष्ट्र संघ अस्तित्व में आया तथा संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 10 दिसम्बर 1948 को सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणा पत्र को अंगीकार किया गया।

मानवाधिकार नैसर्गिक अधिकार हैं, यह अधिकार मानव के मानवोचित जीवन एवं उसके विकास के लिए आवश्यक हैं। संकल्पनात्मक दृष्टिकोण से मानवाधिकारों में मानवीय आवश्यकताओं के अनुरूप अनुकूलन तथा स्वयं को गत्यात्मक स्वरूप देने की क्षमता निहित है।

भारत ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद विश्व स्तर पर मानवाधिकारों के संरक्षण की दिशा में प्रभावकारी प्रयास शुरू किए। भारतीय संविधान (अनुच्छेद-12-35) में मानवाधिकारों को संकल्पित कर सरकार को इनके प्रति संवेदनशील और जवाबदेह बनाने का उपबन्ध है, तथा भारत सरकार ने मानवाधिकारों की रक्षा एवं इनके संरक्षण को ध्यान में रखते हुए 12 अक्टूबर, 1993 में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की स्थापना की और मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 पारित किया।

एड्स (उपर्जित प्रतिरक्षा-हीनता संरक्षण) एच0आई0वी0 (मानव प्रतिरक्षा न्यूनतम वायरस) केवल एक चिकित्सकीय समस्या नहीं है, बल्कि यह वायरस समाज के पीड़ित वर्ग को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं विधिक अधिकारों के अतिक्रमण से शोषित कर रहा है।

• *सहायक आचार्य, एम.जे.पी. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली।*

एच0आई0वी0 की खोज को तीन दशक हो गये हैं। देश में एड्स का पहला रोगी 1986 में चैन्नई में मिला। भारत में उपलब्ध आँकड़ों के आधार पर 2004 में 52 लाख व्यक्ति एच0आई0वी0 से संक्रमित थे। मुम्बई को भारत की एड्स की राजधानी के रूप में जाना जाता है। एड्स अर्थात् एक्वायर्ड इम्यून डिफिशियेंसी सिंड्रोम एक ऐसी बीमारी है जिससे रोग रोधक क्षमता का बिलकुल ह्रास हो जाता है। यह बीमारी एच0आई0वी0 अर्थात् ह्यूमन इम्यूनो डिफिशियेंसी वायरस से फैलता है। 1982 में डॉक्टर राबर्ट सी गैली ने इस पर शोध से निष्कर्ष निकाला था कि एड्स रिट्रो वायरस से फैलता है और यह भी माना जाता है कि एच0आई0वी0 विषाणु अफ्रीका के हरे बंदरों में 5000 वर्ष पहले से था, जो कि किसी तरह मनुष्य में आया और फैल गया। एड्स का पहला रोगी 1982 में अमेरिका में प्रकाश में आया था, तब से आज तक लगभग 715 देशों में एड्स का प्रचार हो चुका है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार पूरी दुनिया में लगभग 1 करोड़ व्यक्ति एड्स से संक्रमित हैं।

मानव में एड्स असुरक्षित यौन सम्बन्ध, संक्रमित सुई, संक्रमित माँ से गर्भस्थ शिशु में एवं संक्रमित रक्त संचरण से फैलता है। नेशनल एड्स कन्ट्रोल आर्गनाइजेशन (नाको) की ओर से देश में सात नगरों में स्थित एंटिनेटॉल (जन्म पूर्व) क्लीनिकों से प्राप्त आँकड़ों के अनुसार महिलाओं में तेजी से एड्स फैल रहा है, जिसका प्रमुख कारण सामाजिक, आर्थिक एवं शारीरिक है जिसमें लैंगिक असमानताएं इस रोग के बारे में ज्यादा जानकारी से रोकती हैं। एड्स से सम्बन्धित कुछ प्रमुख तथ्य निम्नलिखित हैं :-

- इस समय विश्व में प्रतिदिन 7000 व्यक्ति और 500 बच्चे एच0आई0वी0 से ग्रसित होते हैं।
- भारत में लगभग 50 लाख एच0आई0वी0 संक्रमित हैं।
- 21वीं शताब्दी में विश्व में सबसे अधिक एड्स रोगी भारत में होंगे।
- भारत में 4 एच0आई0वी0 रोगियों में एक महिला होती है।

एड्स के परीक्षण के लिए दो परीक्षण 1- एलिसा परीक्षण 2-पश्चिमी ब्लॉट परीक्षण उपलब्ध हैं।

एच0आई0वी0 और एड्स का परिवार और बच्चों पर प्रभाव :-

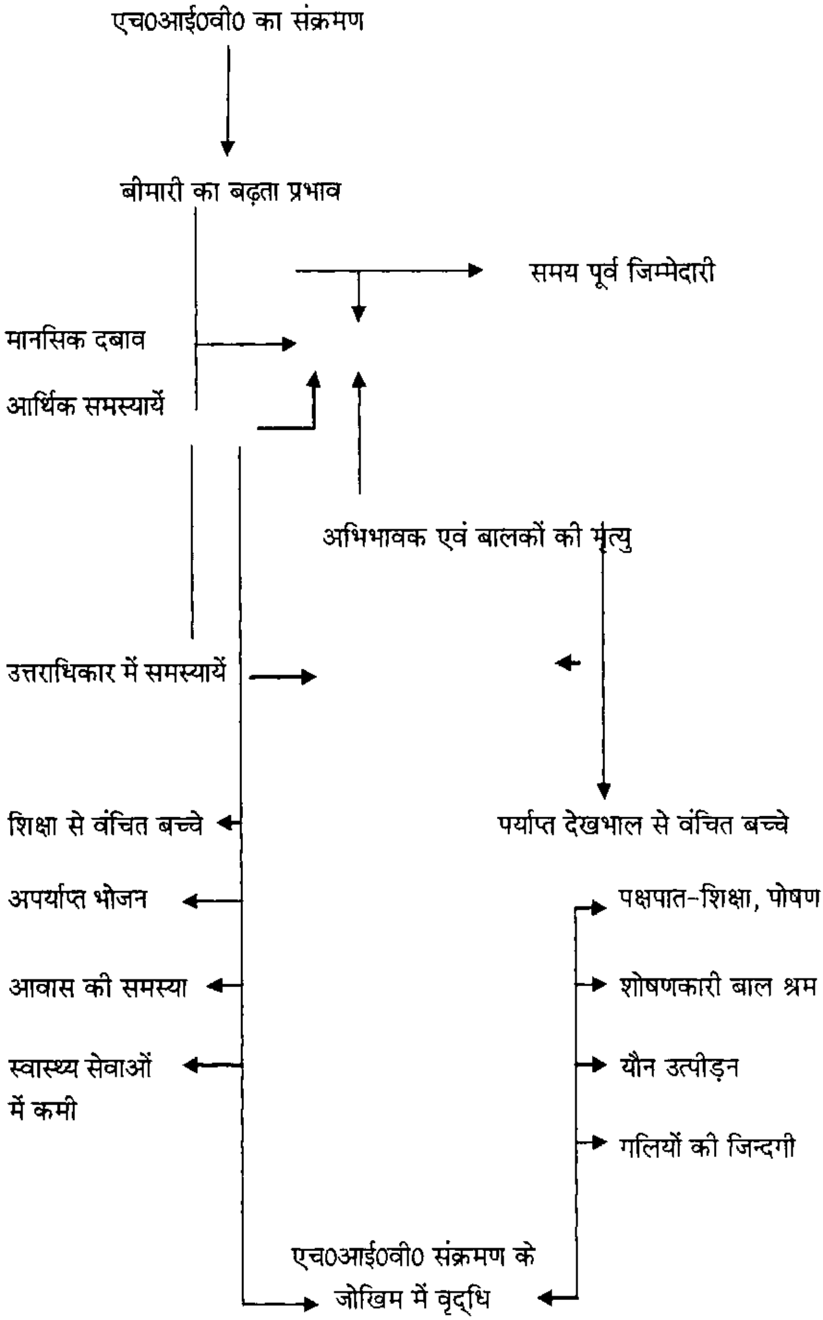

एड्स रोकथाम के लिए भारत में सर्वप्रथम 1987 में एक राष्ट्रीय कार्यक्रम-राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण शुरू किया गया। इस कार्यक्रम का दूसरा चरण 1995 में शुरू किया गया इसके मूल उद्देश्य निम्नलिखित हैं :-

- भारत में एच0आई0वी0 संक्रमण के स्तर में कमी लाना।
- एच0आई0वी/एड्स से जूझने के लिए केन्द्रीय और राज्य सरकारों की क्षमता में सहयोग करना।

भारत में एच0आई0वी पॉजिटिव लोगों के लिए एंटीरिट्रोवाइरल थैरेपी (ए0आर0टी0) की शुरुआत 01 अप्रैल 2004 को की गई थी। भारत में विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार एच0आई0वी0/एड्स की दृष्टि से 6 स्थान हाई रिस्क जोन में आते हैं यह है-उत्तर प्रदेश में कानपुर, कर्नाटक में बेल्लारी, आंध्र प्रदेश में गुंटूर, बिहार में किशनगंज, तिरहुत एवं दरभंगा, राजस्थान में उदयपुर, मिजोरम में अलबल।

स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग के अनुसार एच0आई0वी0 संक्रमण के 85.34 प्रतिशत मामलों का कारण असुरक्षित यौन सम्बन्ध है जबकि 3.08 प्रतिशत मामलों का कारण माता-पिता का इस रोग से संक्रमित होना, 2.05 प्रतिशत प्रदूषित रक्त की वजह तथा 2.34 प्रतिशत इंजेक्शन से नशीली दवाओं का लिया जाना है।

एड्स रोगियों के मानवाधिकार और राज्य का दायित्व :-

एच0आई0वी0 पीड़ित रोगी के मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए राज्यों में निम्नलिखित मूलाधिकारों/मानवाधिकारों के संरक्षण एवं संविधान के लिए कदम उठाने चाहिए।

- समानता का अधिकार (भारतीय संविधान, भाग-3, अनुच्छेद-14)
- जीवन का अधिकार (भारतीय संविधान, भाग-3, अनुच्छेद-21)
- गोपनीयता (निजता) का अधिकार
- विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता (भारतीय संविधान, भाग-3, अनुच्छेद 19(1)(a))
- संघ बनाने का अधिकार (भारतीय संविधान, भाग-3, अनुच्छेद-19(1)(ब))
- काम करने का अधिकार
- विवाह करने और परिवार स्थापित करने का अधिकार
- कानूनी प्रतिकार का अधिकार
- शिक्षा का अधिकार, (भारतीय संविधान, भाग-3, अनुच्छेद 21 तथा 21(A))
- सामाजिक सुरक्षा का अधिकार
- सार्वजनिक एवं सांस्कृतिक जीवन में भाग लेने का अधिकार

- अत्याचार के विरूद्ध अधिकार
- सामान्य मानवोचित् दशाओं में रहने का अधिकार
- सूचना पाने का अधिकार
- मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य का अधिकार
- आवागमन की स्वतन्त्रता का अधिकार

राज्यों द्वारा एड्स/एच0आई0वी0 पीड़ित व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा एवं समेकित विकास के लिए निम्नलिखित तरीके से योजनाएं बनानी चाहिए :-

राष्ट्रीय प्रावधान :-

राज्यों के द्वारा एड्स/एच0आई0वी0 पीड़ित व्यक्तियों के समेकित विकास के लिए सरकार के सभी अंगों तथा विभिन्न मंत्रालयों द्वारा एच0आई0वी0/एड्स और मानवाधिकार को समेकित तरीके से उचित योजनाओं और गतिविधियों द्वारा निम्नलिखित क्षेत्रों को सम्मिलित करते हुए प्रयास किये जाने चाहिएं -

- शिक्षा
- विधि और न्याय
- रोजगार एवं लोकसेवा
- समाज कल्याण एवं सामाजिक सुरक्षा
- स्वास्थ्य

सांविधिक सुरक्षा :-

विश्व के बहुत कम देशों में – दक्षिण एशिया के किसी भी देश में एच0आई0वी0/एड्स का नियंत्रण करने और एच0आई0वी0/एड्स से संक्रमित लोगों की सुरक्षा सुनिश्चित करने वाले विशेष सांविधिक कानून नहीं है। अत: राष्ट्रीय संविधानों द्वारा उपलब्ध अधिकार ही दक्षिण एशिया में कानून का मुख्य स्रोत हैं और एच0आई0वी0/एड्स संक्रमित लोगों के कई अधिकार न्यायालिक निर्णयों द्वारा परिभाषित किये जाते हैं।

एच0आई0वी0/एड्स और मानवाधिकार : भारतीय न्यायालय

संयुक्त राष्ट्र तथा आस्ट्रेलिया के अतिरिक्त एच0आई0वी0/एड्स से सम्बन्धित मुकदमों की अधिकतम संख्या भारत में हुई है। 1997 में लायर्स कोलेक्टिव ने एक कामगार की एच0आई0वी0 पॉजिटिव होने के आधार पर उसकी सेवाओं की समाप्ति को चुनौती दी यद्यपि व्यक्ति कार्यात्मक दृष्टि से स्वस्थ था। मुम्बई उच्च न्यायालय ने एक ऐतिहासिक फैसले में कामगार को पुन: नियुक्त किया तथा वेतन अदा किया गया। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने गौरव जैन के मामले में भी व्यापक दिशा निर्देश जारी किये।

सर्वोच्च न्यायालय में मेनका गाँधी बनाम् भारत संघ मामले में निर्धारित किया कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद-21 के अन्तर्गत जीवन के अधिकार में गरिमा युक्त मानव जीवन का अधिकार सभी व्यक्तियों को बिना किसी भेदभाव के उपलब्ध होना चाहिए।

और मिस्टर एक्स बनाम् हॉस्पिटल जेड के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि जीवन के अधिकार में गोपनीयता का अधिकार सम्मिलित है।

एच0आई0वी/एड्स तथा मानवाधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय दिशा-निर्देश :-

अंतरराष्ट्रीय प्रावधान :-

एच0आई0वी0/एड्स पीड़ित व्यक्तियों को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न दस्तावेजों में उल्लिखित किया गया है जैसे-

- मानवाधिकारों का सार्वभौमिक घोषणा-पत्र, 1948
- सिविल एवं राजनीतिक अधिकारों की अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा, 1996.
- आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों की अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966
- बाल अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा
- महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन की प्रसंविदा
- अत्याचार के विरूद्ध प्रसंविदा

संयुक्त राष्ट्र एड्स तथा मानव अधिकारों के लिए संयुक्त राष्ट्र उच्चायुक्त के कार्यालय द्वारा सितम्बर 1996 में आयोजित एच0आई0वी0/एड्स तथा मानव अधिकार सम्बन्धी दूसरे अंतरराष्ट्रीय मंत्रणा से एच0आई0वी0/एड्स तथा मानव अधिकारों से सम्बन्धित अंतरराष्ट्रीय दिशा निर्देशों का निर्माण हुआ।

क्षेत्रीय प्रावधान :-

- मानवाधिकार और मूलभूत स्वतन्त्रताओं की यूरोपियन प्रसंविदा
- मानवाधिकारों के संरक्षण का अफ्रीकन चार्टर
- अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) के एड्स पर विभिन्न अभिसमय
- संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा का एच0आई0वी0/एड्स पर घोषणा-पत्र
- एड्स मलेरिया टीवी के लिए वैश्विक विधि
- ट्रिप्स (TRIPS) समझौतों के कुछ प्रावधान

दिशा-निर्देश :-

- राज्यों को एच0आई0वी0/एड्स के प्रति अपनी अनुक्रिया करने के लिए प्रभावी राष्ट्रीय ढांचा स्थापित करना चाहिए।
- सार्वजनिक स्वास्थ्य कानूनों की समीक्षा तथा सुधार करना चाहिए।
- राज्यों को भेदभाव विरोधी और अन्य सुरक्षात्मक कानून बनाने चाहिए।
- राज्य एच0आई0वी0/एड्स से सम्बन्धित आचरण संहिता का विकास करे जो मानव अधिकारों को संरक्षित करता हो।
- राज्यों को एच0आई0वी0 पीड़ित से संबद्ध मानव अधिकार विषयों से सम्बन्धित जानकारी तथा अनुभव बांटने के लिए संयुक्त राष्ट्र सहित प्रणाली के सभी कार्यक्रमों के जरिए एच0आई0वी/एड्स के सन्दर्भ में मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए प्रभावी तंत्र सुनिश्चित करने चाहिएं।

एच0आई0वी0/एड्स और सामाजिक दायित्व :-

एच0आई0वी0/एड्स पीड़ित व्यक्तियों के सामाजिक और मानवाधिकारों के संरक्षण एवं प्रोत्साहन में समाज के विभिन्न वर्गों क दायित्व के निर्वहन से सकारात्मक स्थिति हो सकती है।

- व्यापारिक सामाजिक दायित्व (सी0एस0आर0)
- राज्य सामाजिक दायित्व (एस0एस0आर0)
- व्यक्तिगत सामाजिक दायित्व (आई0एस0आर0)

उपाय :-

एच0आई0वी0 संक्रमण ने विभिन्न प्रकार के मानवाधिकार उल्लंघनों को जन्म दिया है। सामाजिक बहिष्कार के साथ-साथ उपचार, स्वास्थ्य, सुरक्षा एवं शिक्षा के अधिकार से वंचित कर समाज दुराचरण की पराकाष्ठता पर पहुँच गया है। एच0आई0वी0/एड्स के सन्दर्भ में मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए प्रभावी तंत्र के साथ-साथ निम्नलिखित उपाय किये जाने चाहिए :-

सामुदायिक भागीदारी :-

राज्यों के द्वारा एड्स/एच0आई0वी0 पीड़ित व्यक्तियों को राजनीतिक और सामुदायिक मंत्रणा को प्रोत्साहन देकर गतिविधियों एवं सामाजिक भागीदारी को सामुदायिक संगठनों, स्वयं सेवी संस्थाओं के माध्यम से सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

स्वास्थ्य विधि विधिक सुधार :-

राज्य को एड्स/एच0आई0वी0 की समस्या को पर्याप्त ध्यान देते हुए लोक स्वास्थ्य सम्बन्धी विधियों में परिवर्तन किया जाना चाहिए। लोक स्वास्थ्य विधियों के द्वारा रक्त, अंगों आदि को एच0आई0वी0 मुक्त रखने के लिए प्रावधान बनाये जाने चाहिए।

आपराधिक और सुधारात्मक तंत्र में सुधार :-

राज्यों द्वारा आपराधिक विधि और सुधारात्मक तंत्र जैसे- जेल, सुधारग्रह आदि से सम्बन्धित विधियों को एच0आई0वी0 के परिप्रेक्ष्य में अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार दायित्वों के अनुरूप बनाना चाहिए।

संरक्षणात्मक विधि :-

राज्यों द्वारा एच0आई0वी0 एड्स पीड़ित व्यक्तियों के अधिकारों के संरक्षण के लिए विभिन्न विधियों के माध्यम से सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों में विभेदरहित तंत्र स्थापित किया जाना चाहिए।

- एच0आई0वी0/एड्स पर राष्ट्रीय नीति बनायी जानी चाहिए।
- रोजगार पदोन्नति प्रशिक्षण और अन्य लाभों को एच0आई0वी0 जांच से मुक्त किया जाना चाहिए।

सूचना सेवा एवं औषधियां :-

राज्य द्वारा ऐसी विधि का निर्माण किया जाना चाहिए जिससे एच0आई0वी0/एड्स पीड़ित व्यक्ति से सम्बन्धित दवाएं, सूचनाएं व्यापक रूप से उपलब्ध करायी जा सकें।

विधिक सहायता तन्त्र :-

राज्य द्वारा एच0आई0वी0/एड्स पीड़ित व्यक्तियों के अधिकारों के संरक्षण के लिए विभिन्न स्तर पर जैसे-विधि मंत्रालय स्वास्थ्य मंत्रालय, मानवाधिकार आयोग में स्वास्थ्य शिकायत/एच0आई0वी0 प्रकोष्ठ बनाया जाना चाहिए।

- सरकार गुणात्मक निवारण उपाय तथा एच0आई0वी0 रोकथाम तथा देख-रेख सूचना से सम्बन्धित सेवाओं की व्यापक उपलब्धता सुनिश्चित करे।
- सरकार सृजनात्मक, शैक्षिक प्रशिक्षण तथा एच0आई0वी/एड्स से संबद्ध भेदभाव के प्रति समाज के रवैये को बदलने के लिए स्पष्ट रूप से तैयार किये गये मीडिया कार्यक्रमों को प्रोत्साहन दे।
- संयुक्त राष्ट्र द्वारा आयोजित एच0आई0वी/एड्स तथा मानवाधिकार से सम्बन्धित दूसरे अंतरराष्ट्रीय मंत्रणा के दिशा निर्देशों का पालन तथा उसके अनुरूप नीति एवं योजनायें बनाएं।

निष्कर्ष :-

एच0आई0वी0/एड्स के सन्दर्भ में मानव गरिमा की सुरक्षा के लिए मानव अधिकारों का संरक्षण अनिवार्य है और एच0आई0वी0 संक्रमित व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं विधिक अधिकारों का संरक्षण एवं संवर्धन आवश्यक है। मानव अधिकारों के भेदभाव के विरूद्ध महात्मा गाँधी के शब्दों में "यह मेरे लिए हमेशा ही रहस्य रहा है कि मनुष्य अपने साथियों के अपमान से स्वयं कैसे गौरवान्वित महसूस करता है।"

आइए हम एड्स को कलंक के स्थान पर सहारा देने, भय देने के स्थान पर आशावान बनने और खामोशी के स्थान पर एकता का संकल्प लें।

i. संयुक्त राष्ट्र संघ मानवाधिकारों की घोषणा, 10 दिसम्बर 1948 की धारा 19 की उपध ारा 19

ii. टी. मेरन, ह्यूमन राईट्स एण्ड ह्यूमेनेटेरियन नॉर्म्स एस कस्टमरी लॉ, ऑक्सफोर्ड, क्लेरेडन प्रेस, 1989

iii. 10 दिसम्बर 1948 का मानवाधिकारों का घोषणा पत्र जिसमें 30 बिन्दु समाहित थे।

iv. ज्यां द्रेज एवं अमर्त्य सेन "इण्डिया डेवलेपमेण्ट एण्ड पार्टीसिपेशन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 371, 2002

v. अरूण पाण्डे जानने का हक एवं हमारा लोकतन्त्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2000, पृ. 44

vi. नीलाभ मिश्र, पीपुल्स राईट टू इनफॉरमेशन मूवमेन्ट, लेसन फ्रॉम राजस्थान, ह्यूमन रिसोर्स डेवलपमेन्ट सेन्टर (एचआरडीसी) 2003, पृ.

vii. अरुणा रॉय, 'राईट टू इनफॉरमेशन : द जर्नी बिगेन्स', नेशनल हैराल्ड न्यू देहली, 25.6. 2006

viii. भंवर मेघवंशी, 'ग्रामीण भारत के लिए वरदान रोजगार गारण्टी', डायमण्ड इण्डिया, जून-जुलाई 2009, पृष्ठ 2

ix. उपयुक्त, पृ. 3

x. इंदिरा गांधी पंचायती राज संस्थान, नरेगा प्रतिवेदन, मार्च 2009, जयपुर।

* * *

साक्षात्कार

महिला सशक्तिकरण : 'एक नई सुबह का आग़ाज'

• डॉ0 गिरिजा व्यास

भारत में स्थापित राष्ट्रीय महिला आयोग एक ऐसी सक्रिय संस्था है जो न केवल महिलाओं के मौलिक अधिकारों का संरक्षण करती है अपितु उन्हें गरिमामय एवं खुशहाल जीवन सुनिश्चित करने के लिए अपनी आवाज भी बुलन्द करती है। महिलाएं किसी भी राष्ट्र, समाज व परिवार की धुरी होती हैं पर बहुत ही आश्चर्य एवं दुख की बात है कि "**यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:**" जैसे आप्त वचन का अक्षरश: पालन करने वाले भारत जैसे परम्परावादी एवं महान राष्ट्र में आज भी महिलाओं की स्थिति में न तो कोई बदलाव आया है और न ही कोई क्रांतिकारी परिवर्तन। पूर्वाग्रहों और विषमताओं के फलस्वरूप उन्हें 21वीं सदी में भी अनेक समस्याओं तथा पीड़ाओं से होकर गुजरना पड़ रहा है।

महिलाओं की समुचित भागीदारी तथा उचित प्रतिनिधित्व आज एक वैश्विक समस्या है पर भारत जैसे विकासशील देश में इसका आँकड़ा अपनी सीमाएं लांघ रहा है, जो एक शुभ संकेत नहीं है। आज महिलाओं के अधिकारों के समर्थन में अनेक गैर सरकारी संगठनों द्वारा न केवल आंदोलन चलाया जा रहा है अपितु उनमें महिलाओं की समुचित भागीदारी सुनिश्चित कर उनकी अस्मिता को और अधिक उन्नत करने की सार्थक कोशिश भी की जा रही है।

भारत जैसे सभ्य और विकासशील राष्ट्र में महिलाओं की अस्मिता की रक्षा हेतु अनेक नियम व कानून बने हैं पर इसके बावजूद आज भी उन्हें उनकी हैसियत व उनकी जनसंख्या के अनुपात में उपयुक्त स्थान मिलता हुआ नहीं दिख रहा है। देश के एक बहुत बड़े भाग में महिलाएं जहां एक ओर आज भी कुपोषण, एनीमिया और पौष्टिक आहार की कमी जैसी मूलभूत समस्याओं से जूझ रही हैं वहीं दूसरी ओर बालवेश्यावृत्ति, बालविवाह, देह-व्यापार, महिलाओं की खरीद - फरोख्त, कन्या भ्रूण-हत्या, दहेज-हत्या, भेदभाव तथा अशिक्षा आदि कुछ ऐसी ज्वलन्त समस्याएं हैं जो हमारा पीछा आज भी नहीं छोड़ रही हैं। हमारे देश में जहां बालिकाओं को गर्भ में ही मरने के लिए विवश कर दिया जाता है वहीं दूसरी ओर बालिकाओं को पैदा होने

• *अध्यक्ष, राष्ट्रीय महिला आयोग, भारत*

का अवसर तो प्रदान किया जाता है पर सामाजिक और पारिवारिक अंधविश्वास के चलते जीवित ही जमीन में गाड़ दिया जाता है। यह हमारे समाज का एक ऐसा भयावह और घिनौना दृश्य है जो हम सबको कलंकित करने के साथ-साथ हमारी प्राचीन एवं अर्वाचीन सभ्यता को भी शर्मसार कर देता है।

आज देश की आजादी के 63 वर्षों बाद भी हम सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक विकास के किस पायदान पर खड़े हैं? इस पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है। एक ओर 21वीं सदी का मोहक आकर्षण, दूसरी ओर आज के भारत का सच तथा साथ में हमारी विकृत मानसिकता व सोच। यह स्थिति हमें सभ्यता के किस मुकाम पर ले जा रही है यह हमारे लिए एक यक्ष प्रश्न है। इन सभी बातों पर परस्पर बैठकर, मिलजुलकर तथा आपसी सद्भाव के साथ विचार विमर्श करना होगा तभी हम एक नई सुबह की ओर अपना मार्ग प्रशस्त कर सकेंगे।

उपर्युक्त सभी प्रश्नों के समाधान की कोशिश में भारत का 'राष्ट्रीय महिला आयोग' एक ऐसी आशा की किरण है जिसने महिलाओं के प्रति नकारात्मक सोच के नजरिए में एक क्रांतिकारी बदलाव की आशा जगाई है तथा आवाम् में एक नई अलख जगाने की मुहिम छेड़ी है। आयोग का मानना है कि जब तक लगभग आधी मानवता का प्रतिनिधित्व करने वाली महिलाओं को समाज व परिवार में बराबरी का दर्जा नहीं मिल जाता और हर निर्णय में उनकी आवाज नहीं सुनी जाती तब तक उन्हें सिर्फ कानून के बल पर समाज की मुख्यधारा में शामिल नहीं किया जा सकता। यह कार्य सामाजिक जागरूकता, सामाजिक क्रांति और सामाजिक सद्भाव के द्वारा ही संभव हो सकता है।

डॉ. गिरिजा व्यास शुरू से ही एक समाजसेवी, जुझारू एवं विदुषी महिला रही हैं। डॉ. व्यास का सामाजिक सेवा से गहरा और पुराना नाता रहा है। विद्यार्थी जीवन से ही डॉ. व्यास सकारात्मक सोच की प्रबल समर्थक रही हैं तथा एक महिला होने के नाते महिलाओं के अधिकारों को समुचित संरक्षण व उचित सम्मान दिलवाना इनके जीवन का सपना है। ऐसी विदुषी, कर्तव्यनिष्ठ, स्वाभिमानी एवं समाजसेवी डॉ. गिरिजा व्यास से महिलाओं के अधिकारों के संबंध में **अंशु गुप्ता** ने बहुत सी जिज्ञासाओं का समाधान पाने और खोजने की कोशिश की है। पेश है बातचीत के कुछ मुख्य अंश :-

प्रश्न :क्या आपकी राय में राजनैतिक आरक्षण स्त्रियों के सशक्तीकरण का प्रभावी माध्यम बन सकता है?

उत्तर :राजनैतिक निर्णयों का व्यापक और दूरगामी प्रभाव पड़ता है। इनसे न केवल स्त्रियों की भागीदारी बढ़ेगी, बल्कि उनकी सामाजिक छवि में भी बदलाव आएगा। स्त्रियों को बहुत दिनों से गैर बराबरी की परिस्थिति से गुजरना पड़ा है। मुझे विश्वास है कि राजनीतिक निर्णय के फलस्वरूप स्त्रियों की सामाजिक उपस्थिति दर्ज होने में सहायता मिलेगी, पर इसके लिए जरूरी है कि हर स्तर पर महिलाओं को प्रतिनिधित्व मिले।

प्रश्न : राजनैतिक सशक्तीकरण से सामाजिक-आर्थिक सशक्तीकरण की यात्रा तय करने में राष्ट्रीय महिला आयोग की क्या भूमिकाएँ होंगी?

उत्तर :महिला आयोग का गठन अपने आप में एक बड़ा कदम है। आयोग ने कई योजनाओं पर काम किया है जिनमें महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए हस्तक्षेप हुआ है। हम 'वाच डॉग' का भी काम करते हैं और कई मामलों में हमारे द्वारा संज्ञान में लाए जाने के बाद कार्रवाई भी हुई है।

प्रश्न : राष्ट्रीय महिला आयोग ने एक संस्था के रूप में कई मंजिलें तय की हैं तथा अनेक पहल की है? कृपया इन पर प्रकाश डालें।

उत्तर :महिलाओं को उत्पीड़न से बचाने के लिए राष्ट्रीय महिला आयोग ने आई.पी.सी., सी. आर.पी.सी. में बदलाव की सिफारिश की। इसके अतिरिक्त Relief to Acid Attack and Rape victims and their rehabilitation, Honour/Horror Killing, sexual assault आदि.... से संबंधित बिल/सिफारिश सरकार के पास भेजे हैं। शिकायतों पर त्वरित कार्रवाई की जाती है इसी कारण हर वर्ष शिकायतों में निरंतर वृद्धि हो रही है और साथ ही साथ ज्यादा महिलाएं राष्ट्रीय महिला आयोग को जानने लगी हैं। एक एन.आर.आई. सैल भी खोला गया है। इस सैल द्वारा सभी मंत्रालयों से समन्वय स्थापित किया जाता है। हमारी इस कोशिश से अप्रवासी भारतीयों से उनकी प्रवासी पत्नियों को कुछ सहायता अवश्य मिलेगी।

प्रश्न : राष्ट्रीय महिला आयोग की भविष्य की कार्य योजना क्या है?

उत्तर : राष्ट्रीय महिला आयोग की यह भरपूर कोशिश रहेगी कि महिलाओं को उनका सही स्थान मिले। समाज में वे भी सम्मान और इज्जत के साथ जी सकें। इसके लिए हमने कई प्रकार की हितकारी योजनाएं बनाई हैं। इसके साथ ही अधिक से अधिक संगोष्ठियाँ, कार्यशालाएं और जागरूकता शिविर लगाए जाने की योजना है। 'चलो गांवों की ओर' योजना को अधिक उपयोगी एवं कारगर ढंग से लागू किया जा रहा है।

प्रश्न :आप शिक्षक रही हैं तथा आपका युवा वर्ग से सीधा सरोकार रहा है। स्त्री जागृति में शिक्षा की भूमिका क्या है?

उत्तर :शिक्षा की भूमिका मेरी नजर में बड़ी क्रांतिकारी है। इससे वर्तमान और भविष्य दोनों पर प्रभाव पड़ता है। स्त्री शिक्षिकाएं खासकर गांवों में और छोटे नगरों में अब भी बहुत पिछड़ी हैं, जिसका परिणाम यह है कि वे अपने अधिकारों को न तो ठीक से जान पा रही हैं और न ही ठीक से उनका उपयोग ही कर पा रही हैं। यही इनके शोषण का मुख्य कारण भी है। स्त्री जागृति बहुत ही अनिवार्य एवं महत्वपूर्ण कदम है जिस पर समाज व राष्ट्र के साथ-साथ सभी को बहुत ही गंभीरता से मंथन करना चाहिए।

प्रश्न :आरक्षण के बाद पंचायत चुनाव की प्रक्रिया और चुने जाने के बाद महिलाओं पर होने वाले विभिन्न प्रकार के अत्याचारों को रोकने के लिए क्या प्रयास हो रहे हैं और क्या करणीय है?

उत्तर :इस स्थिति को बदलने के लिए हमें पुरुष वर्ग का नजरिया भी बदलना पड़ेगा और महिलाओं को मुखर होकर अपनी बात सामने रखनी होगी। इसके लिए आयोग अनेक स्तरों पर काम कर रहा है। फिर भी महिलाओं की चेतना को बढ़ाने और उन्हें समर्थ बनाने के प्रयास और तेज करने की आवश्यकता है।

प्रश्न :ऐसी शिकायतें मिलती हैं कि महिलाओं से जुड़े वर्तमान कानूनों का कुछ लोगों द्वारा सही उपयोग नहीं किया जा रहा है, इस सम्बन्ध में महिला आयोग क्या कदम उठा रहा है?

उत्तर :यह बात बिलकुल सही है कि कानून बना देना ही काफी नहीं है अपितु उसका पालन भी होना चाहिए। उनकी देखरेख या निगरानी के तरीके भी बनाने पड़ेंगे और यह सुनिश्चित करना पड़ेगा कि उनका पालन होना चाहिए। हम इस सिलसिले में उन सभी शिकायतों पर कार्रवाई करते हैं जो हम तक पहुंच पाती हैं। कानूनों में कई जगह छिद्र या 'लूप होल' भी हैं जिनका फायदा उठाकर निहित स्वार्थ वाले लोग बाज नहीं आते। मीडिया में इधर कुछ संवेदनशीलता बढ़ी है और ऐसे संवेदनशील मामलों को वे बहुत ही सहृदयता के साथ उठा रहे हैं। हम सभी का यह कर्तव्य बनता है कि महिलाओं के शोषण के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद करें।

प्रश्न : घरेलू और व्यावसायिक, दोहरी भूमिका में महिलाएं अपने को अधिक शोषित महसूस कर रही हैं, इस संबंध में महिला आयोग द्वारा क्या कदम उठाये गये हैं?

उत्तर :भारतीय जीवन में परिवार की केन्द्रीय भूमिका रही है। प्राय: महिला को घर की चार दीवारी में सीमित रखा जाता रहा है। अब बदलाव आ रहा है और महिलाएं नौकरी करने और पुरुष के साथ कदम से कदम मिला कर चलने लगी हैं। पर इसमें सावधानी न होने पर संतुलन टूट जाता है और परिवार खंडित होने लगते हैं। महिलाओं को कार्यस्थल पर सुविधाएं देना, घर से ही काम करने की व्यवस्था करना, उनका स्वास्थ्य ठीक रखना एक कार्य है जिस पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है।

प्रश्न :ऐसी महिलाएं जिनका एकल (स्वयं, पति व बच्चे) परिवार है, उनका काफी शोषण किया जाता है। यही नहीं महिला के साथ-साथ बच्चों के अधिकारों का भी हनन होता है। ऐसी स्थिति से निपटने के लिए आयोग ने क्या प्रभावी कदम उठाए हैं?

उत्तर :एकल अभिभावक के रूप में महिलाओं की जिम्मेदारी बड़ी मुश्किल की होती है । भारत में अभी भी उन्हें शक के घेरे में रखा जाता है। यह क्षोभ की स्थिति है उन्हें अपने जीवन को अपने विवेक के साथ जीने की छूट मिलनी चाहिए। धीरे-धीरे विभिन्न संस्थाएं स्त्रियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर विभिन्न उपाय कर रही हैं, जो पर्याप्त नहीं है। स्त्रियों को 'वीक' या दुर्बल मानने की भावना आज भी समाज में पूर्ण रूप से व्याप्त है।

प्रश्न :भारत में महिलाओं की स्थिति का आकलन आप किस रूप में करेंगी तथा उनके सामने कौन-सी मुख्य चुनौतियाँ बनी हुई हैं?

उत्तर :भारतीय महिलाओं को देवी और 'दासी' दोनों रूपों में देखा जाता रहा है। देवी के अनेक रूप हैं जैसे - दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, एस्तर, मरियम, दबोरा आदि। हमारे समाज में स्त्री और पुरुष दोनों मिलकर जीवन की गाड़ी को चलाते हैं। हमारे यहां शिव का अर्धनारीश्वर रूप भी है और शायद यही सच्चाई भी है। महिलाओं को उनका अधिकार मिले, उनके साथ भेदभाव न हो, उनकी गरिमा बनी रहे, उनकी क्षमताओं का सम्मान हो और उन्हें समाज में समुचित भागीदारी मिले। यही कुछ ऐसी ज्वलंत समस्यायें और चुनौतियाँ हैं जिन पर हम सब को एक साथ मिलकर विजय पाने की कोशिश करनी होगी।

प्रश्न :राष्ट्रीय महिला आयोग के अध्यक्ष के रूप में आपका अनुभव कैसा रहा है? आपको कितना सहयोग मिला है? आपके मुख्य सरोकार और चिन्ताएं क्या हैं?

उत्तर :महिला आयोग के अध्यक्ष के रूप में मुझे यह मौका मिला कि मैं महिलाओं के साथ-साथ पूरे समाज की सेवा कर सकूँ। मुझे शासन, कार्यालय और समाज के विभिन्न वर्गों से काफी सहयोग और समर्थन मिला। हमने इस बात की पूरी कोशिश की है कि सबको साथ ले कर चला जाय और इसमें हमें काफी हद तक सफलता भी मिली। भारत एक विशाल देश है और हमारा कार्य क्षेत्र बड़ा व्यापक है। साथ ही हमारी जिम्मेदारियाँ और हमसे अपेक्षायें बहुत ज्यादा हैं। लोगों की कसौटी पर खरे उतरने की कोशिश हम करते रहे हैं पर अभी भी पर्याप्त संसाधन नहीं हैं और विभिन्न विभागों के बीच पूरा तालमेल नहीं है। मुझे विश्वास है कि आयोग को और अधिकार मिलेंगे और उसकी भूमिका और प्रभावी होगी। नारी को बराबरी का दर्जा दिलाने और उनके कल्याण की कोशिशें जारी रहेंगी।

आइये...... हम शपथ लें कि महिलाओं के साथ कभी कोई भेदभाव नहीं करेंगे, उनकी गरिमा बनाए रखेंगे तथा उनको और अधिक सशक्त बनाने के लिए हर संभव कोशिश करेंगे।

प्रस्तुति : अंशु गुप्ता

* * *

आयोग के महत्वपूर्ण निर्णयों का कहानी रूपांतरण

चोरी की सजा मौत

• राकेश रेणु

जून की सुबह, सूरज अभी अपनी पांखें फैला भी नहीं पाया था। इसीलिए मंद-मंद शीतल बयार प्रचंड गर्मी के इस मौसम में मन को उत्फुल्लित कर रही थी। ऐसे में एक गबरू जवान कोई फिल्मी गीत गुनगुनाता अमृतसर की अलसाई गलियों से अपना रिक्शा सरसराता हुआ आगे बढ़ा जा रहा था। गली से निकल कर वह मुख्य सड़क पर पहुंचा। तभी उसके सामने एक जीप आकर रूकी। अरे यह तो पुलिस की गाड़ी है। इससे आगे वह कुछ सोचे तब तक उसके सामने जीप से उतर कर दो सिपाही आ खड़े हुए।

''तुम्हारा नाम ?'' उनमें से एक सिपाही ने रौब से पूछा। ''मोहन, मोहन लाल साब,'' भौंचक्क रिक्शे वाले ने लगभग हकलाते हुए जवाब दिया। ''चल बैठ जा,'' पुलिस कांस्टेबल ने उसे जीप की तरफ धकियाते हुए कहा। दूसरे ही पल जीप मोहन को पीछे बैठा भागी जा रही थी।

जम्मू में उन दिनों आए दिन चोरियां हो रही थीं जिसे जम्मू पुलिस काला कच्छा गिरोह की कारस्तानी मान रही थी। पुलिस को शक था कि मोहन के तार इस गिरोह से जुड़े हैं। इसीलिए अमृतसर जिला क्षेत्र से उसे गिरफ्तार कर लिया गया।

इसके बाद लगभग दस दिनों तक मोहन का कोई अता-पता न चला। पहली जुलाई, 2003 को जम्मू पुलिस ने उसे गंभीर अवस्था में पुलिस लाईन अस्पताल, जम्मू में भर्ती कराया जहां अगले ही रोज उसकी मृत्यु हो गई। पोस्टमार्टम रिपोर्ट में उसकी मौत का कारण बार-बार दस्त लगने की वजह से शरीर में पानी की कमी होना बताया गया। यह खबर जब घरवालों तक पहुंची तो उन्होंने छाती पीट ली। कोई भी इस बात को स्वीकार करने को तैयार नहीं था कि 26 साल का हट्टा-कट्टा जवान दस्त लगने के कारण इस तरह मर सकता है। हजम करने लायक बात थी भी नहीं यह जो भी सुनता, पुलिसिया निष्कर्ष से नाइत्तफाकी जताता। मौत जम्मू पुलिस के गंग्याल थाने की हिरासत में हुई थी, जबकि मोहन लाल बाशिंदा जिला अमृतसर, पंजाब का था जहां से सरेराह उसे गिरफ्तार कर लिया गया था।

• *लेखक मीडिया विशेषज्ञ और 'योजना' पत्रिका के वरिष्ठ संपादक है।*

लाश का पोस्टमार्टम कराने के बाद जम्मू पुलिस मामले को जल्दी से जल्दी रफा-दफा करना चाहती थी। उसने शव परिवार वालों के हवाले कर छुट्टी पाई। लेकिन मोहनलाल की बस्ती में जैसे-जैसे उसकी मौत की खबर फैली, लोग जमा होते गए। सबके मन में अविश्वास और उससे उपजा आक्रोश फैलता जा रहा था। गांव वालों के गुस्से और विरोध को देखते हुए स्थानीय पंजाब पुलिस ने लाश का दुबारा पोस्टमार्टम कराने का फैसला किया। दूसरा पोस्टमार्टम अमृतसर मेडिकल कॉलेज में कराया गया। रिपोर्ट आने पर न केवल मोहन लाल के गांव वालों, बल्कि बुद्धिजीवियों और मानवाधिकार कर्मियों की आंखें फटी की फटी रह गईं। इस रिपोर्ट के अनुसार मृतक के शरीर पर 41 चोट के निशान पाए गए, उसे न केवल नृशंसतापूर्वक मारा-पीटा गया था, बल्कि उसे बिजली के झटके भी दिए गए थे। इस रिपोर्ट में पहले पोस्टमार्टम रिपोर्ट के उलट साफ-साफ कहा गया था कि मौत अतिशय पीड़ा और नाकाबिले बर्दाश्त चोट की तकलीफ से दिमाग की नस फट जाने और सदमे की वजह से हुई थी। चोरी के शक में बिजली के झटके ! जो भी सुनता भौंचक्क रह जाता। पंजाब पुलिस ने आरोपी पुलिसकर्मियों के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 304 और 354 के तहत मामला दर्ज कर तहकीकात आरंभ कर दी।

लेकिन यह जगजाहिर था कि जम्मू पुलिस मामले को रफा-दफा करना चाहती है। पुलिस लाईन अस्पताल, जम्मू के डॉ० लक्ष्मण की पोस्टमार्टम रिपोर्ट इसी प्रयास की एक कड़ी नजर आ रही थी क्योंकि दूसरी पोस्टमार्टम रिपोर्ट कुछ और ही कहानी बयान कर रही थी। जम्मू पुलिस की क्रूरता और अमानवीय आचरण साफ-साफ मानवाधिकारों का उल्लंघन दर्शा रही थी। इससे स्थानीय बुद्धिजीवी और मानवाधिकार कर्मी खासे चिंतित थे। एशियन सेंटर फॉर ह्यूमन राइट्स नामक स्वयंसेवी संगठन के निदेशक और मानवाधिकार कर्मी सुहास चकमा ने पहल करते हुए राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को समूचे घटनाक्रम की जानकारी भेजी और इस मामले में रिक्शाचालक श्री मोहन लाल की मौत और उनके अधिकारों के हनन के प्रकरण की तहकीकात करने का आवेदन किया।

आयोग के लिए यह प्रथमदृष्ट्या पुलिसिया ज्यादतियों का, क्रूर हिंसापरक यातना का मामला था। उसने इस मामले को गंभीर माना और जम्मू-कश्मीर राज्य सरकार को समुचित जांच कर रिपोर्ट भेजने का आदेश दिया। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने इस प्रकरण में न केवल राज्य सरकार को कार्यकारी मैजिस्ट्रेट द्वारा जांच कराने को कहा, बल्कि बोर्ड ऑफ डॉक्टर्स की रिपोर्ट मंगाई, दोनों पोस्टमार्टम के साथ कराए गए मल-मूत्र, एफएसएल आदि की जांच रिपोर्टें और विभागीय जांच रिपोर्ट आदि भी मंगाई। सभी प्रमाणों और साक्ष्यों की जांच के बाद आयोग ने पाया कि जम्मू-कश्मीर राज्य के सरकारी अमले ने सच्चाई छुपाने की कोशिश की और आयोग को गलत रिपोर्ट भेजी कि मृतक मोहन लाल को पूछताछ के बाद 22 जून, 2003 को इस हिदायत के साथ छोड़ दिया गया था कि वह जांच में सहयोग करे (कि वह थाने में स्वेच्छापूर्वक आया था जहां आते ही उसने दस्त की शिकायत की) कि उसकी मौत डिहाइड्रेशन (शरीर में जल की कमी) और इंफेक्शन (संक्रमण) की वजह से हुई थी, आदि। स्पष्टतः राज्य सरकार की

रिपोर्ट में गंभीर अनियमितताएं थीं। अमृतसर मेडिकल कॉलेज में कराए गए दूसरे पोस्टमार्टम की रिपोर्ट में मृत्यु की वजह स्पष्ट शब्दों में तीसरे दर्जे की यातना, पिटाई और शरीर में बिजली के करंट छोड़ना बताया गया था। इन सभी साक्ष्यों के मद्देनजर आयोग ने मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 की धारा 18 के अधीन राज्य सरकार को कारण बताओ नोटिस जारी किया। लेकिन राज्य सरकार ने इस नोटिस का कोई जवाब नहीं दिया।

इसके उपरांत राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने 19 अगस्त, 2009 को अपने फैसले में उपरोक्त अनियमितताओं का उल्लेख करते हुए रेखांकित किया कि केवल चोरी के मामले में शामिल होने का शक होनेभर के आधार पर जांच एजेंसी को अभियुक्त के खिलाफ ऐसे क्रूर और हिंसक उपाय अपनाने का कोई अधिकार नहीं है। सच उगलवाने के लिए शरीर में बिजली के करंट लगाना न केवल सभ्य तहकीकात के समस्त मानदंडों की अवहेलना है, बल्कि यह मानवाधिकारों का खुल्लमखुल्ला उल्लंघन भी है। मृतक की उम्र, उसकी अवस्था तथा मामले से जुड़ी अन्य परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आयोग ने जम्मू-कश्मीर सरकार को मृतक के निकटतम परिजन को पांच लाख रूपये की राहतराशि प्रदान करने का आदेश दिया। जम्मू-कश्मीर सरकार के मुख्य सचिव को आदेश देते हुए कहा गया कि आठ सप्ताह के भीतर राहत राशि के भुगतान के प्रमाण के साथ आदेश के तामील की रिपोर्ट पेश करें।

* * *

रक्षक बने भक्षक

• राकेश रेणु

प्रेम बंधन मुक्त होता है। जात-पांत, स्थान-स्थितियां उसकी राह में रोड़ा नहीं बन सकते, वह उन्हें बहा ले जाता है। ऐसा उद्दाम आवेग होता है प्रेम का। ऐसा ही उद्दाम प्रेम किया था पूजा ने।

जिला करनाल के इंद्री गांव में एक दलित परिवार में जन्मी पूजा की उम्र तब बीस साल की थी। वह गांव के ही एक सवर्ण युवक से प्रेम कर बैठी। दोनों जवान थे आधुनिक और प्रगतिशील दुनिया की रोशनी से आलोकित, जहां सभी मनुष्य मात्र होने की वजह से एक समान हैं उनमें जाति, धर्म, वर्ग आदि के आधार पर भेद नहीं डाला जा सकता। चूंकि दोनों एक-दूसरे को पसंद करते थे, इसलिए उन्होंने शादी करने का फैसला किया। लेकिन इस तरह का अंतरजातीय विवाह परिवार और गांव वालों को न पसंद आना था, न आया। उन्हें देख लेने और जान से मार देने की धमकियां मिलने लगीं। इसलिए इस युवा जोड़े ने हरियाणा उच्च न्यायालय से पुलिस सुरक्षा देने की गुहार लगाई। सुरक्षा कारणों से ही अपने परिवार वालों से स्थानीय थाने में मिलते। समय बीतने के साथ-साथ पूजा के परिजनों ने इस विवाह को स्वीकार कर लिया। लेकिन खतरा अभी टला न था। उसके पति के परिजन अभी भी अपने सवर्ण होने के झूठे गुमान में फूले हुए थे और इस विवाह के प्राय: छह महीने बीत जाने के बाद भी इसे स्वीकार करने से इंकार कर रहे थे अत: उनसे पूजा दंपत्ति की मुलाकात निसिंग थाने में ही होती।

26 जून, 2008 की बात है, सुबह से ही सूरज आग उगल रहा था। ऐसे में यह युवा जोड़ा परिजनों से मुलाकात के लिए थाने पहुंचा। घर के लोग अभी आए नहीं थे, इसलिए पूजा के पति ने समय का इस्तेमाल कर बाजार से कुछ घरेलू उपयोग का सामान खरीदने का निर्णय किया। उसे पुलिस पर भरोसा था, इसलिए पूजा को वहीं छोड़ वह बाजार चला गया। लेकिन बीते सालों में भोले-भाले नागरिकों को पुलिसकर्मियों ने जितना छला है उतना शायद ही किसी ने छला हो। निसिंग थाने के थानेदार इंस्पेक्टर जय सिंह के मस्तिष्क में शायद ऐसा ही छल पहले से पल रहा था। वह पूजा को किसी बहाने फुसलाकर अहाते में ही स्थित अपने सरकारी निवास में ले गया जहां उसने भरोसे का खून करते हुए बलात्कार किया।

• *लेखक मीडिया विशेषज्ञ और 'योजना' पत्रिका के वरिष्ठ संपादक है।*

इस घटना की सूचना राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को एक स्वयंसेवी संगठन 'नेशनल कैंपेन फॉर प्रिवेंशन ऑफ टॉर्चर' ने दी। घटना की जानकारी देते हुए अपने आवेदन में इस संगठन ने दुष्कर्मी पुलिसकर्मी के खिलाफ कानूनी कार्रवाई करने और पीड़िता को मुआवजा दिलाने का आग्रह किया।

इस शिकायत पर कार्यवाही करते हुए आयोग ने करनाल के पुलिस अधीक्षक को नोटिस भेजा जिसके जवाब में पुलिस अधीक्षक ने सूचित किया कि आरोपी पुलिसकर्मी के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 376 (2) (1) के तहत मामला दर्ज कर पुलिसकर्मी को गिरतार कर लिया गया है और उसे निलंबित कर दिया गया है। पीड़िता की चिकित्सकीय जांच कराई गई है। एम एल सी के परीक्षण से ज्ञात होता है कि रासायनिक जांच रिपोर्ट आने की प्रतीक्षा है और परीक्षणकर्ता चिकित्सक ने अपनी राय तब तक के लिए लंबित रखी है। पुलिस अधीक्षक ने यह भी सूचित किया कि पीड़िता को चिकित्सकीय तथा अन्य सहायता दी जा सकती है तथा यदि क्षतिपूर्ति के भुगतान की अनुशंसा की जाए तो सरकार को कोई आपत्ति नहीं होगी।

कागजातों का विश्लेषण कर आयोग ने पाया कि इस प्रकरण में रक्षक ही भक्षक बन गया और दलित युवती पूजा की स्थितियों का फायदा उठा इंस्पेक्टर जयसिंह ने अपने सरकारी आवास में उसके मानवाधिकारों का हनन किया और असहाय दलित युवती के साथ बलात्कार किया। इसलिए आयोग ने हरियाणा सरकार के मुख्य सचिव को कारण बताओ नोटिस जारी कर चार सप्ताह के भीतर यह स्पष्ट करने को कहा कि मानवाधिकार संरक्षण कानून की धारा 18 (सी) के आलोक में क्यों न पीड़िता को आर्थिक राहत के भुगतान की अनुशंसा की जाए।

* * *

नृत्यशाला में रक्त-नृत्य

• राकेश रेणु

मणिपुरी नृत्य के बारे में कौन नहीं जानता? उसमें भी रासलीला, जिसकी ख्याति न केवल देश में, बल्कि विदेशों में भी दूर-दूर तक है। मणिपुर में नृत्य-संगीत की विविधतापूर्ण और रंगीन विधाएं हैं जिनमें यहां के लोग तल्लीन हो जाते हैं। तभी तो मणिपुर को देवताओं की नृत्यशाला कहा जाता है।

आर. के. संजाबाओ संभवत: ऐसे ही किसी समारोह में देर रात तक शामिल थे। इसलिए सुबह उनकी आंख थोड़ी देर से खुली। देर रात हो जाने की वजह से वह पास ही अपने एक मित्र के घर रूक गए, अपने घर नहीं जा पाए। सुबह जब नींद खुली तो उन्होंने स्कूटर लिया, मित्र को पीछे बिठा, अपने घर इंफाल के परसोई इलाके की ओर चल पड़े। अक्टूबर की सुहानी सुबह, मादक हवा उनके बालों को सहला रही थी। रास्ते में उन्हें लगा कि कहीं चाय पीनी चाहिए। उन्होंने सड़क किनारे फुटपाथ पर बनी छोटी-सी चाय की दुकान के सामने स्कूटर खड़ा किया, चाय वाले से चाय बनाने को कहा और आपस में बातचीत में मशगूल हो गए। तभी कुछ पुलिस वाले वहां पहुंचे और उन्हें अपनी ओर बुलाया। न जाने क्या बात हुई कि उनमें से एक पुलिस वाले ने तमंचा निकाल लिया और बाकियों ने आर. के. संजाबाओ की पिटाई शुरू कर दी। फिर पहले पुलिस वाले ने रिवॉल्वर तान काफी करीब से संजाबाओ पर फायर कर दिया। संजाबाओ आह भी न कर सके, वहीं गिर पड़े और उनके प्राण-पखेरू उड़ गए।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को इस अन्यायपूर्ण घटना की जानकारी एक स्थानीय स्वयंसेवी संगठन के कार्यकर्ता ने हत्या के अगले दिन 21 अक्टूबर, 2004 को दी। आयोग ने इस घटना का त्वरित संज्ञान लेते हुए 29 अक्टूबर, 2004 को मणिपुर के पुलिस महानिदेशक को मामले की तहकीकात कर कार्यवाही करने और चार सप्ताह के भीतर की गई कार्यवाही की रिपोर्ट आयोग को भेजने का आदेश दिया। अपने आदेश में आयोग ने राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष द्वारा सभी राज्यों के मुख्यमंत्रियों को 1997 में जारी दिशा-निर्देशों के अनुरूप कार्रवाई करने के लिए कहा।

• *लेखक मीडिया विशेषज्ञ और 'योजना' पत्रिका के वरिष्ठ संपादक हैं।*

आयोग ने इस दु:खद यथार्थ को रेखांकित किया कि न केवल इस हत्या के प्रकरण में, बल्कि इसकी तरह की अन्य समस्त घटनाओं की रिपोर्टिंग के मामले में मणिपुर सरकार का रिकॉर्ड बेहद खराब है क्योंकि वहां से ऐसी किसी घटना की रिपोर्ट आयोग को नहीं भेजी जाती जबकि उपरोक्त दिशा-निर्देशों में ऐसा करने का आदेश दिया गया है। इसलिए पुलिस एनकाउंटर के 111 मामलों में राज्य के मुख्य सचिव से जवाब तलब किया गया कि ये सभी रिपोर्टें आयोग को क्यों नहीं भेजी गईं।

जवाबी रिपोर्ट आयोग के पास मणिपुर के अपर पुलिस महानिदेशक (मानव अधिकार) की ओर से आई जिसमें उन्होंने 30 नवंबर, 2004 की इंफाल (पू0) के एस पी की रिपोर्ट संलग्न की थी। इस रिपोर्ट में कहा गया था कि मृतक आर. के. संजाबाओ ने पुलिसकर्मियों पर आक्रमण किया और उनसे सर्विस रिवॉल्वर छीनने की कोशिश की। हाथापाई में रिवॉल्वर से कुछ गोलियां चल गई जो संजाबाओ को लगीं और उनकी मौके पर मौत हो गई। इस मामले में इंफाल पुलिस थाने में एफ आइ आर दर्ज की गई है जिसकी अभी तहकीकात की जानी है। रिपोर्ट के साथ अंतर्वीक्षा रिपोर्ट और पोस्टमार्टम रिपोर्ट भी संलग्न की गई। पोस्टमार्टम रिपोर्ट में बताया गया था कि मृतक के शरीर पर गोलियों के निशान के अलावा मृत्यु-पूर्व चोट के कई निशान भी पाए गए। इसमें साफ कहा गया कि गोली अगर पुलिसकर्मी से लिपटने अथवा हाथापाई के दौरान दुर्घटनावश लगी होती तो वहां गोली लगने की जगह गोदना गोदे जाने की भांति काला निशान बन जाता, जो निशान वहां नहीं पाया गया। इसलिए गोली एकदम करीब से नहीं, बल्कि थोड़ा हटकर मारी गई। जवाबी रिपोर्ट में भेजी गई अन्य जानकारियां पर्याप्त न थीं। इसलिए आयोग ने और जानकारियों की मांग की। इनके उत्तर में इंफाल (पू) के एस पी ने बताया कि मृतक ने पुलिस दल को अपशब्द कहे अथवा गाली दी थी जिसकी वजह से पुलिसकर्मी गुस्से में गाड़ी से उतरे और यह घटना घटी। यह भी सूचित किया गया कि इस मामले में दोषी पुलिसकर्मी के खिलाफ कचहरी में चार्जशीट दाखिल कर दी गई है और विभागीय कार्यवाही भी आरंभ कर दी गई है।

आयोग ने राज्य सरकार से प्राप्त जवाब पर गौर करने के बाद पाया कि यह सरासर मृतक के मानवाधिकारों के हनन का मामला है। पुलिस ने यह जताने की कोशिश की है कि यह दुर्घटनावश गोली चलने का मामला है और खींचतान में गलती से गोली चलने के कारण श्री संजाबाओ की मृत्यु हुई। लेकिन पुलिस द्वारा प्रस्तुत यह सिद्धांत सर्वथा अविश्वसनीय है। किसी व्यक्ति की टिप्पणी अथवा कटाक्ष सुनकर पुलिसकर्मियों का गाड़ी रोककर बाहर आना और राह चलते लोगों से हाथापाई करना, अविश्वसनीय और आश्चर्यजनक है। यह भी अविश्वसनीय है कि तीन पुलिसकर्मी एक निहत्थे आदमी को नियंत्रित नहीं कर पाए। पोस्टमार्टम रिपोर्ट में भी विशेषज्ञ डॉक्टर ने यह राय व्यक्त की है कि गोली हाथापाई के दौरान नहीं लगी।

आयोग ने दोषी पुलिसकर्मी के खिलाफ न्यायालय में चार्जशीट दाखिल करने और उसके विरूद्ध विभागीय जांच का उल्लेख करते हुए कहा कि पहली नजर में ही यह मृतक के

मानवाधिकारों के हनन का मामला है। अपने कर्मचारियों के आपराधिक दुराचरण के लिए राज्य जिम्मेदार है लेकिन राज्य सरकार द्वारा भेजी गई रिपोर्ट आर्थिक क्षतिपूर्ति के मामले में सर्वथा मौन है। इसलिए राज्य सरकार को एक कारण बताओ नोटिस और एक स्मरण पत्र भी भेजा गया किंतु राज्य सरकार की ओर से इन दोनों का कोई उत्तर आयोग को प्राप्त नहीं हुआ। इसलिए यह मानते हुए कि राज्य सरकार के पास इसका कोई ठोस उत्तर नहीं है, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने अनुशंसा की कि मृतक के निंकटतम परिजन को पांच लाख रूपये की राशि आर्थिक राहत के तौर पर दी जाए। मणिपुर सरकार के मुख्य सचिव को आदेश दिया गया कि छह सप्ताह के भीतर राहत भुगतान के प्रमाण भेजें।

* * *

मेघों के घर में उपेक्षा का अकाल

• राकेश रेणु

मेघों का घर मेघालय। बांग्लादेश की सीमा से लगे पूर्वोत्तर की आठ बहनों में से एक इस राज्य की ख्याति देश के सर्वाधिक वर्षा वाले इलाके के रूप में है। घटना इसी राज्य के पश्चिम गारो हिल्स जिले की है। अंतरराष्ट्रीय सीमा पर अवस्थित होने के कारण इस जिले में सीमा सुरक्षा बल (बी एस एफ) के प्रहरियों की अच्छी संख्या में तैनाती है। बात हालिया इतिहास के उस कालखंड की है जब बांग्लादेश की अंदरूनी राजनीतिक स्थिति के कारण सीमा पर लगातार कुछ-न-कुछ उपद्रव होते रहते थे। इसलिए तनाव कम करने के लिए सीमा के दोनों तरफ के फौजियों की लैग मीटिंग होती रहती थीं। यों तो ऐसी बैठकें शांतिकाल में भी चलती हैं। इसलिए संदेश वाहकों की जरूरत, सुरक्षा बलों को, हमेशा ही बनी रहती है। बी एस एफ ऐसे कामों के लिए स्थानीय बाशिंदों की सेवाएं लेती है, क्योंकि वे न केवल स्थानीय भाषा, बोली, संस्कृति से अवगत होते हैं, बल्कि वे स्थानीय भौगोलिक स्थितियों से भी परिचित होते हैं। इन संदेशवाहकों का कई मर्तबा दोहरा महत्व होता है। उन्हें संदेश प्रेषण के साथ-साथ कई खुफिया जानकारियां इकट्ठा करने का दायित्व भी सौंपा जाता है।

यह कहानी पश्चिम गारो हिल्स जिले में बी एस एफ के एक ऐसे ही संदेशवाहक नीलकमल कोच की है। 22 अक्टूबर, 2002 को नोक्सी बी ओ पी में बी एस एफ की 199 बटालियन के कमांडर ने नीलकमल कोच को बांग्लादेश सीमा के भीतर स्थित बांग्लादेश राइफल्स (बी डी आर) के कैंप में दोनों बलों के बीच लैग मीटिंग का स्थान और तारीख तय करने के आशय का पत्र देने हेतु भेजा। इस तरह की डाक लाना ले जाना नीलकमल के लिए साधारण सी बात थी, क्योंकि इससे पूर्व वह अनेक मर्तबा ला-ले जा चुके थे और इससे उपार्जित आय उनकी आजीविका का प्रमुख स्रोत थी। लेकिन इस बार नीलकमल कोच डाक लेकर जो गए तो लौटे ही नहीं। इंतजार करती पत्नी श्रीमती बिसुती कोच की आंखें पथरा गईं। उन्होंने बी एस एफ अधिकारियों से गुजारिश की, पुलिस थाने में पति की गुमशुदगी की रिपोर्ट लिखाई, जहां-जहां लोगों ने बताया, उन सभी अधिकारियों से दरख्वास्त की यानि दर-दर की ठोकरें खातीं रहीं-लेकिन उन्हें पति का अता-पता चलना या आर्थिक मदद मिलना तो दूर कहीं से कोई

• *लेखक मीडिया विशेषज्ञ और 'योजना' पत्रिका के वरिष्ठ संपादक है।*

आश्वासनकारी सुराग भी न मिला। इस बीच घर की माली हालत कठिन से कठिनतर होती जा रही थी। हारकर 2005 के मध्य में, 20 मई को उन्होंने राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को अपनी व्यथा कथा लिख भेजी अपने आवेदन में।

श्रीमती बिसुती कोच ने अपने पति को ढूंढने, आर्थिक राहत व क्षतिपूर्ति हेतु आयोग से हस्तक्षेप करने के लिए कहा।

आवेदन का संज्ञान लेते हुए आयोग ने बी एस एफ के ऑपरेशंस निदेशालय के महानिदेशक को स्थिति स्पष्ट करने के लिए कहा।

31 मई, 2006 को भेजे गए अपने जवाब में बी एस एफ निदेशालय ने आयोग को बताया कि श्रीमती कोच के पति को 22 अक्टूबर, 2002 को कार्यालय की डाक पहुंचाने के लिए बांग्लादेश में स्थित बी ओ पी - नोक्च भेजा गया था। बी डी आर बी ओ पी को डाक पहुंचा वह वापस भारत नहीं लौटा और तब से लापता है। उसकी गुमशुदगी के सिलसिले में एक एफ आई आर डालू थाने में लिखवाई गई थी, लेकिन पुलिस के द्वारा छानबीन में श्री कोच का कोई अता-पता नहीं मिला। इस मामले को बांग्लादेश के अधिकारियों के सम्मुख भी उठाया गया और उनसे गुमशुदा व्यक्ति की तलाश हेतु कदम उठाने को भी कहा गया। इस घटना के लिए स्टॉफ कोर्ट ऑफ इंक्वायरी ने किसी भी व्यक्ति को दोषी नहीं पाया। चूंकि श्री नीलकमल कोच के बारे में खबर नहीं मिल पाई, इसलिए संदेश है कि या तो असामाजिक तत्वों ने उनका अपहरण कर लिया है अथवा वह किन्हीं निजी कारणों से कहीं छिपे हुए हैं।

बी एस एफ ऑपरेशंस डायरेक्टोरेट के महानिदेशक ने अपने 13 फरवरी, 2007 और 26 अक्टूबर, 2009 के पत्र के मार्फत बताया कि शिकायतकर्ता श्रीमती बिसुती कोच को किसी किस्म की क्षतिपूर्ति का भुगतान नहीं किया गया है क्योंकि श्री नीलकमल बी एस एफ के कर्मचारी नहीं थे और असैन्य व्यक्तियों को आर्थिक सहायता अथवा हर्जाना देने का कोई प्रावधान नहीं है।

आयोग ने सभी रिपोर्टों पर विचार करने के उपरांत पाया कि श्रीमती बिसुती कोच के पति को बी एस एफ ने डाक देने के काम पर बहाल कर रखा था। वह बांग्लादेश किसी निजी काम से नहीं गए थे, बल्कि बी एस एफ की डाक पहुंचाने के लिए गए थे। जिसे स्वयं बी एस एफ के महानिदेशक ने स्वीकार किया है। वह डाक पहुंचाने के क्रम में ही लापता हो गए और अब तक उनके बारे में कोई जानकारी नहीं मिल पाई है। इस प्रकार वह असैन्य नागरिक होते हुए भी सुरक्षा बल द्वारा दिए गए मिशन को पूरा कर रहे थे। इसलिए आयोग ने गृह मंत्रालय के सचिव को नोटिस जारी कर पूछा कि सरकार द्वारा श्री नीलकमल कोच के मानवाधिकारों के हनन के लिए क्यों न मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 की धारा 18 के तहत शिकायतकर्ता श्रीमती कोच को आर्थिक राहत अथवा प्रतिपूर्ति के भुगतान की अनुशंसा की जाए।

आयोग ने 20 अगस्त, 2010 को अपना निर्णय सुनाते हुए कहा कि एक ऐसा व्यक्ति जो सरकारी ड्यूटी निभाते हुए लापता हो गया उसके परिवार को आर्थिक मदद देने से मना करना सरासर अमानवीय है। श्री कोच अपने परिवार के अकेले कमाऊ सदस्य थे और सरकारी कर्तव्य का निर्वहन करते हुए लापता हुए थे। इसलिए उनका परिवार किसी ऐसे फौजी के परिवार की तरह ही आर्थिक सहायता का हकदार है जो सुरक्षा कार्रवाई के दौरान लापता हो जाता है। श्री नीलकमल कोच का परिवार पिछले आठ सालों से बगैर किसी सरकारी मदद के कष्ट झेल रहा है। इसलिए समस्त परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आयोग ने भारत सरकार के गृह मंत्रालय को आदेश दिया कि श्री नीलकमल कोच के निकटतम संबंधी को पांच लाख रुपये की आर्थिक राहत प्रदान करे और आठ सप्ताह के भीतर भुगतान के प्रमाण के साथ आयोग के समक्ष निष्पादन रिपोर्ट प्रस्तुत करे।

* * *

पुण्यभूमि में पाप कर्म

• राकेश रेणु

शरद ऋतु की सुहानी रात थी। धर्म नगरी वाराणसी चैन की नींद सो रही थी। कश्मीरीगंज इलाके में प्रकाश काली उर्फ काली पंडित भी गहरी नींद में थे। तभी बाहर दरवाजा भड़भड़ाने और जोर-जोर से थपथपाने की आवाज आई। वह उठ बैठे। घड़ी रात के दो बजा रही थी। वह नींद में ही दरवाजा खोलने चल पड़े – पता नहीं कौन है इस पहर! अरे, यह क्या, एक नहीं कई लोग हैं, सभी पुलिस वाले। इससे पहले कि वह संभले, कुछ पूछे, उसे खींच कर गाड़ी में बिठा लिया गया और पुलिस गाड़ी चल पड़ी। घटना 25-26 सितंबर, 2006 की रात की थी। जब काली पंडित सुबह तक घर नहीं लौटे तो उनका परिवार परेशान होने लगा। बदहवास बहन ने तार भेजकर राष्ट्रीय मानव अधिकार को पुलिसकर्मियों द्वारा मध्यरात्रि अपने भाई के अपहरण की सूचना दी और यह आशंका जताई कि उनके भाई को पुलिस किसी मामले में फंसा सकती है अथवा उनकी हत्या कर सकती है। अत: उसने आयोग से दरख्वास्त किया कि इस मामले में हस्तक्षेप कर उसके भाई की रक्षा करें।

तार द्वारा भेजे गए इस आवेदन पर कार्यवाही करते हुए आयोग ने वाराणसी के वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक (एस एस पी) को मामले की जांच करने का आदेश दिया। जवाब में एस एस पी ने 20 दिसंबर, 2006 को आयोग को अपनी जांच रिपोर्ट भेजी जिसमें बताया गया था कि काली पंडित को उनके एक साथी के साथ हीरो होंडा मोटर साइकिल पर सुबह के लगभग 5 बजे वाराणसी के अंडमूल गोलचक्कर से गुजरते हुए देखा गया था। पुलिस दल के रूकने के संकेत की अनदेखी कर चालक ने मोटर साइकिल की गति बढ़ा दी। इस पर पुलिस दल ने उनका पीछा किया जिस पर मोटर साइकिल पर पीछे बैठे व्यक्ति ने पुलिस दल पर फायरिंग आरंभ कर दी। पुलिस दल ने भी आत्मरक्षा में जवाबी कार्यवाही करते हुए फायरिंग शुरू की जिससे मोटर साइकिल एक पानी की टंकी के निकट गिर पड़ी। पीछे बैठे व्यक्ति को भी गोली लगी थी जिससे वह भी गिर पड़ा और उसकी मौत हो गई। यह व्यक्ति काली पंडित था। उनका दूसरा साथी भागने में कामयाब रहा।

• *लेखक मीडिया विशेषज्ञ और 'योजना' पत्रिका के वरिष्ठ संपादक हैं।*

एस एस पी की रिपोर्ट में जहां यह दावा किया गया था कि काली पंडित को गोली तब लगी जब उनका पीछा किया जा रहा था, वहीं पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार गोली उनके सीने में दाहिनी तरफ लगी थी। इस पर स्पष्टीकरण देते हुए वाराणसी (ग्रामीण) के एस पी ने 1 जुलाई, 09 के अपने पत्र में संभावना व्यक्त की कि गोली मृतक को तब लगी होगी जब वह मुड़कर पुलिस दल पर फायर कर रहा था।

आयोग ने एस एस पी वाराणसी, एस पी वाराणसी (ग्रामीण), पोस्ट मार्टम रिपोर्ट तथा अन्य साक्ष्यों का मूल्यांकन करने पर पाया कि पुलिस द्वारा प्रस्तुत वृत्तांत विश्वसनीय नहीं है। यह तर्क रत्ती भर संगत नहीं प्रतीत होता कि पीछा करते समय चलाई गई गोली किसी व्यक्ति के सीने में भी लग सकती है जबकि पीछे से आने वाले व्यक्ति के सामने आगे के व्यक्ति की पीठ होती है। दूसरी गोली मृतक की गर्दन के बीचो-बीच लगी थी। यह भी संभव नहीं कि पीछा करने के दौरान गर्दन में लगी गोली रीढ़ की हड्डी के छठे जोड़ से बाहर निकले। आयोग के पास मृतक की बहन ज्योति रानी ने घटना की सुबह ही तार भेज कर सूचित किया था कि उसके भाई को पुलिस मध्यरात्रि उपरांत अपने साथ ले गई है। साथ ही, उसने यह भी आशंका जताई थी कि उसके भाई काली पंडित को पुलिस किसी मामले में फंसा सकती है अथवा जाली एनकाउंटर कर जान से मार सकती है। लेकिन मामले की जांच के दौरान वाराणसी पुलिस ने उन्हें जांच में यह कहते हुए शामिल नहीं किया वह उस घर को छोड़ कहीं और चली गई हैं। इससे साफ जाहिर होता है कि जांच अधिकारी ने उन्हें ढूंढने की कोई गंभीर कोशिश नहीं की।

आयोग ने पोस्टमार्टम रिपोर्ट की जांच के बाद यह भी पाया कि रिपोर्ट में वर्णित घावों के आधार पर यह मानना सर्वथा असंभव है कि मोटर साइकिल पर पीछे बैठा व्यक्ति फायरिंग कर रहा था और पुलिस की जवाबी कार्यवाही में गोली उसके शरीर में लगी। इसलिए आयोग ने इस सिद्धांत को सर्वथा अस्वीकार्य पाया। पहली नजर में ही स्पष्ट था कि काली पंडित को गैरकानूनी तरीके से मारा गया था। यह सीधे-सीधे उनके मानवाधिकारों के हनन का मामला था। यह भी स्पष्ट था कि आयोग द्वारा भेजे गए 'कारण बताओ नोटिस' के जवाब में राज्य के अधिकारियों ने बिना समुचित और संगत तर्क भेजे।

समस्त साक्ष्यों और स्थितियों को ध्यान में रखते हुए आयोग ने मामले को प्रतिपूर्ति के योग्य पाया और मृतक के निकटतम संबंधी को पांच लाख रुपये बतौर आर्थिक हर्जाना दिए जाने का निर्णय सुनाया। आयोग ने उत्तर प्रदेश सरकार के मुख्य सचिव को आदेश दिया कि छह सप्ताह के भीतर मृतक के निकटतम संबंधी को हर्जाने का भुगतान सुनिश्चित करें।

आयोग के इस आदेश के जवाब में उत्तर प्रदेश सरकार के पुलिस उपमहानिदेशक (एच आर) ने बताया कि आयोग द्वारा संस्तुत राहत राशि स्वीकृत की जा चुकी है लेकिन मृतक के निकटतम परिजन की पहचान नहीं हो सकी इसीलिए वाराणसी के जिलाधिकारी उक्त राशि का भुगतान नहीं करा पाए। आयोग की दृष्टि में यह बेहद आश्चर्यजनक और अविश्वसनीय वाकया

था क्योंकि मैजिस्ट्रेटी जांच में मृतक के पिता की पहचान चुन्नू लाल के रूप में की गई जो हीरापुर, कबीर चौड़ा, हैलपट्टा, जद्दु मंडी, थाना लक्सा, वाराणसी के निवासी हैं। तंगी और मुश्किलात से जूझते मृतक के परिवार को राहत राशि न पहुंचाने तथा पुलिस और जिला प्रशासन के गंभीर रवैये का यह प्रकट मामला था। अतः आयोग ने आदेश दिया कि वाराणसी के जिलाधिकारी मृतक के परिजनों का तत्काल पता लगाएं और निकटतम परिजन को राहत राशि का भुगतान करें। भुगतान के प्रमाण आयोग को पांच सप्ताह के भीतर भेज दिए जाएं। आयोग ने संबद्ध अधिकारियों को चेतावनी देते हुए कहा कि यदि आदेश पर अमल नहीं किया गया तो आयोग मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 की धारा 13 के तहत निर्दिष्ट अपनी शक्तियों का इस्तेमाल करने के लिए मजबूर हो जाएगा।

* * *

आयोग की महत्वपूर्ण गतिविधियों की एक झलक

आयोग की गतिविधियाँ: एक झलक

• जैमिनि कुमार श्रीवास्तव

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग 1993 से अपनी स्थापना से लेकर आज तक मानवाधिकारों के संवर्धन और संरक्षण के कार्य में सतत् रुप से सक्रिय है। इसमें उसे सरकारी तंत्र, स्वयंसेवी संगठनों और मीडिया का काफी सहयोग मिलता रहा है। आयोग द्वारा मामलों के यथासंभव जल्दी निपटारे और उसकी सिफारिशों का ही नतीजा है कि इसके प्रति लोगों का विश्वास बढ़ा है। आयोग को मानवाधिकार के उल्लंघन संबंधी मिलने वाली शिकायतों की बढ़ती संख्या इस बात की द्योतक है।

मानवाधिकारों के प्रचार-प्रसार और उन्हें बढ़ावा देने के बारे में जागरुकता पैदा करने के उद्देश्य से आयोग हर वर्ष कई कार्यक्रम आयोजित करता है। इस सिलसिले में पिछले एक वर्ष में आयोग की कई गतिविधियां रहीं।

दिसंबर 2009 में आयोग की ओर से पहली बार मानव अधिकार दिवस के उपलक्ष्य में कार्यवाहक अध्यक्ष न्यायमूर्ति श्री जी.पी. माथुर ने आकाशवाणी और दूरदर्शन पर एक संदेश पढ़ा। इसके अतिरिक्त आयोग ने आकाशवाणी और दूरदर्शन के सहयोग से विशेष कार्यक्रम आयोजित किए, जिनमें मानव अधिकारों के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा के अलावा जनता के सवालों के जवाब दिए गए। आयोग के सदस्य न्यायमूर्ति श्री बी.सी पटेल, श्री पी.सी शर्मा और रजिस्ट्रार (विधि) श्री ए.के. गर्ग ने इन कार्यक्रमों में भाग लिया। मानव अधिकारों के प्रति व्यापक जागरूकता बढ़ाने के लिए मानव अधिकार दिवस पर मोबाइल फोन कम्पनियों के सहयोग से लघु संदेश पहुंचाने का अनूठा प्रयोग किया गया।

10 दिसंबर, 2009 को मानव अधिकार दिवस पर आयोजित समारोह में गृहमंत्री श्री पी. चिदम्बरम ने मुख्य अतिथि के रुप में संबोधित किया। उन्होंने मानव अधिकारों के बढ़ते आयाम और बदलती परिभाषाओं की ओर इशारा करते हुए आयोग से कहा कि वह उस ओर भी अपना ध्यान दें। उन्होंने आयोग के हिन्दी और अंग्रेजी में प्रकाशित पुस्तकों का लोकार्पण भी किया। इस मौके पर आयोग ने अपने प्रकाशनों और विभिन्न गतिविधियों के छायाचित्रों पर आधारित प्रदर्शनी भी आयोजित की।

• *सूचना एवं जनसम्पर्क अधिकारी, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, दिल्ली*

आयोग ने देश के विभिन्न राज्यों में 28 जिलों के दौरे के कार्यक्रम के तहत इस वर्ष 7 जिलों होशियारपुर (पंजाब), सोनभद्र (उत्तर प्रदेश), सैहा (मिजोरम), कालाहांडी (उड़ीसा), जमुइ (बिहार), छत्रा (झारखंड), तिरूवन्नामलाई (तमिलनाडु), में आयोग के सदस्य न्यायमूर्ति श्री जी.पी माथुर , न्यायमूर्ति श्री बी.सी पटेल, श्री सत्यब्रत पाल और श्री पी.सी शर्मा के नेतृत्व में अपने दल भेजे और मानव अधिकारों के क्रियान्वयन तथा अन्य जनहित के मुद्दों का जायज़ा लिया। इनमें शिक्षा, स्वास्थ्य, सार्वजनिक वितरण प्रणाली, जेलों में कैदियों की सुविधाएँ, जन कल्याणकारी योजनाओं के कियान्वयन की दशा और दिशा का मूल्यांकन शामिल रहा। आयोग अब तक कुल 15 जिलों में ऐसे कार्यक्रम आयोजित कर चुका है।

आयोग ने मानव अधिकार दिवस के उपलक्ष्य में राष्ट्रीय बाल भवन के सहयोग से 5 दिसंबर 2009, को बच्चों की चित्रकला प्रतियोगता का आयोजन किया। आयोग के प्रशिक्षण प्रभाग ने इस वर्ष छात्रों के विभिन्न दलों के लिए लघु अवधि की कार्यशालाएं आयोजित करने के साथ-साथ एक-एक माह के विशेष अन्त: प्रशिक्षु कार्यकम दो बार आयोजित किए। इनमे दिसंबर में शीतकालीन और मई में ग्रीष्मकालीन अन्त: प्रशिक्षु कार्यक्रम शामिल हैं। इनमें भारत के विभिन्न राज्यों के शिक्षण संस्थाओं से छात्रों को चुना गया। भारतीय शिक्षा संस्थाओं में पढ़ रहे कुछ विदेशी छात्रों ने भी पहली बार इस कार्यकम में भाग लिया।

पुलिस कर्मियों और अधिकारियों को मानव अधिकारों के प्रति जागरूक बनाने के लिए, आयोग ने इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के साझा प्रयास से तीन प्रकार के पाठ्यकम तैयार करने का समझौता 30 दिसंबर 2009, को किया।

नकली दवाओं और अप्रशिक्षित डॉक्टरों तथा आदिवासी क्षेत्रों में चिकित्सा सुविधाओं की कमी के अतिरिक्त स्वास्थ्य क्षेत्र में अन्य सुविधाओं पर चर्चा के लिए आयोग ने 29 जनवरी, 2010 को नई दिल्ली में राज्यों और संघशासित क्षेत्रों के स्वास्थ्य सचिवों और अन्य पदाधिकारियों की बैठक बुलाई जिसमें देश की स्वास्थ्य सुविधाओं के समग्र सुधार के लिए कई महत्वपूर्ण सुझाव दिये गए। बैठक के उद्घाटन सत्र में कार्यकारी अध्यक्ष न्यायमूर्ति श्री जी.पी माथुर ने कहा कि अप्रशिक्षित डॉक्टर बेखौफ दिल्ली जैसे शहर में भी प्रैक्टिस कर रहे हैं और यह एक बड़ी चुनौती है। आयोग के सदस्य श्री पी.सी शर्मा ने कहा कि जन स्वास्थ्य देखभाल राजनीतिक बहस का विषय होने के साथ-साथ समाज के प्रबुद्ध वर्ग के लिए गंभीर चिन्तन का विषय होना चाहिए। उन्होंने ग्रामीण डॉक्टरों के लिए साढ़े तीन वर्ष के अल्पकालीन प्रशिक्षण के प्रस्ताव से असहमति जताई और कहा कि यह लोगों के हित में नहीं होगा।

आयोग ने देश के विभिन्न राज्यों और संघ शासित क्षेत्रों को पांच क्षेत्रों में बांटकर मानसिक स्वास्थ्य व्यवस्था के बारे में दिये गऐ अपने सुझावों व सिफारिशों के कियान्वयन की स्थिति का जायज़ा दक्षिण, पूर्व, पश्चिम, पूर्वोत्तर और मध्य क्षेत्र की अलग-अलग बैठकों में लिया। इनमें पाया गया कि कुछ सुधार होने के बावजूद भी देश में मनोरोग संबंधी चिकित्सा

सुविधाओं के क्षेत्र में आमतौर पर बहुत कमियाँ हैं और उन्हें सुधारने के लिए शासन को बहुत कुछ करना ज़रूरी है। इनमें ढ़ांचागत सुविधाओं के अलावा, प्रशिक्षित मनोचिकित्सक, पैरामेडिकल स्टाफ की कमी विशेष रूप से सामने आई। एक महत्वपूर्ण सुझाव यह भी दिया गया कि भारतीय चिकित्सा परिषद को मानसिक स्वास्थ्य विषय, एम.बी.बी.एस के पाठ्यक्रम में अनिवार्य घटक के रूप में शामिल करना चाहिए।

इस वर्ष विभिन्न देशों से कई प्रतिनिधि मंडलों ने आयोग का दौरा किया और उसके काम-काज के तरीकों का जायजा लिया। इनमें अफगानिस्तान इंडिपेंडेंट ह्यूमन राइट्स कमीशन, एमनेस्टी इंटरनेशनल के प्रतिनिधियों का दौरा शामिल है।

आयोग ने भी कई अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलनों में अपने प्रतिनिधिमंडल भेजे। इनमें जिनेवा में अन्तरराष्ट्रीय समन्वय समिति की बैठक का 23वाँ सत्र, ऑस्ट्रेलिया में सार्वभौम सार्वाधिक समीक्षा प्रणाली पर राष्ट्रीय मानव अधिकार संस्थाओं की कार्यशाला, मानव अधिकारों संबंधी एशिया पैसिफिक क्षेत्र की 15 वीं वार्षिक कार्यशाला, एशिया पैसिफिक फोरम की कार्यशाला, पैसिफिक फोरम की 15 वीं वार्षिक बैठक, अन्तरराष्ट्रीय समन्वय समिति की राष्ट्रीय मानव अधिकार संस्थाओं की ऐडिनबरा, स्कॉट लैण्ड में 10 वीं कार्यशाला तथा ढाका में आयोजित राष्ट्रीय मानव अधिकार संस्थाओं की बैठक शामिल है। इन कार्यशालाओं और बैठकों में आयोग ने अपने काम-काज और मानवाधिकारों के क्षेत्र में अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर चुनौतियों की ओर विभिन्न देशों का ध्यान आकृष्ट किया।

आयोग ने सांविधिक पूर्ण आयोग की समय-समय पर बैठकें भी आयोजित कीं जिससे कि मानव अधिकारों तथा अन्य वर्गों के अधिकारों के संरक्षण के लिए समन्वयकारी नीति और आपसी तालमेल बनाया जा सके। इन बैठकों में राष्ट्रीय महिला आयोग, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग, राष्ट्रीय बाल संरक्षण आयोग के प्रतिनिधियों और आयोग के अध्यक्ष, कार्यवाहक अध्यक्ष, सदस्यों और अधिकारियों ने भाग लिया।

आयोग ने गैर सरकारी संगठनों के कोरग्रुप की बैठक बुलाई। इसमें राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग और गैर सरकारी संगठनों के बीच बेहतर समन्वय विकसित करने के बारे में विचार-विमर्श किया गया।

वर्ष 2009-2010 छत्तीसगढ़ में अर्धसैनिक बलों के जवानों की नक्सलियों द्वारा हत्या और हरियाणा में खाप पंचायतों के कथित आदेशों पर नवविवाहित दम्पतियों की हत्या जैसे मामले छाये रहे। इन दोनों मुद्दों पर आयोग ने तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए वक्तव्य जारी किए और कहा कि जीवन लने का किसी को अधिकार नहीं है।

आयोग ने कई मामलों में महत्वपूर्ण सिफारिशें कीं। पहली दिसंबर, 2009 से 31 अक्तूबर, 2010 तक आयोग ने 78657 शिकायतें दर्ज की। स्वत: संज्ञान के 35 मामले दर्ज किए गए जिनका आधार मुख्यत: मीडिया में प्रकाशित खबरें रहीं। इसी अवधि में आयोग ने 478 मामलों में रू. 85613500 की आर्थिक सहायता देने की संस्तुति की। सबसे महत्वपूर्ण बात यह रही कि आयोग ने किसी भी मामले की फाइल तब तक बंद नहीं की जब तक कि तत्संबंधी प्रशासन ने उसकी संस्तुति मानकर उसका लिखित प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया। इससे यह तस्वीर साफ हो गई कि अधिकांश मामलों में आयोग की सिफारिशों पर अमल हो रहा है।

भारत के पूर्व प्रधान न्यायाधीश, न्यायमूर्ति श्री के.जी. बालकृष्णन ने 7 जून, 2010 को आयोग के नये अध्यक्ष का पद संभाला। इससे पहले, 15 जनवरी 2010 को श्री के.एस.मणि ने आयोग के महासचिव के रुप में पदभार ग्रहण किया।

अपने पहले संवाददाता सम्मेलन में न्यायमूर्ति श्री बालकृष्णन ने कहा कि मानव अधिकारों के संरक्षण एवं संवर्धन में मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका है। उन्होंने आशा व्यक्त की कि आयोग को मानवाधिकारों के प्रचार-प्रसार में मीडिया का सहयोग मिलता रहेगा।

30 जुलाई, 2010 को आयोग ने ''पंचायती राज्य की अवधारणा और मानव अधिकार'' पर राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन हिन्दी में कोचीन (केरल) में किया। संगोष्ठी का उद्घाटन करते हुए आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति श्री के.जी.बालकृष्णन ने कहा कि यदि सहभागी प्रजातंत्र को सुनिश्चित करने वाली पंचायती राज संस्थाओं के साथ बेहतर समन्वय स्थापित किया जाए तो सामाजिक विकास के उदद्श्य आसानी से प्राप्त किये जा सकते हैं। पंचायतों के गठन और उनकी कार्यप्रणाली को सुदृढ़ करने वाले 73 वें संविधान संशोधन ने भारत में प्रजातंत्र के प्रतिनिधि आधार को व्यापक एवं सुदृढ़ बनाया है।

राज्य मानव अधिकार आयोग, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग से स्वतंत्र हैं लेकिन आयोग ने ये समझा कि मानव अधिकारों के बेहर प्रचार-प्रसार और संरक्षण के लिए आवश्यक है कि आपसी तालमेल से समन्वयकारी नीति अपनाई जाए। इसी सिलसिले में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने 17 अगस्त, 2010 को नई दिल्ली में राज्य मानव अधिकार आयोगों के साथ एक बैठक आयोजित की। अपनी शुरूआती टिप्पणी में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति श्री के.जी.बालकृष्णन ने कहा कि सभी राज्य सरकारों को अपने राज्य मानव अधिकार आयोगों को मज़बूत करने के लिए कदम उठाने चाहिएं।

आयोग के इतिहास में पहली बार अध्यक्ष ने गुप्तचर विभाग द्वारा आयोजित पुलिस महानिदेशकों एवं महानिरीक्षकों की बैठक को 26 अगस्त, 2010 को संबोधित किया। न्यायमूर्ति श्री के.जी.बालकृष्णन ने कहा कि पुलिस प्रशासन की बहुत चुनौतियां है और मानवाधिकारों के अग्रणी संरक्षक के रूप में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका है लेकिन हमारे देश में पुलिस द्वारा दी जा

रही सेवाओं के स्तर में काफी कमियाँ हैं। इस सिलसिले में उन्होंने पुलिस के हाथों हो रहे मानव अधिकार उल्लंघन की सबसे ज्यादा शिकायतें आयोग को मिलने का उल्लेख किया।

मानव अधिकार संबंधी शिकायतों को जल्दी निपटाने के लिए आयोग ने चार दक्षिणी राज्यों, केरल, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु के अधिकारियों की बैठक बंगलौर में 15 से 16 सितम्बर,2010 को बुलाई। इसमें चारों राज्यों से 92 मामले लिए गए। 92 मामलों में रू. 19,80,000 की आर्थिक सहायता की अनुशंसा की और 22 मामले निपटा दिए। आयोग ने इन राज्यों के वरिष्ठ अधिकारियों तथा स्वयंसेवी संस्थाओं से बातचीत में मानव अधिकारों से जुड़े मुद्दों पर समय से ध्यान देने की आवश्यकता पर बल दिया।

12 अक्तूबर, 2010 को आयोग का स्थापना दिवस मनाया गया और जन्म से पूर्व लिंग चयन से जुड़े मुद्दों और चिन्ताओं पर एक सम्मेलन का आयोजन आयोग ने किया। आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति श्री के.जी.बालकृष्णन ने सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए कहा कि जन्म से पूर्व लिंग का चुनाव महिलाओं के अधिकारों का उल्लंघन है। खेद का विषय है कि ऐसा पढ़े लिखे शहरी इलाकों में ज़्यादा हो रहा है।

केन्द्रीय सैनिक बलों में मानव अधिकारों के प्रति चेतना और जागरूकता बनाये रखने के लिए राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग 1996 में से हर वर्ष इन बलों के जवानों और अधिकारियों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी में वाद-विवाद प्रतियोगिता आयोजित करता रहा है। इस वर्ष 16 नवम्बर को आयोग ने भारत-तिब्बत सीमा पुलिस बल के सहयोग से अखिल भारतीय स्तर पर प्रतियोगिता का आयोजन किया। प्रतियोगिता का विषय था - राष्ट्रीय सुरक्षा सरोकारों के साथ समझौता किए बिना भी सुरक्षा बल मानवाधिकारों का अनुपालन कर सकते हैं। अपने संबोधन में न्यायमूर्ति श्री के.जी.बालकृष्णन ने कहा कि आतंकवाद को कुचलते वक्त अगर मानवाधिकारों का हनन होता है तो इस लड़ाई का मकसद बेमानी हो जाता है।

इन तमाम महत्वपूर्ण गतिविधियों के अलावा वर्ष 2009-2010 में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने कई मामलों में महत्वपूर्ण निर्णय लिए और सिफारिशें की। इनमें बंधुआ मजदूरों की रिहाई, सिलीकोसिस पीड़ितों को मुआवजा, किसी की सहायता लेकर परीक्षा में लिखने वाले विकलांग छात्रों को हर घंटे पर 20 मिनट अतिरिक्त समय देने, पर्यावरण प्रदूषण रोकने, पुलिस हिरासत या जेल में हुई मौत की सूचना की तर्ज पर पुलिस मुठभेड़ में मौत की सूचना भी 48 घंटे में आयोग को भेजने जैसी कई सिफारिशें शामिल रहीं।

* * *

मानवाधिकार से संबंधित एक ज़रूरी पुस्तक

• ब्रजेन्द्र त्रिपाठी

पुस्तक का नाम	- मानवाधिकार, सामाजिक न्याय और भारत का संविधान
लेखक	- डॉ0 पूरणमल
प्रकाशक	- पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, संशोधित संस्करण 2010
मूल्य	- 850/-

'मानवाधिकार' की अवधारणा का उद्भव संभवत: मनुष्य की उत्पत्ति के साथ ही हुआ होगा। 'मानवाधिकार' शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है - 'मानव' अधिकार अर्थात् मानव के अधिकार हमारे यहाँ वेदों में 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' जैसे पद मिलते हैं जो मानवाधिकारों की तरफ़ ही संकेत करते हैं। मानवाधिकार शब्द का प्रयोग इसकी सार्वभौमिक घोषणा के साथ ही 1948 में किया गया। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 16 जनवरी 1941 को तत्कालीन अमरीकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने कांग्रेस को संबोधित अपने संदेश में किया था, जिसमें उन्होंने चार मूलभूत स्वतंत्रताओं का उल्लेख किया था - विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, धार्मिक स्वतंत्रता, ग़रीबी से मुक्ति और भय से स्वतंत्रता।

संयुक्त राष्ट्र चार्टर में 'मानवाधिकार' शब्द का लिखित प्रयोग मिलता है, जिसे द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् 25 जून 1945 को सैनफ्रांसिस्को में स्वीकृत किया गया था। दिसंबर 1948 में संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा ने मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा को स्वीकृत किया। मानवाधिकारों के इस घोषणा पत्र में प्रस्तावना सहित 30 अनुच्छेद हैं। इसमें नागरिक तथा राजनीतिक अधिकारों के साथ-साथ सामाजिक अधिकारों का भी समावेश किया गया है। दिसंबर 1966 में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने मानवाधिकारों के सुनिश्चित अनुपालन के लिए तीन प्रसंविदाएँ स्वीकृत कीं - (1) नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर प्रसंविदा (2) आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर प्रसंविदा और (3) नागरिक और राजनीतिक अधिकारों का प्रोटोकॉल। जो भी राज्य इन प्रसंविदाओं का संवर्धन करते है, उनके लिए ये बाध्यकारी हैं।

• *उपसचिव, केन्द्रीय साहित्य अकादमी, दिल्ली*

जहां तक विभिन्न देशों में मानवाधिकार संस्थाओं की स्थापना की बात है, यूनेस्को ने ही इस तरह की संस्था की ज़रूरत बताई थी और 'राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग' की स्थापना के संदर्भ में प्रस्ताव पारित किया था। बाद में भी विश्व सम्मेलनों में इसकी आवश्यकता पर बल दिया जाता रहा। वियना घोषणा के बाद कई देशों में राष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थाओं की स्थापना हुई। भारत में इसकी स्थापना 27 सितंबर 1993 राष्ट्रपति द्वारा जारी अध्यादेश के माध्यम से की गई। 8 जनवरी 1994 को यह मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1994 के रूप में सामने आया। इसके अंतर्गत राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, राज्य मानव अधिकार आयोग और मानवाधिकार न्यायालयों की स्थापना की गई।

जबसे भारत में मानव अधिकार आयोग का गठन हुआ, मानवाधिकारों को लेकर काफ़ी जागरूकता देखने को मिली है। पिछले कुछेक वर्षों में मानव अधिकार और सामाजिक न्याय से सरोकार रखने वाली बहुत-सी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। देश में मंडल आयोग की सिफ़ारिशें लागू होने तथा दूसरे पिछड़े वर्ग को आरक्षण देने के साथ सामाजिक न्याय की अवधारणा को बल मिला है। भारत में मानव अधिकारों और सामाजिक न्याय के क्षेत्र में गांधी, अंबेडकर, विनोबा भावे और ज्योतिबा फूले जैसे समाज सुधारकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

'मानवाधिकार, सामाजिक न्याय और भारतीय संविधान' शीर्षक प्रस्तुत पुस्तक में मानवाधिकारों, ख़ासकर दलित वर्ग से संबंधित मूलभूत अधिकारों और सामाजिक असमानता जैसे मुद्दों का गहन विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक 11 अध्यायों में विभक्त है। पहले अध्याय में मानवाधिकारों के अर्थ, प्रकृति और विकास को रेखांकित किया गया है। लेखक ने मानवाधिकार को परिभाषित करते हुए कहा है - 'ऐसे अधिकार, जिनके बिना एक मानव अपने व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के बारे में सोच भी नहीं सकता और जो कि मानव में मानव होने के फलस्वरूप अंतर्निहित हैं।' इस अध्याय में मानवाधिकार के उद्भव और विकास की विस्तार से चर्चा की गई है और उसके महत्व को प्रतिपादित किया गया है।

दूसरे अध्याय में मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम और मानवाधिकार संस्थाओं की चर्चा है। इसमें मानव अधिकार अधिनियम, 1993 के मूल पाठ को दिया गया है जो सूचना के लिहाज से अत्यंत उपयोगी है। मानवाधिकार संस्थाओं के अंतर्गत राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, राज्य मानव अधिकार आयोग और मानव अधिकार न्यायालयों के स्वरूप, उसके कार्यों और उसकी शक्तियों आदि की चर्चा की गई है। इससे पाठक इन संस्थाओं के पूरे स्वरूप से भली-भाँति परिचित हो सकेंगे। इसमें आयोग के गठन, उसके पदाधिकारी और उनकी पदावधि की संपूर्ण जानकारी दी गई है और आयोग की प्रक्रिया, कार्य एवं शक्तियों का निदेशन किया गया है। पुस्तक का तीसरा अध्याय 'भारत में मानवाधिकार एवं न्यायिक निर्णय' से संबंध रखता है। भारत के सभी नागरिकों को संविधान द्वारा कुछ मूल अधिकार प्रदान किए गए हैं, जिससे वह अपना जीवन स्वतंत्रतापूर्वक जी सके और अपना भली-भाँति विकास कर सके। इन अधिकारों में एक समता का अधिकार है जो मानवाधिकारों की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस सिद्धांत की व्याख्या विभिन्न मामलों में न्यायालय द्वारा किस तरह से की गई है, इसे प्रभावित व्यक्तियों

और प्रांतों के बीच न्यायालय में चले मामलों को सामने रखकर व्याख्यायित किया गया है। 'बालकों और स्त्रियों के प्रति विशेष संरक्षण', 'लोक नियोजन में अवसर की समता', 'समान कार्य के लिए समान वेतन', 'लिंग के आधार पर वर्गीकरण', 'प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार', 'शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार', जीविकोपार्जन का अधिकार', 'चिकित्सा का अधिकार', 'प्राइवेसी का अधिकार', जैसे उप शीर्षकों के अंतर्गत इन अधिकारों का विवेचन विभिन्न मामलों में न्यायालयों के निर्णय के परिप्रेक्ष्य में किया गया है।

यह पुस्तक सामाजिक न्याय के संदर्भ में मानवाधिकार और भारत के संविधान का आकलन करती है, शायद इसीलिए चौथा अध्याय 'सामाजिक न्याय : अवधारणात्मक विवेचन' पर केंद्रित है। वस्तुत: न्याय राजनीतिक चिन्तन के साथ नैतिक चिन्तन का भी प्रमुख आधार रहा है। न्याय की अवधारणा सार्वभौमिक नहीं है। एक समाज में जो न्यायसंगत माना जाता है, ज़रूरी नहीं कि दूसरे समाज में भी उसे उसी तरह लिया जाता हो। जहां तक सामाजिक न्याय का प्रश्न है, उसका तात्पर्य आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में समानता है। लेखक ने सामाजिक न्याय का आशय यह बताया है कि व्यक्ति-व्यक्ति के मध्य सामाजिक स्थिति, रंग, जाति, धर्म, भाषा या लिंग के आधार पर किसी प्रकार का भेद न किया जाए और राज्य में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के विकास का पूर्ण अवसर मिले। उन्होंने सामाजिक न्याय को प्राप्त करने की दिशा में मौलिक अधिकारों का महत्त्वपूर्ण स्थान माना है। मानवीय गरिमा का प्रश्न भी इसके साथ जुड़ा हुआ है। क्योंकि समानता एवं स्वतंत्रता के मौलिक अधिकारों के बावजूद सभी समाजों में रंग, लिंग, जाति, धर्म, क्षेत्र तथा भाषा के आधार पर भेदभाव दिखाई पड़ता है। लेखक सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए समाज के स्वरूप का लोकतांत्रिक होना ज़रूरी मानता है, जिसमें समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व की भावना हो।

पुस्तक का पाँचवां अध्याय है - 'भारत में मानवाधिकार : दशा एवं दिशा'। इसमें भारत में मानवाधिकारों की स्थिति को वेदकालीन समाज से लेकर आधुनिक समाज तक विश्लेषित करने का प्रयास है। इन अधिकारों की अवधारणा समय के साथ बदलती रही है। वेदों में ऐसे अनेक कथन मिलते हैं जो मनुष्य-मनुष्य के बीच समानता की वकालत करते हैं। बाद में भारतीय इतिहास में एक दौर ऐसा भी आया जब जन्म, लिंग, जाति एवं वर्ण आदि के आधार पर सामाजिक विषमता ने जन्म लिया। महात्मा बुद्ध के आविर्भाव के बाद एक नया युग आता है 'जिसमें तमाम सामाजिक जड़ताओं को तोड़ने का प्रयास दिखाई देता है' ताकि मानवीय गरिमा को कायम रखा जा सके। लेखक ने सामाजिक पुनर्जागरण के क्षेत्र में राजा राम मोहन राय और दयानंद सरस्वती के प्रयासों का उल्लेख किया है। लेखक ने स्वतंत्र भारत में मानवाधिकारों की स्थिति और मानवाधिकारों के उल्लंघन के कारणों को खोजने का प्रयास किया है। लेखक ने इसके ये कारण गिनाए हैं : - पुलिस एवं प्रशासन की मानसिकता, नौकरशाही का रवैया, अस्पृश्यता एवं सामाजिक असमानता, सामाजिक कुरीतियाँ, बेरोज़गारी एवं निर्धनता, सांप्रदायिकता एवं धार्मिक कट्टरता, आतंकवाद एवं नक्सलवादी आंदोलन, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाओं की कमी एवं प्राकृतिक आपदाएँ। इस संदर्भ में लेखक ने राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के पूर्व

अध्यक्ष न्यायमूर्ति ए. एस. आनंद का निम्न कथन उद्धृत किया है जो भारत में मानवाधिकारों की स्थिति का कच्चा - चिट्ठा हमारे सामने रखता है - ''मानवाधिकारों की सार्वजनिक स्वीकार्यता के बाद भी लोगों के उत्पीड़न की घटनाएँ आए दिन प्रकाश में आ रही हैं। यह इसलिए हो रहा है" क्योंकि मानवाधिकारों की रक्षा का संकल्प फ़ाइलों एवं दस्तावेज़ों में सिमट कर रह गया है। इसे इस तथ्य से समझा जा सकता है कि पुलिस थानों में मानवाधिकारों की रक्षा संबंधी दिशा-निर्देश, स्लोगन एवं नीर चस्पाँ कर दिए जाने के बावजूद पुलिस की ओर से ही मानवाधिकारों के उल्लंघन के मामले बढ़ते चले जा रहे हैं। देश के बड़े भूभाग पर आज भी ग़रीबी, बेरोज़गारी, भूखमरी, बीमारी, महिला उत्पीड़न, अस्पृश्यता, अमानवीय व्यवहार, पुलिस अत्याचार व शोषण, निरंकुशता, अधिकारों का दुरुपयोग आदि व्याप्त है। ... पुलिस फायरिंग, हवालात में मृत्यु, मारपीट, प्रताड़ना, फ़र्जी मुठभेड़ में मौत जैसी घटनाओं में वृद्धि हुई है तथा दलित अत्याचारों, महिला शोषण एवं बालश्रम जैसी घटनाओं का ग्राफ़ भी बहुत बढ़ा है।"

लेखक का मानना है कि इन सबके बावजूद भारत की स्थिति मानवाधिकार के संदर्भ में विश्व के कई विकसित और विकासशील देशों से कहीं बेहतर है। मानवाधिकार संरक्षण में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, राज्य मानव अधिकार आयोगों, राष्ट्रीय महिला आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग, राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग, राष्ट्रीय सूचना आयोग, अदालतों, स्वयंसेवी संगठनों और मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका है। फिर भी भारत में मानवाधिकारों की स्थिति अभी शैशवावस्था जैसी है और उसे एक लंबा रास्ता तय करना है।

अगले तीन अध्यायों में मानवाधिकार संरक्षण के क्षेत्र में महात्मा गांधी, विनोबा भावे, अंबेडकर और महात्मा फूले के प्रयासों को लेखक ने सामने रखा है। लेखक ने महात्मा गांधी को सामाजिक न्याय का मसीहा, विनोबा भावे को सामाजिक न्याय का युगदृष्टा और ज्योतिबा फूले को सामाजिक न्याय का इतिहास पुरुष कहा है। छठे अध्याय में महात्मा गांधी के संक्षिप्त जीवन वृत्त के साथ उनके आध्यात्मिक आदर्शवाद की चर्चा की गई है, जिसके अंतर्गत ईश्वर, सत्य, नैतिकता, साधन की श्रेष्ठता और अहिंसा की उनकी अवधारणा की विवेचना की गई है। यहाँ हम गांधी जी के सामाजिक और राजनीतिक चिन्तन पर लेखक की सटीक टिप्पणी देख सकते हैं। सातवें अध्याय में विनोबा भावे के जीवन वृत्त, उनके आध्यात्मिक चिन्तन, सर्वोदय की अवधारणा, सर्वोदयी समाज के रूप को सामने रखा गया है। विनोबा का सपना था - शासनविहीन और शोषण विहीन समाज की स्थापना। उन्होंने ऐसे आदर्श राज्य की कल्पना की थी जिसमें न कोई शासक होगा, न शासित, न शोषक होगा, न शोषित। ऐसे ही समाज को उन्होंने सर्वोदयी समाज कहा था।

आठवें अध्याय में भीमराव अंबेडकर के जीवन और कृतित्व को पाठकों के समक्ष रखा गया है। वस्तुत: अंबेडकर ने जीवनभर सामाजिक न्याय एवं मानव अधिकारों के लिए संघर्ष किया। वे इस बात के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहे कि दलितों को भी स्वाधीनता, समानता तथा

सम्मानपूर्ण जीवन का आस्वाद मिले। इस अध्याय में उनके इसी संघर्ष और कई मुद्दों पर गांधी से मतभेद की कथा कही गई है।

9 वें अध्याय में महात्मा ज्योतिबाफूले के संघर्षशील जीवन-कथा को उकेरा गया है कि कैसे महाराष्ट्र में उन्होंने तमाम विरोधों के बावजूद स्त्री शिक्षा की ज्योति को प्रज्ज्वलित रखा। उन्हें कट्टर ब्राह्मणवादी मानसिकता का प्रतिरोध झेलना पड़ा क्योंकि उस दौर में पूना में कट्टरता और जातिवाद चरम सीमा पर थे और केवल ब्राह्मण और उच्च वर्ग के व्यक्ति ही शिक्षा ग्रहण कर सकते थे। उनके प्रयासों से एक नई सामाजिक-सांस्कृतिक क्रांति की शुरुआत हुई, जिसमें स्त्री और दलित शिक्षा पर बहुत ज़ोर था। लेखक ने इस अध्याय में उनके इस क्रांतिकारी रूप का बहुत जीवंत वर्णन किया है। उन्होंने सत्यशोधक समाज नामक संस्था की स्थापना की जिसने आधुनिक भारत में पहली बार सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक आंदोलन का सूत्रपात किया। उन्होंने सर्वमान्य मानवाधिकार की संकल्पना सामने रखी तथा कहा कि राजनीतिक स्वतंत्रता से पहले सामाजिक समानता आनी चाहिए। इसके लिए उन्होंने अपने स्तर पर निरंतर कोशिश की।

दसवां और अंतिम अध्याय है 'भारत का संविधान और मानवाधिकार'। इस अध्याय में भारतीय संविधान की मूलभूत विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि भारतीय संविधान में न केवल मानवाधिकारों का समुचित रूप से उल्लेख किया गया है, अपितु उनको व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करने हेतु अनेक प्रावधान भी किए गए हैं तथा सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान की आत्मा एवं संविधान निर्माताओं की मूल भावना को साकार करते हुए देश के नागरिकों को मानवाधिकार उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रस्तुत पुस्तक भारत में मानवाधिकारों, ख़ासकर दलित वर्ग से संबंधित मूलभूत अधिकारों और सामाजिक असमानता जैसे ज्वलंत मुद्दे पर गहन और विशद रूप से विवेचन-विश्लेषण करती है। यह पुस्तक दलित विचारधारा, सामाजिक न्याय और मानवाधिकारों के परिप्रेक्ष्य में दलित चेतना को जाग्रत करती है और इस दिशा में आगे संघर्ष के लिए प्रोत्साहित करती है। भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय और मानवाधिकारों को किस तरह रखा गया है, इसकी पड़ताल भी यह पुस्तक बहुत प्रामाणिक ढंग से करती है। मानवाधिकार और सामाजिक न्याय के क्षेत्र में महात्मा गांधी, विनोबाभावे, डॉ0 अंबेडकर, ज्योतिबाफूले और अन्य महापुरुषों का क्या योगदान रहा है, इसे भी पुस्तक में बख़ूबी चित्रित किया गया है। यह पुस्तक दलित जातियों को उनके अधिकारों की जानकारी देती है।

पुस्तक के लेखक डॉ० पूरणमल दलित विमर्श, पंचायती राज और अम्बेडकर के जीवन और कृतित्व पर अनुसंधान कार्य करते रहे हैं और उक्त विषयों पर आपकी चार पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इसीलिए इस पुस्तक में उठाए गए विषय के साथ वे पूरा-पूरा न्याय कर सके हैं।

* * *

मानवाधिकारों का परिपार्श्व

• डॉ. कुमुद शर्मा

पुस्तक का नाम	- मानवाधिकार विविध आयाम एवं चुनौतियाँ
लेखक	- डॉ0 रमेश चन्द्रा
प्रकाशक	- अंकित पब्लिकेशंस आर-69, तीसरा तल, मॉडल टाउन, दिल्ली-110009

इक्कीसवीं सदी के भूमंडलीय दौर में अन्याय, शोषण और अमानवीयता के नए-नए चेहरे सामने आ रहे हैं। आभिजात्यवाद, जटिल पूर्वाग्रहों, स्वार्थपरता की संकीर्ण परिधि और उपभोक्तावादी दंश के चलते मानवाधिकारों के हनन की घटनाओं में बढ़ोतरी हो रही है। मानवाधिकार के संरक्षण में नई चुनौतियाँ सामने आ रही हैं। मानवजाति को सुखी, समुन्नत और सभ्य बनाने के लिए आवश्यक है कि लोग मानवाधिकारों के प्रति जागरूक हों। क्योंकि मानवाधिकारों का संबंध मनुष्य के स्वभाव में अन्तर्निहित उस चेतना से है जो उसे गरिमापूर्ण जीवन, अस्तित्व की रक्षा और व्यक्तित्व के समग्र विकास का रास्ता दिखाती है। मानवाधिकारों का संरक्षण व्यक्ति को सम्मान, सुरक्षा और विकास के समान अवसर उपलब्ध कराते हुए उसकी क्षमताओं को विस्तार की अनन्त संभावनाओं की ओर मोड़ने की शक्ति रखता है। मानवाधिकारों के संरक्षण के प्रयास में मानवाधिकारों पर पुस्तकों का पठन-पाठन और लेखन विशेष महत्व रखता है। मानवाधिकारों की चेतना के व्यापक प्रचार-प्रसार की दृष्टि से डॉ० रमेश चन्द्रा की पुस्तक 'मानवाधिकार, विविध आयाम एवं चुनौतियाँ' मानवाधिकारों पर लिखी जाने वाली पुस्तकों की श्रृंखला की एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

पुस्तक में मानवाधिकार के भारतीय परिपार्श्व का विस्तृत विवेचन करते हुए मानव अधिकारों की अवधारणा के सूत्र वैदिक ऋचाओं में निहित 'सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया:' के आदर्श में ढूंढकर उसके मानवीय, सामाजिक और राष्ट्रीय सरोकारों पर प्रकाश डाला गया है। लेखक की दृष्टि में मानवाधिकारों का सीधा संबंध मानवीय सुखों से है - 'सुख की अवधारणा को मानना श्रेयस्कर होगा। जबसे मानव जाति समाज एवं राज्य का उदय हुआ है।

• रीडर, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

कालक्रमानुसार मानव सुख का दायरा विस्तृत हुआ और यह समाज, राष्ट्र और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर पल्लवित हुआ।' विश्वस्तर पर मानव अधिकारों की पृष्ठभूमि का उल्लेख करते हुए मानव अधिकारों के वैश्विक घोषणा पत्र में निहित मानवाधिकारों के महत्वपूर्ण अभिलक्षण स्वतंत्रता, समानता और सामाजिक न्याय को व्याख्यायित किया गया है।

विवेच्य पुस्तक का महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि इसमें मानवाधिकारों के बारे में स्वस्थ, संतुलित और सही समझ विकसित करने के उद्देश्य से उससे संदर्भित दार्शनिक सिद्धांतों तथा उपयोगितावादी या व्यवहारवादी सैद्धांतिक दृष्टिकोण की पर्याप्त विवेचना उपलब्ध है। इंग्लैण्ड के एड्मण्ड बर्क एवं डेविड ह्यूमन ने भले ही मानव के प्राकृतिक अधिकार को गहरी आलोचना का विषय बनाया हो लेकिन मानव अधिकारों के प्राकृतिक सिद्धांतों को विश्लेषित करने के क्रम में पुस्तक लेखक ने सामाजिक समझौता सिद्धांत के अधिकारी विचारक जॉन लॉक के अनुभववाद पर भरोसा किया है जिन्होंने अपने विचारों से सिद्ध किया कि कुछ ऐसे अधिकार हैं जो मानव को मानव होने के नाते ही उपलब्ध होते हैं 'सामाजिक या राजनीतिक संगठन की स्थापना के पहले ही मनुष्य को कुछ मूलभूत प्राकृतिक अधिकार प्राप्त थे जैसे जीवन का अधिकार, स्वतंत्रता और सम्पत्ति का अधिकार।'

मानवाधिकारों की संकल्पना का आधार केवल प्राकृतिक ही नहीं है बल्कि उसमें राजनैतिक, नैतिक और विधिक आयाम भी हैं। इसलिए पुस्तक में दो आधारों पर मानवाधिकारों को वर्गीकृत करके उन्हें विवेचित किया गया है 1. जीवन के विविध क्षेत्रों के आधार पर 2. इन अधिकारों को बनाए रखने के लिए संवैधानिक और कानूनी आधार पर।

पुस्तक के अन्तर्गत मानवाधिकारों के विविध आयामों को समेटने के प्रयास में लेखक की दृष्टि उसके सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक एवं विचारधारा के व्यापक फलक तक गयी है। इस संदर्भ में विशेष रूप से इसमें समाजवादी दृष्टिकोण, उदारवादी दृष्टिकोण तथा विकासशील देशों के दृष्टिकोण का उल्लेख करते हुए तृतीय विश्व के देशों के सम्मुख उपस्थित चुनौतियों को उठाया गया है।

पुस्तक का दूसरा अध्याय मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा और संविधान के समतामूलक, लोकतांत्रिक ढांचे के बावजूद देश के विभिन्न राज्यों में मानवाधिकारों के हनन की स्थितियों के आकलन पर आधारित है। जिसके अन्तर्गत देश के विभिन्न अंचलों में रह रहे आदिवासियों, अनुसूचित जाति एवं जनजाति के जीवन स्तर को सुधारने तथा महिलाओं की विडम्बनात्मक स्थितियों के निवारण में मानवाधिकारों की क्या भूमिका रही है? उनके अधिकारों के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु किन-किन स्तरों पर क्या-क्या प्रयास किए गए हैं? ये प्रयास कितने सार्थक सिद्ध हुए? इन सबका ब्यौरा मौजूद है।

मानवाधिकार संरक्षण एवं संवर्धन की दिशा में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की विशिष्ट भूमिका रही है। पुस्तक का तीसरा अध्याय आयोग के उद्देश्य, उसके अभिनव कार्यक्रमों की रूपरेखा और उनकी सफलताओं पर विस्तारपूर्वक रोशनी डालता है। मानवाधिकारों की चेतना का अलख जगाने में आयोग ने किस तरह एक संस्थान के रूप में संस्कृति विशेष का विकास किया है इसके आलोक में पुस्तक में ऐसे अनेक केसों, संदर्भों और घटनाओं का जिक्र है जिनसे आयोग की सफलताओं की कहानी बयान होती है। इसमें दर्ज घटनाओं और संदर्भों के झरोखे से देखा जा सकता है कि किस तरह आयोग ने भारत के संश्लिष्ट समाज तंत्र, परिवार तंत्र और बूते के बाहर जा रहे अर्थतंत्र के बीच दमघोंटू जिन्दगी जीने की मजबूरियों से जूझते लोगों को शोषण, अन्याय और अमानवीय स्थितियों से निजात दिलायी। किस तरह समाज के अमानवीय चेहरों को बेनकाब करने वाली घटनाओं की शिकायतों पर सक्रियता से अपने दायित्व बोध का निर्वाह किया।

मानव अधिकार की संकल्पना पश्चिमी सभ्यता और विचार की देन है लेकिन मानव अधिकार के मूल उत्स हमारी भारतीय संस्कृति में विद्यमान हैं, जो व्यापक मानवीय और सामाजिक सरोकारों के रूप में मानव अधिकारों का संरक्षण करते हैं। भारतीय परिप्रेक्ष्य में मानव अधिकारों की अवधारणा किस तरह गहरे मानवीय मूल्यों से संबंध रखती है इस पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए इस तथ्य का प्रतिपादन किया गया है कि 'भारत में मानव अधिकारों का विकास एक जटिल, संगठित प्रक्रिया के अन्तर्गत हुआ है। हमारी अपनी लम्बी परम्परा ने, विविध संस्कृतियों ने जीवन आदर्शों, परम्पराओं एवं दर्शनों ने मिलकर एक समन्वित मानवीय अधिकार का विकास किया।'

भारतीय संविधान ने मानवाधिकारों की नींव पर सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक समानता और न्याय को सुनिश्चित करने की व्यवस्था की। आज़ादी के बाद मानवाधिकारों के संरक्षण की दिशा में सरकारी और गैर-सरकारी प्रयासों की गति क्या है इस पर भी पुस्तक में विचार किया गया है।

कुल मिलाकर रमेश चंद्रा ने अपनी पुस्तक में मानवाधिकारों की अवधारणा के मुख्य बिंदुओं को स्पष्ट करने के साथ-साथ भारतीय परिपार्श्व में उसके समस्त अभिप्रायों को समेटने की कोशिश की है। पुस्तक की भूमिका में प्रस्तावित मानवाधिकारों की इस अवधारणा के विविध संदर्भों को खोलते हुए निष्कर्ष के इस पक्ष को पुष्ट किया गया है कि कुछ मूलभूत मानव अधिकार हैं, जिन्हें व्यक्ति या समाज से पृथक नहीं किया जा सकता है। ये अपनी प्रकृति में वैश्विक हैं क्योंकि ये मानव जाति के लिए अनिवार्य हैं। ये मानव अधिकार स्वयं में अन्तर्निहित हैं।

मनुष्य की चेतना में अन्तर्निहित मानव अधिकारों को जगाने की बार-बार जरूरत पड़ती है। मानवाधिकारों के प्रति जागरूकतामयी चेतना जगाने में रमेश चंद्रा की यह पुस्तक अपनी

भूमिका निभा सकती है। पुस्तक में उपलब्ध मानवाधिकारों की अवधारणा का भारतीय परिप्रेक्ष्य में किया गया दार्शनिक और वैधानिक विश्लेषण भले ही गंभीर चिंतन और मनन के छोरों का स्पर्श न करता हो लेकिन सरल सहज भाषा में मानवाधिकारों के परिप्रेक्ष्य की समुचित जानकारी देने का यह प्रयास सराहा जा सकता है क्योंकि मानवाधिकारों की लड़ाई को व्यावहारिक धरातल पर उतारने के लिए ऐसी पुस्तकों की जरूरत हमेशा रहेगी।

* * *